

सुमित्रानन्दन पंत ग्रंथावली

खण्ड दो

युगपथ युगवाणी प्राम्या
स्वर्णकिरण स्वर्णधूलि मधुञ्जाल



राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु० ५० ००

। वाणि जोगी

प्रथम आवृत्ति १९७६

प्रकाशक रात्रकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
८, नगारी मुभाग भाग, मयी दिल्ली ११०००२

मुख्य कार्यालय,
साह्याय, दिल्ली ११००१२

SUMITRANANDAN PANT GRANTHAVALI
Collected works of Shri Sumitranandan Pant

Price Rs 50 00

अनुक्रम

युगपथ	१-७२	युगान्तर	
युगांत		श्रद्धा के फूल	२६
		गुरुदेव के प्रति	३३
द्रत भरो जगत के जीण पत्र	५	राजकीय गौरव से जाता	३४
गा बोकिल, बरसा	७	लो, भरता रक्त प्रकाश भाज	३४
भर पड़ता जीवन छाली से	८	बार बार अतिम प्रणाम	३५
चचल पग दीप-शिखा के	८	जय हे, जय राष्ट्रपिता	३५
विद्रुम श्री' मरकत की छाया	६	भारत गीत	३५
जगती के जन पथ कानन में	१०	स्वतंत्रता दिवस	३८
वे चहक रही कुजो मे	१०	स्वाधीनता दिवस	३६
वे डब गये	१०	जय गान	३६
तारों का नभ	११	जागरण गीत	४०
जीवन का फल	११	उदबोधन	४१
बढो अभय,		जागरण	४२
विश्वास धरण घर	१२	दीपलोक	४३
गजन कर मानव केसरि ।	१२	दीप श्री	४४
बासो बा भुरमुट	१३	दीपावली	४५
जग-जीवन म जो चिर महान	१४	मिट्टी के खिलौने	४६
जो दीन हीन, पीडित	१४	कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति	४६
दात बाहु-पाद	१४	अवनी दनाथ ठाकुर के प्रति	५२
ए मिट्टी के डेले	१५	मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति	५३
लो गयी स्वर्ग की		भावाहन	५५
स्वर्ण किरण	११	श्री अरविन्द के प्रति	५६
सुन्दरता का आलोक	१६	श्रद्धाजलि	५७
नव हे, नव हे	१६	अवतरण	५७
बाँधो, छवि के नव बंधन	१७	स्वप्न पूजन	५८
मजरित भाँझ बन छाया मे	१७	वह मानव क्या	५८
वह विजन चाँदनी की घाटी	१८	जिज्ञासा	५६
वह लेटी है तरु छाया मे	१८	प्रकाश क्षण	६०
खोलो, मुख से घूँघट	१६	वरुणा धारा	६०
द्वाभा के एकाकी प्रेमी	२०	रँग दो	६१
घँघियाली घाटी मे	२०	शोभा जागरण	६२
मिट्टी का गहरा अघकार	२०	मानसी	६२
ताज	२१	अंतर घन	६३
मानव	२२	अमर स्पश	६३
तितली	२३	प्रीति परिणय	६४
स ध्या	२३	नव आवेश	६४
बापू के प्रति	२४	स्वप्न गीत	६५

निगणो	१७	प्रवासा	१०१
युगवाणी	७३	आत्म विद्वान्	१०५
बापू	८१	उमद	१०५
युगवाणी	८१	धनुमूनि	१०५
तय दृष्टि	८२	भव गैरानि	१०६
माव	८२	हरीनिमा	१०६
युग उपकरण	८२	प्रकृति के प्रति	१०७
नव सस्कृति	८३	द्वन्द्व	१०७
पुण्य प्रभू	८३	राग	१०८
चीटी	८४	राग गाथना	१०८
पतझर	८६	रूप गत्य	१०९
गिल्पी	८६	मुझे स्वप्न दो	१०९
दो सटपे	८७	मा के स्वप्न	११०
मानवपन	८८	जीवन स्या	११०
गगा की सौम	८८	मधु के स्वप्न	१११
गगा का प्रभात	८९	पसाग	१११
मूल्यावन	९०	पनाग के प्रति	१११
उदबोधन	९१	केलिपोनिया पौरी	११२
खोलो	९१	बदली या प्रभात	११२
मावस के प्रति	९२	दो मित्र	११३
भूत दगन	९२	भभा मे नीम	११४
साम्राज्यवाद	९३	घोस के प्रति	११४
समाजवाद गाधीवाद	९३	घोस बिन्दु	११५
सकीण भौतिकवादियों के प्रति	९४	जलद	११५
धनपति	९४	अनामिका के कवि	११६
मध्यवग	९४	आचाय द्विवेदी के प्रति	११७
कपक	९५	मुसुम के प्रति	११७
श्रमजीवी	९५	प्राति	११८
धन नाद	९६	जीवन-तम	११८
कम का मन	९७	आमो	११८
रूप का मन	९७	कृष्णधन	११९
रूप पूजन	९८	निश्चय	११९
रूप निर्माण	९८	लोज	१२०
भूत जगत्	९९	आवाहन	१२०
जीवन मास	९९	लेनदेन	१२१
मानव पशु	९९	वस्तु सत्य	१२१
नारी	१००	भव मानव	१२२
नर की छाया	१०१	प्रकृति शिशु	१२२
ब'द तुम्हारे द्वार	१०१	आवेश	१२२
सुमन के प्रति	१०२	आत्म समपण	१२३
कवि	१०२	सुम ईश्वर	१२३
		वाणी	१२३

युग नृत्य

ग्राम्या	१२४	भारत ग्राम	१७
स्वप्न पट	१२७	स्वप्न श्रीर सत्य	१७
ग्राम कवि	१३१	वायू	१७१
ग्राम	१३१	अहिंसा	१७२
ग्राम दृष्टि	१३१	पतझर	१७२
ग्राम चित्र	१३२	उद्बोधन	१७३
ग्राम युवती	१३२	नव इन्द्रिय	१७४
ग्राम नारी	१३३	कवि किसान	१७४
कठपुतले	१३५	वाणी	१७५
वे आँखें	१३६	नक्षत्र	१७५
गाव के लडके	१३६	भागन स	१७५
वह बुडढा	१३८	याद	१७५
बोवियो का नृत्य	१३८	गुलदावदी	१७५
ग्राम वधू	१३९	विनय	१७६
ग्राम श्री	१४०	स्वण किरण	१७७
नहान	१४१	अभिवादन	१७९-२७३
गगा	१४३	सम्मोहन	१८३
चमारो का नाच	१४५	रजतातप	१८३
बहारो का रूद्र नृत्य	१४६	हिमाद्रि	१८४
भारत माता	१४७	इन्द्रधनुष	१८६
चरखा गीत	१४८	चितन	१९०
महात्माजी के प्रति	१४९	मत्स्य गंधार्ण	१९४
राष्ट्र गान	१५०	अरुण ज्वाल	१९६
ग्राम देवता	१५१	स्वण निभर	१९७
संध्या के बाद	१५२	ज्योति भारत	१९८
खिडकी से	१५५	नोआखाली के	१९९
रेखाचित्र	१५८	महात्माजी	
दिवा स्वप्न	१६०	के प्रति	
सौंदर्य कला	१६०	जवाहरलाल नेहरू के प्रति	१९९
स्वीट पी के प्रति	१६२	अगुण्डिता	२००
कला के प्रति	१६३	चिमयी	२०१
स्त्री	१६५	हिमाद्रि श्रीर समुद्र	२०२
आधुनिका	१६६	भू प्रेमी	२०३
मजदूरनी के प्रति	१६६	पूषण	२०४
नारी	१६६	जिनासा	२०५
द्वंद्व प्रणय	१६६	स्वणिम पराग	२०५
१९४०	१६७	ऊषा	२०६
सूत्रधार	१६८	चन्द्रोदय	२०६
संस्कृति का प्रश्न	१६८	दा सुपर्णा	२१३
सांस्कृतिक हृदय	१६९	व्यक्ति श्रीर विश्व	२१४
	१६९	प्रभात का चाद	२१५
	१७०	हरीतिमा	२१५
			२१६

छाया पट	२१७	घातवर्षाणी	२६८
छायाहा	२१८	मुक्ति बचन	२६९
विवेदन	२१८	मातृ पनता	२६९
भू सता	२१९	मातृ शक्ति	३००
पीव के प्रति	२२०	प्रणाम	३०१
सन्मण	२२१	निर्भर	३०१
नारी पद्य	२२१	ज्योति भर	३०२
नील घर	२२२	प्रीति निर्भर	३०२
युग प्रभात	२२३	घातलोच	३०३
सविता	२२४	स्वग घप्पारी	३०३
श्री भरवि द दशन	२२५	चिप्रवरी	३०४
स्वर्णोदय	२२७	घातविवात	३०५
घशोव घन	२५७	घेन	३०५
		मूरयुजय	३०६
स्वणधूलि	२७५-३५३	सदमण	३०७
स्वणधूलि	२८१	छाया दपण	३०८
ज्याति वृषभ	२८२	छायाभा	३०९
अग्नि	२८२	आह्वान	३१०
बाल अक्षय	२८३	परिणति	३११
दयवाव्य	२८३	चौवी भूम	३११
देव	२८४	अतिम पंगम्बर	३१२
पुरुषाय	२८४	नरव म स्वग	३१४
अतगमन	२८५	दिवास्वप्न	३१६
एक सत्	२८५	सावन	३१७
प्रच्छन्न मन	२८६	तालवुल	३१८
सजन शक्तियाँ	२८७	क्रोटन के प्रति	३१८
इ इ	२८७	नव वधू के प्रति	३१९
वक्ष	२८८	आशका	३१९
सोमपायी	२८८	जममूमि	३२०
मगल स्तवन	२८९	युगागम	३२१
स यासी का गीत	२८९	गणपति उत्सव	३२१
भावो-मेप	२९२	स्वप्न निवल	३२२
आवाहन	२९३	लोक सत्य	३२३
प्राण काक्षा	२९३	सामजस्य	३२४
रस खरण	२९४	ग्रामीण	३२५
साधना	२९४	आजाद	३२६
प्रेम मुक्ति	२९४	बाले बादल	३२६
प्रतीति	२९५	जाति मन	३२७
साधकता	२९६	क्षण जीवी	३२८
कुण्ठित	२९६	मनुष्यत्व	३२८
आत	२९७	पनिता	३२९
अविच्छिन्न	२९८	परकीया	३३०

श्वजा वदना
१५ अगस्त '४७
हृदय तारुण्य
प्रणय कुञ्ज
मम कथा
मम व्यथा
सापन

३३१ शरद चाँदनी
३३१ स्वप्न व धन
३३२ स्वप्न देही
३३३ मानसी
३३३
३३४
३३४ मधुञ्जाल

३३४
३३५
३३६
३३७

३५५ ३६४

युगपथ

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४९]

विज्ञापन

'युगपथ' दो भागों में विभक्त है। पहला भाग 'युगान्त' है, जो प्रथम बार सन १९३६ में स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था, जिसमें सन '३४ से लेकर '३६ तक की मेरी तृतीय छोटी बड़ी रचनाएँ सम्मिलित हैं। पहिले सस्वरण की भूमिका का उल्लेखनीय अंश इस प्रकार है — 'युगांत' में 'पल्लव की कोमल कात कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाया है, मुझे विश्वास है, भविष्य में उसे मैं अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।

दूसरा भाग 'युगांतर' है, जिसमें मेरी इधर की कुछ नवीन रचनाएँ संग्रहित हैं, जिनमें से अधिकांश बापू जी के देह निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति के प्रति श्रद्धाजलि के रूप में लिखी गयी थी। शेष रचनाओं में तीन अनुकांत हैं जिनमें से प्रमुख ववीन्द्र रवीन्द्र के प्रति शीपक कविता है, जो उनके श्राद्धवासर के अवसर पर अगस्त के महीने में लिखी गयी थी।

'युगांत' की कलेवर वृद्धि की दृष्टि से भी उसके साथ कुछ नवीन कविताओं को सम्मिलित कर देना उचित समझा गया, जो अब प्रस्तुत संग्रह के रूप में पाठकों के पास पहुँच रहा है।

प्रयाग,
१ अक्टूबर, '४८ }

—सुमित्रानन्दन पंत

द्रुत भरो जगत के जीण पत्र,
है छस्त घ्वस्त, है शुष्क शीण ।
हिम-ताप-पीत, मधुवात भीत,
तुम धीतराग, जड, पुराचीन ॥

निष्प्राण विगत युग । मृत विहग ।
जग नीड शब्द ध्रौ' द्वास हीन,
श्रुत, अस्तव्यस्त पखो-स तुम
भर भर अनंत मे हो विलीन !

बकाल-जाल जग मे फैले
फिर नवल रघिर,—पल्लव साली ।
प्राणो की भ्रमर स मुखरित
जीवन की मासन हरियाली ।

मजरित विश्व मे यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज भ्रमर प्रणय-स्वर मदिरा स
भर दे फिर नव युग की प्याली ।

(फरवरी '३४)

गा, कोकिल, बरसा पावक वण ।

नष्ट भ्रष्ट हो जीण पुरातन,
ध्वस भ्रश जग के जड बंधन ।
पावक पग घर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन ।

गा, कोकिल, भर स्वर मे कम्पन ।

भरें जाति-कुल वण-पण धन,
अथ नीड से रुडि रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र गत राग-द्वेष रण,
भरें, मरें विस्मति मे तत्क्षण !

गा, कोकिल, गा,—कर मत चिंतन ।

नवल रघिर से भर पल्लव-तन,
नवल स्नेह सौरभ मे यौवन,
कर मजरित नध्य जग जीवन,
गूज उठें पी-पी मधु सब जन ।

गा, क्वचित्, नव गात वर सृजन !

रघु मातृय वे द्विज तूतन मा,
वाणी, येन, भाव नव गोमन,
राह मुहूर्तता ही मानग घन,
वरे मनुज नव जीवन यापन !

गा, क्वचित्, सदेव मनातन !

मातृय दिव्य स्फुलिंग धरतन,
यह न दह का नश्वर रज वष !
दत्त वाक् है उते १ वषर,
मानय का परिचय मानवपन !

क्वचित्, गा, मुकुलित हों दिशि-शरण !

(एप्रिल '३५)

३

भर पढता जीवन डाली से

मैं पतझड का सा जीण पात !—

वेवल, वेवल जग-कानन मे

लाने फिर से मधु का प्रभात !

मधु का प्रभात !—सद-सद जानीं

वैभव म जग की डाल डाल,

कलि-कलि, किसलय मे जग उठती

सुन्दरता की स्वर्गीय ज्वाल !

नव मधु प्रभात !—गूजते मधुर

उर उर मे नव आशाभिलाष,

सुख-सौरभ, जीवन-कलरव से

भर जाता सूना महाकाश !

भा मधु प्रभात !—जग के तम मे

भरती चेतना धमर प्रकाश,

मुरझाये मानस मुकुली म

पाती नव मानवता विकास !

मधु प्रात ! मुक्त नभ मे सस्मित

नाचती धरित्री मुक्त पाश !

रवि वाशि वेवल साक्षी होते

अविराम प्रेम करता प्रकाश !

मैं भरता जीवन डाली से

साह्लाद, शिशिर का शीण पात !

फिर से जगती के कानन मे

भा जाता नव मधु का प्रभात !

(एप्रिल '३५)

४

चञ्चल पग दीपशिखा के धर

गह, मग, वन मे धाया वसन्त !

मुलगा फाल्गुन पा मूनापन
 सो दय दिलाओ म अन त ।

सौरभ की दीतल ज्वाला से
 फंला उर उर म मधुर दाह
 भाया वसंत, भर पृथ्वी पर
 स्वर्गिक मुदरता का प्रवाह ।

पल्लव पल्लव मे नवल रग लिला,
 पत्रो में मांसल पीली सो स
 भाया नीली चित्रित दीप जला ।

भधरो की लाली रा चुपके
 कोमल गुलाब के गाल सजा,
 भाया, पसडियो को काले
 पीले धन्ना मे सहज सजा ।

बलि के पलको म मिलन स्वप्न,
 अलि के अतर म प्रणय गान
 लेकर भाया, प्रेमी वसन्त,—
 प्राकृत जट चेतन स्नह प्राण ।

काली कोकिल !—मुलगा उर म
 स्वरमयी वेदना का अंगार,
 भाया वसंत, घोपित दिगत
 करती भर पावक की पुकार ।

भा, प्रिये ! निखिल ये रूप रग
 रिलमिल अतर मे स्वर अनत
 रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति
 उसकी छाया, भाया वसंत ।
 (एप्रिल '३५)

५

विद्रुम श्री' मरकत की छाया,
 सोन चांदी का सूर्यातप,
 हिम परिमल की रेशमी वायु,
 शतरत्न छाया, खग चित्रित नभ ।

पतभड के कृश, पीले तन पर
 पल्लवित तरुण लावण्य लोक,
 शीतल हरीतिमा की ज्वाला
 दिशि दिशि फली कोमलाऽलोक ।
 आह्लाद प्रेम श्री' यौवन का
 नव स्वग, सद्य सोदय सष्टि,
 मजरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त
 कूजन गुजन की व्योम वष्टि ।

—तो, चित्र शलभ-सी, पंख शोल
उड़ने को भ्रम कुसुमित पाटी,—
यह है भ्रममाडे का वसंत,
खिल पटी निखिल पयत पाटी !
(मई '३५)

६

जगती के जन-पय, बानन भ
तुम गाम्भी विह्वल ! घनादि गान,
चिर नूय गिरिदिर पीडित जग में
निज घमर स्वरो स नरो प्राण !
जल, स्थल, समीर, नभ म व्यापक
छेड़ो उर की पावक पुकार,
बहु शाखाओ की जगती मे
बरसा जीवन सगीत प्यार !
तुम कहो, गीत खग ! डाला मे
जो जाग पटी कलियाँ भ्रजान,
बहु विटपों का श्रम-भुष्य नहीं,
मधुश्लुषु का मुक्कन, भ्रनत दान !

जो साये स्वप्ना के तम मे
वे जागेंगे—यह सत्य बात,
जो देख चुके जीवन निशीथ
वे देखेंगे जीवन प्रभात !
(मई '३५)

७

वे चहक रही कुजो मे चषल सुन्दर
चिड़ियाँ, उर का सुख बरस रहा स्वर स्वर पर !
पत्रो पुष्पो से टपक रहा स्वर्णातप
प्रात समीर के मृदु स्पर्शों से कॅप कॅप !
शत कुसुमो मे हँस रहा कुज उडु उज्ज्वल,
लगता सारा जग सद्य स्मित ज्यो शतदल !
है पूण प्राकृतिक सत्य किंतु मानव जग !
क्यो म्लान तुम्हारे कुज, कुसुम, श्रातप, खग ?
जो एक, असीम अक्षण्ड, मधुर व्यापकता
खो गयी तुम्हारी वह जीवन साधकता !
लगती विश्वी प्री' विह्वल भ्राज मानवाकृति,
एवम् शून्य भ्रम विश्व मानवी सम्कृति !

(मई '३५)

८

वे डूब गये—सब डूब गये
दुदम, उदप्र शिर अद्रि शिखर !

स्वप्नस्य दृए स्वर्णातिप म
 ता, स्वण स्वण भव सब भूधर ।
 पल म योमल पट, पिपल उठे
 मुदर बन, जट, निमम प्रस्तर,
 सय मत्र मुग्ग हो, जटित दृग,
 तहरो-स चित्रित सहरो पर ।

मानव जग मे गिरि वारा सी
 गत युग की ससृष्टियाँ दुधर
 बग्दी की हैं मानवता को
 रच दस जाति की भित्ति भ्रमर ।
 ये डूबेंगी—सब डूबेंगी
 पा नव मानवता का विकास
 हंस देगा स्वर्णिम वच्च-लोह
 छू मानव आत्मा का प्रकाश ।
 (एप्रिल '३६)

६

तारो का नभ । तारो का नभ ।
 सुदर, समृद्ध आदश सृष्टि ।
 जग के अनादि पय दशक वे,
 मानव पर उनकी लगी दृष्टि ।
 वे देव बाल भू को घेरे
 भावी भव की कर रहे पुष्टि ।
 सबा की कलियो-सा प्रमृत
 वह भावी जग जीवन विकास ।
 मानव का विश्व मिलन पवित्र,
 चतन आत्माका का प्रकाश ।

तारा का नभ । तारो का नभ ।
 अक्षित अपूर्व आदश सृष्टि ।
 शाश्वत शोभा का खिला स्वर्ग,
 अब होने को है पुष्प वृष्टि ।
 चाँदनी चेतना की अमन्द
 अग जग को छू दे रही तुष्टि ।

१०

(अक्टूबर '३५)

जीवन का फल, जीवन का फल ।
 यह चिर यौवन श्री से मासल ।
 इसके रस मे आनन्द भरा,
 इसका सीदय सदैव हरा,
 पा दुल्ल सुख का छाया प्रकाश
 परिपक्व हुआ इसका विकास

इसकी मिठास है मधुर प्रेम,
 श्री' अमर बीज चिर विश्व क्षेम ।
 जीवन का फल, जीवन का फल ।
 इसका रस लो,—हो जम सफल ।

तीखे, चमकीले दाँत चुभा
 चाबो इसकी, क्यों रहे लुभा ?
 निर्भीक बनो, साहसी, शक्त,
 जीवन प्रेमी,—मत हो विरक्त ।
 मुन्दर इच्छा की धरो आग,
 प्रिय जगती पर दमितानुराग ।
 (मई '३५)

११

बढ़ो अभय, विदवास चरण धर ।
 सोचो वृथा न भव भय कातर ।
 ज्वाला के विदवास के चरण,
 जीवन मरण समुद्र सन्तरण,
 सुख दुख की लहरो के शिर पर
 पग धर पार करो भव सागर ।
 बढ़ो, बढ़ो विश्वास चरण धर ।
 क्या जीवन ? क्यों ? क्या जग कारण ?
 पाप पुण्य, सुख दुख का वारण ?
 व्यय तक ! यह भव लोकोत्तर
 बढ़ती लहर, वृद्धि से दुस्तर ।
 पार करो विश्वास चरण धर ।

जीवन पथ तमिस्रमय निजन
 हरती भव-तम एक लघु किरण
 यदि विश्वास हृदय में अणु भर
 देंगे पथ तुमको गिरि सागर
 बढ़ो, अमर विदवास चरण धर ।
 (मई '३५)

१२

गजन कर मानव केसरि ।
 ममस्पृह गजन,—
 जग जावे जग में फिर से
 मीया मानवपति ।

बाँप उठे मानस की अघ
 गुहाघो का तम,
 अदम क्षमताशील बनें,
 जावे दुविधा, ध्रम ।

निमय जग जीवन कानन म
 वर है विचरण
 काँप, मरें गत स्व मनुजता के
 मकट गण ।
 प्रखर नखर नव जीवन की
 साससा गहा कर
 छिन्न भिन्न कर दे गत युग के
 शव को, दुघर ।
 गजन वर, मानव बेसरि !
 प्राणप्रद गजन,
 जागें नव युग के खग,
 बरसा जीवन कजन ।
 (अक्टूबर '३५)

१३

बाँसो का झुरमुट—
 सध्या का झुटपुट—
 हैं चहक रही चिड़ियाँ
 टी - वी - टी—टुट टुट ।
 वे ढाल ढाल कर उर अपने
 हैं बरसा रही मधुर सपने
 श्रम जजर विधुर चराचर पर,
 गा गीत स्नेह वेदना सने ।
 ये नाप रहे निज घर का मग
 कुछ श्रमजीवी घर ढगमग ढग,
 भारी है जीवन ! भारी पग !
 भा , गा गा शत शत सहृदय खग,
 सध्या विखरा निज स्वर्ण सुभग
 भौ' गंध पवन भल मद व्यजन
 भर रहे नया इनम जीवन,
 ढीली हैं जिनकी रग रग ।
 —यह लौकिक भौ' प्राकृतिक कला,
 यह काव्य अलौकिक सदा चला
 भा रहा,—सष्टि के साथ पला ।
 × × ×
 गा सके खगो - सा मेरा कवि,
 विश्वी जग की सध्या की छवि ।
 गा सके खगो सा मेरा कवि,
 फिर हो प्रभात,—फिर आवे रवि ।
 (अक्टूबर '३५)

युगपथ / १३

जग जीवन मे जो चिर महान
सौन्दर्य पूण भौ सत्य प्राण,
मैं उसका प्रेमी बनू, नाथ !
जिसमे मानव हित हो समान !

जिसस जीवन मे मिले शक्ति,
छुटें भय सशय, अथ भक्ति,
मैं वह प्रकाश बन सकू, नाथ !
मिल जावें जिसमे अखिल व्यक्ति !

दिशि दिशि मे प्रेम प्रभा प्रसार,
हर भेद भाव का अघकार,
मैं खोल सकू चिर मुदे नाथ !
मानव के उर के स्वर्ग द्वार !

पाकर प्रभु ! तुमसे अमर दान
करने मानव का परित्राण,
ला सकू विश्व मे एक बार
फिर से नव जीवन का विहान !

(मई '३५)

जो दीन हीन, पीडित, निबल,
मैं हूँ उनका जीवन सम्बल !
जो मोह छिन, जग मे विभक्त,
वे मुझमे मिलें, बनें सशक्त !

जो अहपूण, वे अघ रूप,
जो नम्र उठे बन कीर्ति स्तूप !
जो छिन भिन जल कण असार,
जो मिले, बने सागर अपार !
जग नाम-रूपमय अघकार,
मैं चिर प्रकाश में मुक्ति द्वार !

(मई '३५)

शत बाहु पाद, शत नाम रूप,
शत मन, कच्छा धाणी, विचार,
शत राग द्वेष, शत क्षुधा नाम,—
यह जग जीवन का अघकार !

शत मिथ्या वाद विवाद, तव,
शत रुढ़ि नीति, शत धम द्वार,
गिना ससृष्टि, गह्या, समाज,—
यह पशु मानव का अहकार !

यह दिशि पल का तम, इन्द्र जाल,
 बहु भेद जय, भव क्लेश भार,
 प्रभु ! बाँध एकता में अपनी
 भर दें इसमें अमरत्व सार !
 (मई '३५)

१७

ए मिट्टी के ढेले अजान !
 तू जड़ अथवा चेतना - प्राण ?
 क्या जड़ता - चेतनता समान
 निर्गुण, निसर्ग, निस्पृह, वितान ?
 कितने तूण, पीधे, मुकुल, सुमन,
 ससृति के रूप रग मोहन,
 ढीले कर तरे जड़ बंधन
 धाय भौ' गय ! (यही क्या मन ?)

अब हुआ स्वप्न मधु का जीवन,
 विस्मृत सुख दुख, स्मृति के बंधन !
 खल गया शून्यमय अवगुठन
 अनेय सत्य तू जड़चेतन !
 (जून '३५)

१८

खी गयी स्वर्ण की स्वर्ग किरण
 छू जग - जीवन का अघवार,
 मानस के सूने - से तम को
 दिशि पल के स्वप्नो में सँवार !
 गुथ गये अजान तिमिर प्रकाश
 दे-दे जग - जीवन को विकास
 बहु रूप - रग - रेखाओं में
 भर विरह मिलन का अश्रु हास !

धुन जग का दुग्म अघकार
 चुन नाम रूप का अमत सार
 मैं खोज रहा खोया प्रकाश
 सुलभा जीवन के तार - तार !

खी गयी स्वर्ग की अमर किरण
 कुसुमित कर जग का अघवार,
 जान कब भूल पडा निज को
 मैं उसको फिर इसको निहार !

(एप्रिल ३६)

सुन्दरता का आलोक स्रोत
है फट पडा मेरे मन मे,
जिससे नव जीवन का प्रभात
होगा फिर जग के आँगन मे ।

मेरा स्वर होगा जग का स्वर,
मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानस का स्वग - लोक
उतरेगा भू पर नयी वार ।

सुन्दरता का ससार नवल
अकुरित हुआ मेरे मन मे,
जिसकी नव मासल हरीतिमा
फैलेगी जग के गह - वन मे ।

होगा पल्लवित रघिर मेरा
वन जग के जीवन का वसत,
मेरा मन होगा जग का मन,
औ' मैं हूँगा जग का अनत ।

मैं सष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित भीतर,
सौदय, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नहीं जग मे बाहर ।

(एप्रिल '३६)

२०

नव हे नव हे,
नव - नव सुपमा मे मण्डित हो
चिर पुराण भव हे !
नव हे !

नव ऊया सध्या अभिर्नदित
नव - नव ऋतुमपि भू, दशि शोभित,
विस्मित हो देखूँ मैं अतुलित
जीवन वैभव हे !
नव हे !

नव दशव यौवन हिल्लोलित
जम मरण मे हो जग दोलित,
नव इच्छामा का हो उर मे
भाकुल पिक रव हे !
नव हे !

बाँधे रहें मुक्ति के बंधन
हो सीमा असीम - अवलम्बन,

द्वार खड़े हो नित नव सुख दुख,
विजय पराभव है।
नव है।

अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुख दुख के अस्थिर पग,
मेरे जीवन से ही जीवित
यह जग वा शव है।
नव है।

(जुलाई '३४)

२१

बाधोऽ, छवि के नव ब धन बाधो !
नव नव आशाऽकाशाओ मे
तन मन जीवन बाँधो !
छवि के नव—

भाव रूप म, गीत स्वरो म,
गंध कुसुम मे, स्मिति अधरो म
जीवन की तम की वणी मे
निज प्रकाश कण बाँधो !
छवि के नव—

सुख से दुख श्री' प्रलय से सजन,
चिर आत्मा से अस्थिर रज तन
महा मरण को जग जीवन का
दे आलिंगन, बाँधो !
छवि के नव—

बाधो जलनिधि नधु जलवण मे,
महाकाल को क्वलित क्षण मे,
फिर फिर अपनेपन को मुझमे
चिर जीवन धन , बाँधो
छवि के नव—

(जुलाई '३४)

२२

मजरित आम्र - वन - छाया मे
हम प्रिये मिल थ प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा नभ गुजित,
नीचे चद्रातप छाया स्फार !

तुम मुग्धा थी, अति भाव प्रवण,
उकमे थे अँवियो - स उरोज,

चंचल, प्रगल्भ, हंसमुख, उदार,
 मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज !

छनती थी ज्योत्स्ना शशि मुख पर,
 मैं करता था मुझ सुधा पान,—
 कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
 भर गये गंध स मुग्ध प्राण !

तुमने अघरो पर घरे अघर,
 मैंने कोमल वपु भरा गोद,
 था आत्म समपण सरल, मधुर,
 मिल गये सहज मास्तामोद !

मजरित आम्र द्रुम के नीचे
 हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
 मधु के कर मे था प्रणय वाण,
 पिक के उर मे पावक पुकार !
 (मई '३५)

२३

वह विजन चांदनी की घाटी
 छापी मधु वन तरु गंध जहाँ
 नीवू झाड़ू के मुकुलो के
 मद से मलयानिल लदा बहा !

सौरभ श्लथ हो जाते तन मन,
 बिछते भर भर मधु सुमन शयन,
 जिन पर छन कम्पित पत्रो से,
 लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहा !

आ कोकिल का कोमल कूजन
 उक्साता आकुल उर कम्पन,
 यौवन का री वह मधुर स्वग,
 जीवन बाधाएँ बहा कहीं ?
 (मई, '३५)

२४

छाया ?

वह लेटी है तरु छाया मे,
 स व्या विहार की आया मैं !

मधु बाह मोड उपधान किये,
 ज्यो प्रेम लालसा पान किये,
 उभरे उरोज, कुत्तल लाले,
 एकाकिनि, कोई क्या बोल ?

यह सुंदर है, साँवली सही,
तरणी है—हो पौडशी रही
विवसना, लता सी तवगिनि,
निजन मक्षण भर की सगिनि !

वह जागी है अथवा सोयी ?
मूर्छित या स्वप्नमूढ कोई ?
नारी कि अप्सरा या माया ?
अथवा केवल तह की छाया ?
(एप्रिल, '३५)

२५

खोलो, मुख स धूषट खोला,
हैं चिर अयगुण्ठनमयि बोलो !
क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन,
अथवा भीतर जीवन कम्पन ?

कल्पना मात्र मधु देह लता'
पा ऊर्ध्व ग्रह, माया विनता !
है स्पृश्य स्पर्श का नहीं पता,
है दश्य, दृष्टि पर सके बता !

पट पर पट केवल तम अपार,
पट पर पट खुले, न मिला पार !
सखि हटा अपरिचय अघकार
खोली रहस्य के मम द्वार !

मैं हार गया तह छील छील,
आखा से प्रिय छवि लील लील,
मैं हूँ या तुम ? यह कैसा छल !
या हम दोनों, दोनों के बल ?

तुमम कवि का मन गया समा,
तुम कवि के मन की हो सुपमा,
हम दो भी है या नित्य एक ?
तब कोई किसको सके देख ?

श्री मौन चिरतन तम प्रकाश
चिर अवचनीय, आश्चय पाश !
तुम अतल गत, अविगत, अवल,
फली अनत म बिना मूल !

अनेय गुह्य, अग जग छापी,
माया मोहिनि, संग संग आयी !
तुम बुहुकिनि, जग की मोह निगा
मैं रहूँ सत्य, तुम रहो मपा !

(एप्रिल, '३६)

युगपथ / १६

शुक्र !

द्वाभा के एकाकी प्रेमी,
नीरव दिगंत के शब्द मीन,
रवि के जात, स्पल पर घात
बहते तुम तम मे चमक—कीन ?

साध्या के सोने के नभ पर
तुम उज्ज्वल हीरक सदृश जड़े,
उदयाचल पर दीप्त प्रात
अगूठे के बल हुए लड़े !

अब मूनी दिति भी' श्रांत यामु
बुम्हलायी पवज बली सष्टि,
तुम डाल विश्व पर कण प्रभा
अविराम कर रह प्रेम वष्टि !
भो छोटे दिति, चाँदी के उड्ड !
जब जब फले तम का मिनाश,
तुम दिव्य दूत से उतर गीघ्र
बरसाओ निज स्वर्गिक प्रकाश !

(मई, '३५)

लघोत

अंधियाली घाटी में सहसा
हरित स्फुलिंग सदृश फूटा वह !
वह उडता दीपक निशीय का—
तारा - सा आकर टूटा वह !

जीवन के धन अघवार में
मानव आत्मा का प्रकाश कण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानस के चिर गुह्य फुज वन !

(मई, '३५)

सष्टि

मिट्टी का गहरा अघवार
डूबा है उसमें एक बीज,
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कीदो, सरसो से क्षुद्र चीज !

उस छोटे उर में छिपे हुए
 है डाल पात श्री' स्व-ध मूल
 गहरी हरीतिमा की ससति,
 बहु रूप रग फल और फूल !
 वह है मुटठी में बंद किये
 बट के पादप का महाकार,
 ससार एक ! आश्चर्य एक !
 वह एक बूद, सागर अपार !

बंदी उसमें जीवन अकुर
 जो तोड़ निल्लिल जग के बंधन
 पाने को है निज सत्व, मुक्ति !
 जड़ निद्रा से जग, बन चेतन !

आ, भेद न सका सृजन रहस्य
 कोई भी ! वह जो क्षुद्र पोत
 उसमें अनन्त का है निवास,
 वह जग जीवन से ओतप्रोत !
 मिट्टी का गहरा अधकार,
 सोया है उसमें एक बीज
 उसका प्रकाश उसके भीतर,
 वह अमर पुत्र ! वह तुच्छ चीज ?

(मई, '३५)

२६

ताज

हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपायिध्व पूजन ?
 जब विदग्ध निर्जीव पडा हो जग का जीवन !
 स्फटिक सौध में ही शृंगार मरण का शोभन,
 नग्न, क्षुधातुर, वास विहीन रह जीवित जन ?

मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति ?
 आत्मा का अपमान, प्रेत श्री' छाया स रति ! !
 प्रेम अचना यही, करें हम मरण की वरण ?
 स्थापित कर ककाल, भरें जीवन का प्राण ?

शव को दें हम रूप, रग, आदर मानव का ?
 मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का ?
 गत युग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर

मूल गये हम जीवन का सदश अनद्वर
 मृतको के है मतक, जीवितो का है ईश्वर !

(अक्टूबर, '३५)

युगपय / २१

मानव

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुपमा से
तुम निखिल स्रष्टि मे चिर निरूपम !
यीवत ज्वाला से वेष्टित तन,
मृदु त्वच, सौ दय प्ररोह अग,
योछावर जिन पर निखिल प्रकृति,
छाया प्रकाश के रूप रग !

धावित कृश नील शिराम्रा म
मदिरा से मादक रुधिर धार
आँखें हैं दो लावण्य लाव,
स्वर मे निसग सगीत सार !
पथु उर उरोज, ज्यो सर, सरोज,
दढ बाहु प्रलम्ब प्रेम बधन,
पीनोह स्कन्ध जीवन तरु के,
कर पद, अगुलि, नख शिख शोभन !

योवन की मासल स्वस्थ गन्ध,
नव युग्मा का जीवनोत्सग !
आह्लाद अखिल, सौदय अखिल,
औ प्रथम प्रेम का मधुर स्वग !
आशाऽभिलाष, उच्चाकाक्षा,
उद्यम अजस्र, विघ्नो पर जय,
विदवास, असदसत का विवेक,
दढ श्रद्धा, सत्य प्रेम अक्षय !
मानसी भूतिया ये अमन्द,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,
जो स्तम्भ सम्मता के पाथिव,
सस्कृति स्वर्गीय,—स्वभाव पूर्ति !

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय, मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अवेपण,
सब एव, एक सब मे प्रकाश !
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्ह
उपभोग करो प्रतिक्रम नव नव,
क्या कमी तुम्ह है त्रिभुवन मे
यदि बन रह सको तुम मानव !

(एप्रिल, '३५)

नीली, पीली धो चटकीली
पखा की प्रिय पेंखडियां खोल
प्रिय निली ! फूल सी ही फूली
तुम किस सुख में हो रही डान ?

10 x 31
10 x 100
10 x 100

21/1983

चांदी सा फंला है प्रकाश,
चंचल अचल - सा मलयानिल
है दमक रही दीपहरी म
गिरि घाटी सौ रगा म खिल !

तुम मधु की कुसुमित अप्सरि - सी
उड उड फूलो को बरसाती,
शत इद्रचाप रच रच प्रतिपल
किस मौन गीति लय म गाती ?

तुमने यह कुसुम विहग लिवास
क्या अपने सुख म स्वय बुना ?
छाया प्रकाश से या जग क
रेसामी परा का रग चुना ?

21
1983

क्या बाहर से आया रगिणि !
उर का यह आतप यह हुलास ?
या फूलो से सी धनिल-कुसुम !
तुमने मन के मधु की मिठास ?

चांदी का चमकीला आतप,
हिम परिमल चंचल मलयानिल,
है दमक रही गिरि की घाटी
शत रत्न-छाय रगा म खिल

—चित्रिणि ! इस सुख का स्रोत कहाँ
जा बरता नित सौ-दय सृजन ?
'वह स्वग छिपा उर के भीतर—
क्या कहती यही, सुमन - चैन ?

(मई, '३५)

21/5/83

तुम रूपसि बौन ?
उतर रही चंचल
छाया प्रिब न प्राय
सुनहला पंता के कृपान
मयूर, मयूर, मयूर

मूढ अधरो मे मधुपालाप,
 पलक मे निमिष, पदा मे चाप,
 भाव सकुल बकिम, भ्रू चाप,
 मौन, केवल तुम मौन ।

ग्रीव तियक, चम्पक द्युति गात,
 नयन मुकुलित, नत मुग्ध जनजात,
 देह छवि छाया म दिन - रात,
 वहाँ रहती तुम कौन ।

अनिल पुलकित स्वर्णाचल लोल,
 मधुर नूपुर ध्वनि खग कुल रोल,
 सीप स जलदो के पर खोल,
 उड रही नभ म मौन ।

लाज म अरुण धरण सुनपोल,
 मंदिर अधरा की सुरा अमौन,—
 बने पावस धन स्वण हिंदोन,
 कहो, एवाकिनि, कौन ?
 मधुर, म धर तुम मौन ।

(सितम्बर '३०)

३३

बापू के प्रति

तुम मासहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थिशेष । तुम अस्थिहीन,
 तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल, हे चिर पुराण, हे चिर नवीन ।
 तुम पूण इकाई जीवन की, जिसमे असार भव दूय सी
 आधार अमर, होगी जिस पर भावी की सस्कृति ममासीन ।

तुम माम, तुम्ही हा रक्त अस्थि — निर्मित जिनसे नव युग का तन,
 तुम धैर्य । तुम्हारा नि स्व त्याग ही विश्व भोग का वर साधन,
 इस भस्म काम तन की रज स जग पूणकाम नव जग जीवन
 बीनेगा सत्य अहिंसा के ताने बाना स मानवपन ।

सदियों का द य तमिस्र नूम, धुन तुमन, कात प्रकाश सूत,
 हे नगन । नगन पशुना डेक दी बुन नव सस्कृत मनुजत्व पूत ।
 जग पीडित छूता से प्रभूत, छ् अमृत स्पश से, हे अछूत ।
 तुमने पावन कर, मुक्त किये मृत सस्कृतियों के विकृत भूत ।

सुख भोग खोजने आत सब, आय तुम करने सत्य खोज,
 जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के, मन क मनोज ।
 जडता, हिंसा, स्पर्धा मे भर चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
 पशुता का पकज बना दिया तुमने मानवता का सराज ।

पशुबल की कारा स जग को दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
 विद्वेष, घृणा से लडने की सिखलाई दुजय प्रेम युक्ति,

वर श्रमप्रसूति स की वृत्ताय तुमने विचार परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त ह अनासक्त, सर्वस्व त्याग को बना भुक्ति ।

सहयोग सिखा शासित जन का शासन का दुवह हरा भार,
हाकर निरस्त्र, सत्याग्रह स रोका मिथ्या का बल प्रहार,
बहु भेद विग्रहा में खापी ली जीण जाति क्षय स उवार,
तुमने प्रवास को कह प्रकाश, श्री अधकार को अधकार ।

उर के चरखे म कात सूक्ष्म युग युग का विषय जनित विपाद,
गुजित कर दिया गगन जग का भर तुमन आत्मा का निनाद ।
रंग रंग खट्टर के सूत्रो म नव जीवन आशा, स्पृहा, ह्लाद
मानवी कला के सूत्रधार, हर लिया य त्र कीशल प्रवाद ।

जडवाद जजरित जग म तुम भवतरित हुए आत्मा महान्
य त्राभिभूत युग म करने मानव जीवन का परित्राण
बहु छाया बिम्बो म खोया, पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान
फिर रक्त मास प्रतिमाघा म फूवने सत्य म भ्रमर प्राण ।

ससार छोडकर ग्रहण किया नर जीवन का परमाय सार,
अपवाद बने, मानवता के ध्रुव नियमा का करने प्रचार,
हा सावजनिकता जयी, अजित ! तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने तुम हुए अलौकिक, हे उदार ।

मगल शशि लोलुप मानव थे विस्मित ब्रह्माण्ड परिधि विलोक,
तुम के-द्र खाजन आये तब सब म व्यापक, गत राग शोक
पशु पक्षी पुष्पो स प्ररित उद्दाम-काम जन त्राति रोक
जीवन इच्छा को आत्मा के वक्ष म रख, शासित किय लोक ।

या व्याप्त दिशावधि ध्वात आत इतिहास विश्व उद्भव प्रमाण,
बहु हेतु, बुद्धि, जड वस्तुवाद मानव सस्कृति के बन प्राण,
थ राष्ट, अय, जन, साम्यवाद छल सन्य जगत के शिष्ट मान,
भू पर रहते थे मनुज नहीं, बहु रूढि रीति प्रेतो समान—

तुम विश्व मच पर हुए उदित बन जग जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिय मन से, कर नर चरित्र का नवोद्धार,
आत्मा को विपयाधार बना दिगि पल के दश्यो को सँवार
गा गा—एकोह बहु स्याम हर लिय भेद भव भीति भार ।

एकता इष्ट निदेश किया, जग खोज रहा था जब समता
अंतर शासन चिर राम राज्य, श्री बाह्य, आत्महन अक्षमता
हा कम निरत जन राग विरत रति विरति यतिक्रम भ्रम ममता
प्रतिश्रिया श्रिया साधन अवयव, है सत्य सिद्ध, गति यति क्षमता !

ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तत्र शासन चालन के वृत्तन यान,
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र है तुलनात्मक, सापक्ष ज्ञान,

भौतिक विज्ञाना की प्रसूति, जीवन उपकरण चयन प्रधान,
मध सूक्ष्म स्थूल जग, बोले तुम—मानव मानवता का विधान ।

साम्राज्यवाद था कस, यदिनी मानवता पशुबलाश्रित,
शुखला दासता, प्रहरी बहू निमम शासन पद गवित भ्रात,
कारागह मे दे दिव्य जन्म मानव आत्मा की मुक्त, बात,
जन शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत, पद प्रणत, शात ।

कारा थी सस्कृति विगत, भित्ति यह धम जाति गत रूप-नाम,
बन्दी जग जीवन, भू विभक्त, विज्ञान मूढ जन प्रकृति-काम,
आये तुम मुक्त पुरुष कहने—मिथ्या जड बन्धन, सत्य राम,
नानत जयति सत्य, मा भै , जय नान ज्योति, तुमका प्रणाम ।

(एप्रिल '३६)

युगान्तर

१

श्रद्धा के फूल

अतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर,
स्वर्ग रक्षित से मृत्यु लोह की रज को रँग कर ।
टूट गया तारा, अतिम आभा का दे वर,
जीण जाति मन के खँडहर का अ धकार हर ।

अतर्मुख हो गयी चेतना दिव्य अनामय
मानस लहरों पर शतदल सी हँस ज्योतिमय ।
मनुजों में मिल गया आज मनुजों का मानव
चिर पुराण को बना आत्मबल से चिर अभिनव ।

आओ, हम उसको श्रद्धाजलि दें देवाचित,
जीवन सुन्दरता का घट मृत को कर अर्पित,
मंगलप्रद हो देव मृत्यु यह हृदय विदारक
नव भारत हो बापू का चिर जीवित स्मारक ।

बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन
बापू की चेतना वसत बखेरे नूतन ।

२

हाय हिमालय ही पल में हो गया तिरोहित
ज्योतिमय जल से जन धरणी को कर प्लावित ।
हा हिमाद्रि ही तो उठ गया घरा से निश्चित
रजत वाष्प सा अतनभ में ही अतहित ।

आत्मा का वह शिखर, चेतना में लय क्षण में,
व्याप्त हो गया सूक्ष्म चादनी सा जन मन में ।
मानवता का मेरु रजत विरणी में मण्डित,
अभी अभी चलता था जो जग को कर विस्मित,
लुप्त हो गया लोक चेतना के क्षत पट पर
अपनी स्वर्गिक स्मृति की शाश्वत छाप छोड़कर ।

आओ, उसकी अक्षय स्मृति का नीव बनायें,
उस पर सस्कृति का लोकोत्तर भवन उठायें ।
स्वर्ण शुभ्र धर सत्य कलश स्वर्गोच्च शिखर पर
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष वर ।

प्राज प्रायना स वरत तूण तर भर मगर,
सिमटा रहा चपन कूला रो निस्तल सागर !
नम नीनिमा मे तीरव, तभ करना चिन्ता,
स्वात रोनकर ध्यान मन-सा हुमा ममीरण !

क्या क्षण मगुर ता के हा जान स प्राभन
मूनपन म समा गया यह गारा भूतल ?
नाम रूप की सीमाघा स मोह मुक्त मन
या अरूप की ओर बढ़ाता स्वप्न के चरण ?

नात नही पर द्रवीभूत हा दुग्ध का बादल
बरस रहा अरु नय चेतना म हिम उज्ज्वल
वापू के आनीर्वाद - सा ही अस्तल
सहसा है भर गया सौम्य आभा न शीतल !

खादी के अरुप जीवन सौन्दर्य पर सरन
भावी के मतरंग सपन कोंप उठत भनमल !

४

हाय आसुमा के आचल म डूब नन आनन
तू त्रिपाद की गिला बन गयी प्राज अचेतन
आ गाधी की घर, नही क्या तू अराय-ग्रण ?
कौन शस्त्र मे भेद सवा तरा अछेद्य तन ?

तू अमरो की जनी, मत्य भू मे भी आरर
रही स्वग स परिणीता, तप पूत निरतर !
मगल बलशो म तेरे बक्षोजा म घन
लहराता निन रहा चेतना का चिर जीवन !
कीर्ति स्तम्भ न उठ तरे कर अम्बर पट पर
अमित करते रहे अमित ज्योतिमय अक्षर !

उठ, ओ गीता के अक्षय जीवन की प्रतिमा,
समा सकी कब धरा स्वग म तेरी महिमा !
देख, ओर भी उच्च हुमा अब भाल हिम गिम्बर
वाध रहा तेरे अचल से भू को सागर !

५

हिम किरीटिनी मौन आज तुम शीश भुवाय
सी वसत हो कोमल अंगो पर कुम्हलाय !
वह जो गौर्व शृंग धरा का था स्वर्गोज्ज्वल,
टूट गया वह? —हुमा अमरता म निज ओभल !
लो, जीवन सी दय ज्वार पर आता गाधी
उसन फिर जन सागर मे आभा पुल वाधी !

रोलो, मा, फिर बादल-सी निज कबरी श्यामल,
 जन मन के शिखरा पर चमकें विद्युत के पल ।
 हृदय हार सुरधुनी तुम्हारी जीवन चंचल,
 स्वर्ण श्रोणि पर शीश धरे सोया वि ध्याचल ।
 गज रदनो से पुत्र तुम्हारे जघनो मे घन
 प्राणो का उमादन जीवन करता नतन ।

तुम अनंत यौवना धरा हो, स्वर्गावाक्षित,
 जन को जीवन शोभा दो भू हो मनुजोचित ।

६

देख रह क्या देव, सड़े स्वर्गोच्च शिखर पर
 लहराता नव भारत का जन जीवन सागर ?
 द्रवित हो रहा जाति मनस का अधकार घन
 नव मनुष्यता के प्रभात म स्वर्णिम चेतन ।

मध्ययुगो का घृणित दाय हो रहा पराजित
 जाति द्वेष, विश्वास अध, औदास्य अपरिमित ।
 सामाजिकता के प्रति जन हो रहे जागरित
 प्रति वैयक्तिकता म खोय, मुण्ड विभाजित ।

देव, तुम्हारी पुण्य स्मृति बन ज्योति जागरण
 नव्य राष्ट्र का आज कर रही लौह सगठन ।
 नव जीवन का रुधिर हृदय म भरता स्पन्दन
 नव्य चेतना के स्वप्नो स विस्मित लोचन ।

भारत की नारी ऊपा - सी आज अगुण्डित,
 भारत की मानवता नव आभा से मण्डित ।

७

देख रहा हूँ, शुभ्र चाँदनी का सा निम्कर
 गांधी युग प्रवर्तित हो रहा जन धरणी पर ।
 विगत युगो के तोरण, गुम्बद, मीनारो पर
 नव प्रकाश शोभा रेखाओ का जाड़ भर ।

सजीवन पा जाग उठा हो राष्ट्र का मरण
 छायाएँ सी आज चल रही भू पर चेतन —
 जन मन मे जग, दीप शिखा के पग धर नूतन,
 भावी के नव स्वप्न धरा पर करत विचरण ।

सत्य अहिंसा बन अंतर्राष्ट्रीय जागरण
 मानवीय स्पर्शों से भरते धरती के व्रण ।

भुक्ता तडित् अणु के अश्वा को, कर आरोहण,
नव मानवता करती गाधी का जय घोषण !

मानव के अतरतम शुभ्र तुपार के शिखर
नव्य चेतना मण्डित, स्वर्णिम उठे अब निखर !

८

देव पुत्र था निश्चय वह जन मोहन मोहन,
सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण !
विचरण करते थे उसके संग विविध युग वरद
राम, कृष्ण, चंतय, मसीहा, बुद्ध, मुहम्मद !
उसका जीवन मुक्त रहस्य कला का प्रागण,
उसका निश्छल हास्य स्वर्ग का था वातायन !
उसके उच्चादशों से दीपित अब जन मन,
उसका जीवन स्वप्न राष्ट्र का बना जागरण !

विश्व सम्यता की कृत्रिमता स हा पीडित
वह जीवन सारत्य कर गया जन मे जागृत !
यात्रिकता के विषम भार से जजर भू पर
मानव का सौदय प्रतिष्ठित कर देवोत्तर !

आत्म दान से लोक सत्य को दे नव जीवन
नव सस्कृति की शिला रख गया भू पर चेतन !

९

देव, अवतरण करो धरा मन मे क्षण, अनुक्षण
नव भारत के नव जीवन बन नव मानवपन !
जाति ऐक्य के ध्रुव प्रतीक, जग वद्य महात्मन,
हिंदू मुस्लिम बडे तुम्हारे युगल चरण बन !

भावी कहती बाना मे भर गोपन ममर,—
हिंदू मुस्लिम नही रहेंगे भारत के नर !
मानव होंगे वे, नव मानवता से मण्डित,
मध्य युगो की कारा से भू पर चल विस्तृत !

जाति द्वेष से मुक्त, मनुजता के प्रति जीवित,
विकसित होंगे वे उच्चादशों से प्रेरित !
भू जीवन निर्माण करेंगे शिक्षित जन मत,
बापू मे हो युक्त, युक्त हो जग से युगपत !

नव युग व चेतना ज्वार भ कर अवगाहन
नव मन, नव जीवन सौदय करेंगे धारण !

दप दीप्त मनु पुत्र, देव, कहता तुमको युग मानव,
 नहीं जानता वह, यह मानव मन का आत्म पराभव ।
 नहीं जानता, मन का युग मानव आत्मा का शैशव,
 नहीं जानता मनु का सुत निज अतनभ का वैभव ।
 जिन स्वर्गिक शिखरो पर करते रहे देव नित विचरण,
 जिस शाश्वत मुख के प्रकाश से भरते रहे दिशा क्षण,
 आज अपरिचित उससे जन, भौड़े प्राणों का जीवन,
 मन की लघु डगरो म भटके, तन को किये समपण ।
 वे मिट्टी-से आज दवाये मुह म ममता के तण,
 नहीं जानते वे, रज की काया पर देवों का ऋण ।
 ज्योति चिह्न जो छोड़ गये जन मन मे बुद्ध महात्मन
 वे मानव की भावी के उज्ज्वल पथ दशक नूतन ।
 मनोयत्र कर रंग चेतना का नव जीवन प्रथित
 लोकोत्तर के संग देवोत्तर मनुज हो रहा विकसित ।

११

प्रथम अहिंसक मानव बन तुम आये हिन धरा पर
 मनुज बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शों से ससृष्ट कर,
 निबल प्रेम को भाव गगन से निमम धरती पर धर
 जन जीवन के बाहुपाश मे बाँध गये तुम दढतर ।
 द्वेष घृणा के कट्टे प्रहार सह, करुणा दे प्रेमोत्तर
 मनुज अह के गत विधान को बदल गये, हिंसा हर ।
 घणा द्वेष मानव उर के सस्वार नहीं हैं मौलिक,
 वे स्थितियों की सीमाएँ हैं जन होगे भौगोलिक ।
 आत्मा का सचरण प्रेम होगा जन मन के अभिमुख,
 हृदय ज्योति से मण्डित होगा हिंसा स्वर्धा का मुख ।
 लोक अभीप्सा के प्रतीक, नव स्वर्ग मत्य के परिणय,
 अग्रदूत बन भव्य युग पुरुष के आये तुम निश्चय ।
 ईश्वर को दे रहा जन्म युग मानव का सघषण,
 मनुज प्रेम के ईश्वर, तुम यह सत्य कर गये घोषण ।

१२

सूर्य विरण सतरंगी की श्री करती वषण
 सौ रंगों का सम्मोहन कर गये तुम सजन,—
 रत्नच्छाया सा, रहस्य शोभा स गुम्फित
 स्वर्गों मुख सौंदर्य प्रेम आनन्द से स्वसित ।

स्वप्ना का चद्रातप तुम वुन गये कलाघर,
विहँस कल्पना नभ से, भाव जलद पर रँगकर,
रहस प्रेरणा की तारक ज्वाला से स्पदित
विश्व चेतना सागर को कर रग ज्वार स्मित ।

प्राण शक्ति के तडित् मेघ-से मद्र भर स्तनित
जन भू को कर गये अग्नि बीजो से गर्भित,
तृम अखण्ड रस पावस का जीवन प्लावन भर
जगती को कर अजर हृदय धौवन से उवर ।

आज स्वप्न पथ से आते तुम मौन घर चरण,
बापू के गुरुदेव, देखने राष्ट्र जागरण ।

१३

राजकीय गौरव स जाता आज तुम्हारा अस्थि फूल रथ
श्रद्धा मौन असग्य दगो स अतिम दशन करता जन पथ ।
हृदय स्तब्ध रह जाना क्षण भर, सागर को पी गया ताम्र घट ?
घट घट मे तुम समा गये, कहता विवेक फिर, हटा तिमिर पट ।
बाध रही गीले आचल मे गगा पावा फूल ससम्भ्रम,
मूत मूत मे मिलें प्रकृति क्रम रहे तुम्हार संग न देह भ्रम ।

अमर तुम्हारी आत्मा, चलती कोटि चरण घर जन मे नूतन,
कोटि नयन आभा तोरण बन मन ही मन करते अभिनदन ।
मूल क्षणिक भस्मात् स्वप्न यह, कोटि कोटि उर करते अनुभव
बापू नित्य रहगे जीवित भारत के जीवन मे अभिनव ।

आत्मज होते महापुरुष वे अगणित तन कर लेते धारण,
मृत्यु द्वार कर पार, पुनर्जीवित हो, मू पर करते विचरण ।
राजोचित सम्मान तुम्ह देता युग सारथि, जन मन का रथ,
नव आत्मा बन उसे चलाओ, ज्योतिष हो भावी जीवन पथ ।

१४

लो भरना रक्त प्रकाश आज नीले बादल के अचल से,
रँग रँग के उडते सूक्ष्म वाष्प मानस के रश्मि ज्वलित जल से ।
प्राणो के मिधु हरित तट से लिपटी हँस सोन की ज्वाला,
स्वप्ना की सुपमा मे सहसा निखरा अवचेतन अधिघाला ।

आभा रेखाओ के उठते गह घाम, अट्ट नव युग तोरण,
रूपहले परो की अप्सरियाँ करती स्मित भाव सुमन वपण
दिव्यात्मा पहुँची स्वयं लोक, कर काल अश्व पर आरोहण
अतमन का चैतय जगत करता बापू का अभिनदन ।

नव मस्तिष्क की चेतना गिला का यास हुआ अब मू मन म
नर लाज मत्य का विश्व सचरण हुआ प्रतिष्ठित जीवन म ।

गत जाति धम के भेद हुए भावी मानवता म चिर लय,
 विद्वप घृणा का सामूहिक रव हुमा अहिंसा स परिचय ।
 तुम धय, युगो के हिसक पशु को बना गये मानव विकसित,
 तुम शुभ पुरप वन भाये, करने स्वण पुरुष का पय विस्तत ।

१५

बार बार अन्तिम प्रणाम करता तुमको मन
 है भारत की आत्मा, तुम वव थे भगुर तन ?
 व्याप्त हो गये जन मन म तुम आज महात्मन्
 नव प्रकाश बन, आलोकित कर नव जग जीवन ।
 पार कर चुके थे निश्चय तुम जम औ निघन
 इसीलिए बन सके आज तुम दिव्य जागरण ।
 अदानत अन्तिम प्रणाम करता तुमको मन
 है भारत की आत्मा, नव जीवन के जीवन ।

१६

जय हे
 जय राष्ट्रपिता, जय जय हे
 देव विनय, अविजेय आत्मबल
 शुभ वसन, तन काति तपोज्वल,
 हृदय क्षमा का सागर निस्तल,
 शान्त तेज नव सूर्योदय, जय जय हे ।
 नव प्रभात लाये तुम जन प्रागण मे,
 जीवन के अरुणोदय स हंस मन मे
 अपराजित तुम रहे, अहिंसक, रण म,
 सत्य शिपर के पाय अभय जय जय हे ।
 पशुबल का हर अघवार जन दुस्तर,
 मनुष्यता का मुख कर सस्कृत, सुन्दर,
 विचरे स्वग शिक्षा ले तुम धरती पर
 मनुजो के मानव चिर मगलमय है ।
 युगल बाहुबल,
 हि हूँ मुस्लिम जीवन का छल,
 पद तल पर नत चक्रल प्रतिपल
 फहर तिरग चक्रल प्रतिपल
 हरता जन मन भय सशय, जय जय हे ।

१७

भारत गीत

(१)

जय जन भारत जय आभा रत
 जय जन राष्ट्र विधाता ।

गौरव भाल हिमाचल उज्ज्वल
हृदय हार गगा जल,
विध्य श्रोणित, सिंधु चरण नत
महिमा शतमुख गाता ।

आम्र वीर, तालीवन, मलय पवन, पिक बूजन
जन मन नित हर्षाता ।

अरुणोदय प्रभ ज्योति छत्र नभ
ऊपर नील सुहाता ।

जय हे, जय हे, जय हे, जय जय जय जय हे ।

हरे खेत लहरे निमल सरिता सर
जीवन शोभा से जन धरणी उधर
कोटि हस्त नित विश्व कम हित तत्पर
बढते अगणित चरण अडिग ध्रुव पथ पर ।

प्रथम सम्यता सस्कृति ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाया
जय नव मानवता निर्माता,
सत्य अहिंसा दाता ।

मुनो, प्रयाण के विषाण सूरि भेरि बज उठे
घनन, पणव पटहु प्रचण्ड घोष कर गरज उठे
विशाल सत्य सैय वीर युद्ध वेश सज जुटे,
भनन, कराल अस्त्र शस्त्र युक्त क्रुद्ध भुज उठे ।
शक्तिस्वरूप, अमित बलधारी, विदित भारतमात
धम चक्र रक्षित तिरग ध्वज उठ अविजित फहराता

मगल वादन जन मन स्पन्दन
देव द्वार भू प्रागण,
मुक्त कण्ठ वरते जय कीर्तन
निमय मस्तक वन्दन ।

जय जाग्रत, नानोनत, जय शिव सुन्दर शाश्वत,
जय जन भव भय नाता ।

धरा स्वगवत श्रद्धा से नत,
जनमत शीश उठाता

जय हे, जय हे, जय हे जय जय जय जय हे ।

(२)

जय जन भारत, जन मन अभिमत,
जन गण तत्र विधाता ।

गौरव भाल हिमाद्रि तपोज्वल,
हृदय हार गगा जल,
कटि विध्याचल सिंधु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता ।

हरे खेत लहरे नद निभर
जीवन शोभा से भू उवर,
विश्व कम रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर ।

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता ।

जय हे जय हे जय हे, जय भव भय त्राता ।

प्रयाण तूर शृङ्ग भेरि बज उठे
घनन घनन पटह विक्ट गरज उठे,
प्रबुद्ध वीर युद्ध वेश सज जुटे
विशाल सत्य सैन्य, लीह भुज उठे ।

शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वदित भारत माता ।
धमचक्र रक्षित तिरग ध्वज अपराजित फहराता ।
जय हे जय हे जय हे शान्ति अधिष्ठाता ।

(३)

जय जन भारत, जन मन अभिमत
जन गण तत्र विधाता ।
गौरव भाल हिमालय उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,
कटि विध्याचल, सिधु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता ।

हरे खेत लहरे नद निभर
जीवन शोभा उवर,
विश्व कम रत कोटि बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर ।

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता ।

जय हे जय हे जय हे, शान्ति अधिष्ठाता ।

प्रयाण तूर बज उठे
पटह तुमुल गरज उठे
विशाल सत्य सैन्य, लीह भुज उठे ।

शक्ति स्वरूपिणि, बहु बल धारिणि, वदित भारत माता ।
धमचक्र रक्षित तिरग ध्वज अपराजित फहराता ।
जय हे जय हे जय हे, अभय, अजय, त्राता ।

स्वतन्त्रता दिवस

विजय ध्वजा फहराओ,
बन्दनवार बँधाओ,
आओ हे, स्वातन्त्र्य मनाओ !

आज तिरगे से रे अम्बर
रग तरंगित,
हृष ध्वनि से मुग्ध समीरण
चंचल, पुलकित,
जन समुद्र उद्वेलित,
हरित दिशाओं हृषित,
जन धरणी का अचल
स्वर्णिम श्यामल कम्पित !
जय निनाद कर गाओ,
जन गण सँघ सजाओ,
आओ हे, स्वातन्त्र्य मनाओ !

यह विराट रे देश,
विशाल जहाँ जन समुदय,
यहा हुम्मा या प्रथम
सभ्यता का स्वर्णोदय,
यही आत्म उमेप हुम्मा
मानव को निश्चय,
मृत्यु भीत नर बना अमर,
मू जीवन निमय !
गौरव भाल उठाओ,
मगल वाद्य बजाओ,
आओ हे, स्वातन्त्र्य मनाओ !

रुद्ध हृदय के द्वार, वीर,
खोली भून भन भून,
युग युग का अक्साद बहाओ
आज मुक्ति क्षण,
नव जीवन का रण प्राण हो
जन जन का मन,
अमरो से ला छीन पुन
अपना खोया घन !
स्वर्ग रुधिर मे हाओ
वाद विवाद डुवाओ
आओ हे स्वातन्त्र्य मनाओ !

स्वाधीनता दिवस

रिग माया, गाथा जय,
 स्वाधीन दिवस जय, वण्ट मिनामा ह ।
 रग जगल फूना की लवर,
 तय धागा उल्लाग भर धमर
 द्रघनुष पहगाभा, जय,
 भारत मा की जय, गगन गुजाभा ह ।
 भाज रक्त म नाव रही जगला,
 भाज जग म जीवन का उत्रियाला,
 हुषा मुनहना सब मन का प्रथियाला,
 जय वापू की जय, भेद मुताभा ह ।
 उठा पाति म लठ मुवर
 करो निरग का प्रथिगहन
 यह जीवन रण का प्राण र
 जन भारत जय, वण्ट मिनामा ह ।

२०

जयगान

घाघो ह घाघा,
 मव मिलवर
 जन भारत जय गाघा ।
 बदनवार बने निर लखर
 जन मगत का घट इ
 भाज रवे हन लखर
 मव कमा नय हन लखर
 दखा, हेतना नय लखर
 भाज नतान हन लखर
 गह लखर लखर ।
 मिटी कुँ के लखर लखर,
 जग लखर लखर लखर
 जो लखर लखर लखर
 लखर लखर लखर ।
 मव लखर लखर लखर
 मव लखर लखर लखर
 मव लखर लखर लखर
 लखर लखर लखर ।

जागरण गीत

जागो पचशील की धरणी,
जीवन शीघ्र जगाओ,
मू की अपराजेय चेतने,
नव युग चरण बढाओ !

तेरे ठमद पद चालन से
कैपे मृत्यु भय सशय,
अग मगि से जीवन गरिमा
फूटे चिर मगलमय !
हाव भाव मे विजय हूप,
नव जनोत्कृष्य बरसाओ !

तेरे द्वासो मे ज्वाला हो,
अधरो मे मधु मादन,
भ्रू विलास बलिदान,
दीप्त चितवन हा नव सजीवन !
इगित पर जन शीघ्र भुक्के,
जन शीघ्र उठे, तुम आओ !

तेरी हिंसा रहे अहिंसक
जग जीवन के रण मे,
बजे सत्य की भेरी
दुविधा मोन चीर जन मन मे !
मृत्यु भीति हर, आत्म तेज भर,
जन मन दैय मिटाओ !

रूढि रीति के मुण्ड हृदय मे,
ज्योति खडग हो कर म,
पद तल पर नत युग दानव हो,
अरि का रुधिर अधर मे !
रक्त पात्र से फिर नव चेतन
अमृत ज्वाल छलकाओ !

युग युग का नैष्कर्म्य, नियति भय
जीवन विरति तमस हर,
आत्मा का अमरत्व जगा फिर
जीवन मन के भीतर,

हे युग युग सम्भवे, विश्व को
नव सदेश सुनाओ !

देख रहा मैं काल दश,—
कट रहे युगो के व घन,
उर उर मे मच रहा महाभारत
—यह युग परिवर्तन !

कोटि व-दे कण्ठ मिलकर
 व-दे भूपर, मातरम निनाद गुजाम्रो !
 काँप उठे युग युग के तट सागर,
 डुबा रहा जन उर अम्बर,
 गरज रहा जन उर अम्बर,
 मृत्युजय इच्छा स भर ।
 विद्युत लासिनि, उठो,
 इन्द्रधनुप्रभ निरग पहुराम्रो !

हिमगिरि तरा अविजित प्रहरी
 भू इतिहाम बताता,
 अडिग वज्र प्राचीर तुल्य वह—
 दृढ़ भौगोलिक नाता
 धधका ज्वालामुखी सदश अत्र
 वह हिम से भस्मावत,
 ताण्डव नृत्य निरत फिर शबर
 जगा देश चिर निद्रित ।
 भारत की दुधप चेतन,
 जन भू भीति भगाम्रो !
 तुहिन शृङ्ग बज उठे तूय बन,
 घरती गगन निनादित,
 बुद्धिहीन अरि फिर अगद पण
 भारत से पद मर्दित ।
 स्त्री नर तन मन धन यौवन की
 आहुति देन आाम्रो !
 रक्त दान का पुण्य पव यह
 भू की प्यास बुझाम्रो !
 जागो, सह-जीवन प्रिय घरणी,
 नव युग चरण बढाम्रो,
 अ्रो पृथ्वी की शांति पीठ, फिर
 जीवन शोय जगाम्रो !

२२

उवबोधन

तुम विनम्र रह
 भीरु बन गये, कायर,
 जीवन प्रागण म ।
 यह सौजय नहीं रे दुबल,
 आत्म वचना यह मन का छल,
 मौन मूक रह
 बन नगण्य करुणतर
 तुम लोक नयन मे ।

यह तु आया था तब दुःख
 जगति तमग का धन निरग,
 तुम दयाग रर
 रिक्त था तब पावर,
 प्रताप व धन म ।
 कुछ धान । ध्वनि व पावर,
 कुछ सामूहिक हि व पावर,
 तुम उदार रर
 धर्म मू मर पावर
 ध्यायी व र म ।

सत्य नहीं र मान धारम गर
 ध्वनि विर के मंग है ईश्वर
 तुम दयाग रर
 वा वसतिग मु रर
 पर तुम भक्त म ।
 तुमने पाणि प्राग वा वर,
 तुम मर व प्रति धारम
 तुमने ईश के प्रति धारम
 विशाली रर
 वर वसुग म मगर,
 विविग रर म म ।

२३

जागरण

धामा, जन स्वतंत्र भारत का
 जीवन उबर भूमि धार्ये
 उसके धन मिन धान म
 तम वा गुणन भार उठायें ।
 यह, इस सोन की धरती के
 सुने धान सदिया व धान
 मुक्त हुई चेतना धरा की,
 मुक्त वा धन मू के जागण !
 भगणित जन लहरा स मुगरित
 उमड रहा जग जीवन सागर
 इसके छोरहीन पुतिना मे
 प्राज डुवाए युग व धतर ।
 अधु स्वेद स ही सीचेंगे
 जन क्या जीवन की हरियाली ?
 ससृति के मुबुलित स्वप्नी से
 क्या न भरेंगे उर की डाली ?

क्या इस सीमित धरती ही मे
समा सवेगा मानव का मन,
मौन स्वर्ण शृङ्गा के ऊपर
कौन करेगा तब आरोहण ?

धरती के ही वदम म सन
नहीं फूलता फलता जीवन,
उसे चाहिए मुक्त समीरण,
उसे स्वर्ण किरणों के चुम्बन !

समाधान मू के जीवन का
मू पर नहीं,—वृथा सघषण,
मू मन स ऊपर उठकर हम
बना सकेगे मू को शोभन !

मानवता निर्माण करें जन
चरण मात्र हा जिसके मू पर,
हृदय स्वर्ग मे हो लय जिसका,
मन हो स्वर्ग क्षितिज से ऊपर !

याग्निकता के विषम भार से
भ्राज डूबने को जन धरणी,
महा प्रलय के सागर मे क्या
भारत बन न सकेगा तरणी ?

अधकार के महा सिंधु मे
डूबी रह न सकेगी धरती,
किरणों जिसमे अग्नि बीज बो
यौवन की हरियाली भरती !

मिट्टी से ही सटे रहने
क्या भारत मू के भी जनगण,
क्या न चेतना दास्य करेंगे
वे समस्त पृथ्वी पर रोपण ?

भ्राज रक्त लथपथ मानव तन
द्वेष कलह से मूछित जन मन
भारत, निज अतप्रकाश का
पुन पिलाओ नव सजीवन !

मृत तमस मे खोये जग को
फिर अतपथ भ्राज दिखाओ,
मानवता के हृदय पथ को
पक मुक्त कर ऊध्व उठाओ !

२४

दीप लोक

भ्राज सहस्रा नयन खालकर
सोच रहा ज्यो अधकार धन,—

कम अन्तर का प्रानावित
हागा जग जीवा का प्रांगण !

कम अम्बर की छात स्मिति
अवित होगी भू क मुग पर,
स्वग गिरा न हाग दाभित
कब ये मूषमय दीपक गुदर !

एक ज्योति की ऊर्ध्वग सी न
कब गी - सी उर होकर दीपित
धरती के जड रज के तम का
प्राभा म पर देंगे विस्मित !

गूह तोरण गुम्बद मीनारें
दीपा की रगा छवि न स्मित
हँसती,—मानव उर का माँदर
कम से भीतर ग तमगावृत !

प्रसंगटित जग जीवन का तम
प्राज चतुर्दिक रहा ज्यो विगदर,
अंधियाले का दुग बना दद
जीण जातिगत मन का लँडहर !

दात सहस्र दीपा त भी, प्रह,
वन न सवगा जम पप विस्तृत,
दीप शिक्षा बहती सिर धुनकर
जब तक होगा हृदय न ज्योतित !

नव जीवन के ज्योति चरण पर
कब भू पर विचरेगा मानव,—
तारामा के नभ के नीचे
दीपो का नभ बहता नीरव !

इस धरती के रज के तम म
अग्नि बीज रे दवे चिरत्तन
फूटें ज्योति प्ररोहा मे के
पा जागति का लोक समीरण !

कँपती स्वप्न शिक्षाप्रो म जग
हो मानव चेतना पल्लवित,
नव जीवन शोभा स जगमग
धरणी का प्रांगण हो दीपित !

२५

दीप थी

प्राभा के घब्रो से भर
भू अंधियाली का अचल,
हँसती किरणों की दीपा
जन पथ मे बरसा मगल !

वह प्रायो, तम के पट से
 निरतरी प्रवयव रेखा छन,
 नव स्वण सुभ शोभा का
 कपता कृश दीप शिखा तन ।
 प्रब नगर हाट डगरो के
 शोभित गवाश गूह तोरण,
 रुपहली ज्योति यनियो से
 मुकुलित छत गुम्बद प्रागण ।

यह मू जीवन की शोभा
 जन प्रावाशा मे दीपित
 धरती के तम मे बुनती
 तारो के स्वप्न अतद्रित ।

फिर जगी चेतना मू की
 निष्कम्प स्नेह स्मित चितवन,
 दोडी मृण्मय दीपो मे
 स्वप्नो के पग धर नूतन ।

यह रे जग के प्रांगन म
 अन्तर प्राभा का मधुवन
 जागा जन मन डालो मे
 नव ज्वाला पल्लव जीवन ।

२६

दीपावली

दीप जलाओ, दीप जलाओ ।
 जीवन के जगमग स्वप्नो से
 दीपो का प्रावाश सजाओ ।

यह जग है मिट्टी का दीपक,
 जीवन ज्योति प्रेम मनमोहक
 हँसी खुशी की, गीत-स्वप्न की
 जन मन मे री ज्योति जगाओ ।

युग की साँझ धाज गहरायी,
 जिसमे कल की ज्योति समायी,
 सुदरता के दीप सँजो के
 जग मे नया स्वण युग लाओ ।

प्राँचल की कर मोट सखी री,
 तूफानो से दीप बचाओ ।
 एक ज्योति के सौ सौ दीपक,
 जग का मग ज्योतित कर जाओ ।
 दीप जलाओ, दीप जलाओ ।

मिट्टी के गिल्लीने

तुम अतनभ या यभव
मिट्टी में बाँध दिया जीधिन,
तुम स्वकार, उर या प्रवास
रज के तम म करते दीरिा ।

ये भाव चिरत्तन जा मन के
जो मूक गिल्लीना में मूर्तिन,
ये मानवीय बन श्रवण नयन,
नासा मुस भ्रगा न दाभित ।

मन्त्र पर श्रवण रजन किरोट,
कर म मुरली, माता, धनु गर,
पट नील पीत पहन तन पर
युग-युग स य मन सेत हर ।

गणपति हैं, दशभुज दुर्गा हैं,
गौरी गंगा मुत गिव नकर,
य गण्ड पीठ पर वरद विष्णु
जिनके संगे नशमी जो मुँदर ।

य राम कृष्ण गीता, राधा
गाधी जी बुद्ध, जवाहर हैं,—
हम मान मूर्तियाँ हैं बाहर
चेतन प्रकाश कण भीतर हैं ।

तुम कर रह सकत केवल
अंतर प्रकाश ही में सीमित
तुम मूर्तिमान बनत जग में
क्षय रूप धर्य होता निश्चित ।

ये प्रतिमाएँ चलती फिरती
जन के मन में घर स्वप्न चरण,
तुम युग युग में घर रूप नवल
मानव मन को करत धारण ।

२८

कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति

श्रद्धाजलि स्वीकार करें गुरुदेव शिष्य की
आज श्राद्ध वासर के वाष्प नयन अबसर पर
पुण्य स्मृति से मेघ सजल लोचन बरसाते
स्नेह द्रवित भ्रान्त अश्रु पावन चरणों पर,—
मौन स्वप्न पथ स बढ़ते जो चरण हृदय में ।

घोर भ्राज क्या श्रद्धांजलि दूँ, इस धरती के
जीवन के रणक्षेत्र पर लडा?—जड मूला की
निद्रा से चिर तद्रिल!—जो जीवन विधास के
विमुक्त, जागरण के भ्रवरोधी, भ्रघोमुपी है!

नहीं चाहता मू आप के पास भेजना इन वर्षों म
पुन आप के पास भेजना इन वर्षों म
अधिक नहीं कुछ बदल सवा धरती का जीवन,
बल्कि, तीसरे विश्व युद्ध के लिए घरा के
राष्ट्र भ्राज सानद्ध दीखत अणु विस्फोटो,
रज बिटाणुभ्रा गरल वृष्टि स—उमुघरा पर
महा प्रलय, अन्तिम विनाश लाने को उद्यत !!
हरित भरित जन वसुधा पर जो सागर जल के

अनिल विलोलित दलध अचल को वक्ष स्थल से
अहरह चिपका, नाच रही स्मित सूर्यातप म,
नत्य परा अप्सरा-सी चपल, ज्योति प्रहा म
परिवष्टिन,—अनभिज्ञ हाथ, भावी सक्कट से !!

भौतिकता लोह के निमम चरण बटाकर
रोड रही मानव आत्मा को जो यत्रो के
त्रिबट अस्थि पजर म अन्तिम मसि ल रही।
दव आप का वह अन्तर्गष्ट्रीय स्वप्न भी
अभी नहीं साकार हो सका मू पलको पर,
राष्ट्रो के षट् स्वाय विभवत विय है जिसको
वग श्रेणि की दीवारा म मानवता को
बन्दी कर चिर अघ रुडिया की कारा म।

मूल गया मानव निज अतजग का वैभव,—
जीवन का सौदय, प्रेम, आनन्द—सूक्ष्म स
उतर नहीं पात जन मू पर। सजन चेतना
निष्क्रिय होकर पगु पडी है। घरा स्वग को
स्वप्नप्रभ पक्षो से भ्राज नहीं छू पाती।
अतमन के ममि कम्प से ध्वस अश हो
अन्तविश्वासो के, उनत आदर्शों के
शिखर सनातन बिखर रहे हैं मत्य घूलि पर।
मानव के नयनो से शाश्वत का प्रसन मुख
अस्त हो गया यह वमुघरा निरानन्द है।—

एव गुनहली रेखा है काले बादल मे।—
भ्राज आपका प्रिय भारत स्वाधीन हो गया,
छूट गयी दासता युगो की लोह श्रृखला
टूट गयी,—नराश्य दैय, पीडन से निमित।
छिन कर गये आप जिसे ये पहिले ही मे
निज वज्र स्वर के प्रहार कर तव जागति भर।
देव, आपकी स्वण मूमि स्वाधीन हो गयी
बापू यद्यपि नहीं रहे। वह मानवता के

देव शिखर,—अपन शोणित से नव जीवन का युग प्रभात रग, लुप्त हो गये। - मुक्त हो गये। सम्बोधन करते थे जो गुरुदेव आपको।

रूप मास थे आप, आत्म पजर थे वे दृढ ऊर्ध्व रीढ ही, शांतिनिवेतन की पृथ्वी पर, जिसे चाहते थे दोनों ही स्थापित करना स्वप्नो से, कर्मों से, जग के रण प्राणण म जन मगल के हित अह, दोनों चले गये तुम।

मुक्त नहीं हो सका अभी जन भारत का मन,— मध्य युगो की क्षुद्र विकृतिर्या शीश उठाकर नव्य राष्ट्र को बना रही निश्चय, क्षीण हैं। विविध मतों में, विविध दलों, व्यूहों में बँटकर दश आज निर्वीर्य, निबल, निस्तेज हो रहा, घणित साम्प्रदायिक बबरता से पीड़ित हो।— शोणित की नदियाँ बहती अब तपोभूमि में।।

नहीं भलकता मानव गौरव जन के मुख पर रुद्ध हृदय है उनका, मन स्वार्थों में सीमित, आत्म त्याग से हीन, अभी वे नहीं बन सके महाराष्ट्र के उपादान,—गम्भीर, धीर, दृढ युग प्रबुद्ध, निर्भीक, वज्र समुक्त परस्पर।

रहने दू यह कटु प्रसंग मैं नहीं चाहता फिर विपण्ण भू मन की छाया पड़े आप पर।— भारत यदि स्वाधीन हो गया तो निश्चय ही छूट गयी भौतिक परवशता आज घरा की, उसके प्राणों के स्तर अब चैतन्य हो गये। पशु बल का खल अह मिट गया गात हो गयी अवचेतन की निम्न वृत्तियाँ घणा द्वेष की।

अतजग में,—बाहर अभी भले सक्रिय हो मद पड गयी कटु स्पर्धा, अधिकार लालसा, जीवन की आकाक्षा में सतुलन घा गया,— दीप्त हो गया तामस का मुख।—

यह भारत की विश्व विजय है। जयी हुई इस स्वर्ण घरा की अमर चेतना। सफल हुए उसके तप साधन, अधकार, मिथ्या, हिंसा के बबर स्थल पर विजयी हुआ प्रकाश,—अहिंसा आत्म सत्य का। निश्चय, मानव का भविष्य अब चिर उज्ज्वल है, असादिग्ध भू का मगन,—निमग्न हो जा मन।

विचरण करते हागे कवि गुरु, आप अतीन्द्रिय स्वर्ग लोक में सम्प्रति—देवा से भी सुन्दर

मानव देव समान, अमर निज यश काया मे ।
 पारिजात मदार प्रमृति सुमनो की स्वर्गिक
 स्वप्निल सौरभ नासा द्वारो से प्रवेश कर
 आन्दालित रखती होगी प्राणो को नित नव
 भावो मे, स्वप्नो से, मुर सौंदर्य बोध मे—
 नदन का अविरत वसत ज्या गुजित रहता
 मुकुल अधर मधुपायी स्वर्णिम भृग वृद्ध से ।

अथवा बठे होंगे आप रहस्य शिखर पर
 अमर लोक के, निभृत मौन मे ध्यानावस्थित,—
 बहती होगी शाश्वत सुंदरता की सरिता
 नीचे, स्वर्णिम छाया की सतरंग घाटी मे,
 बल कल छल छल गाती अनादिता अमरा की ।

वहा विजन मे आप दिव्य उमेध से स्फुरित
 सप्टि रच रह होंगे अश्रुत अमर स्वरो की,
 सूक्ष्म चेतना की छाया शोभा से गुम्फित,
 मौन मग्न हो अतल सृजन आनंद सिन्धु मे ।

मुर सुंदरियाँ आती होगी पास आप के
 ध्यान भंग करने को, ईर्ष्याकुल निज मन मे,
 त्यक्त, उपेक्षित, विस्मृत अपने को अनुभव कर ।
 क्षण भर को अपलक रह जाते होंगे लोचन
 सुरागनाओ का सौंदर्य विलोक अपरिमित ।
 देह शिखाओ से अनंत यौवन की आभा
 फूट - फूटकर विस्मय से भरती होगी मन ।
 मसृण सुरग छाया - पट से छन तन की शोभा
 भलका करती होगी सौष्ठव रेखाओ मे,
 स्तिमित शब्द धन मे कम्पित विद्युत्लेखा - सी,—
 ऋतुत वर अंतरतम सत्ता के तारो को ।

स्वप्नो के शिखरा - से उठ - उठ स्वप्नित पयोधर
 टकराते हागे, आकाशा के भुवनो - से,
 जिन पर धर कल्पना धात शिर कविमनीषी
 लेते होंगे, क्षण विराम, फिर स्वप्न मग्न हो ।
 अप्सरिया की पीन थोणि, लावण्य चूड़-मी,
 धनीभूत वर निज उभार में अमरो का सुग,
 मुखरित रहती होगी प्राणो के गुजन मे
 त्रिदिव लालसा की काँची से अहरह दोलित ।
 स्वर्गिक शोभा स्तम्भी - से पेशल जपनो पर
 कौपनी होगी कोण जलद छाया मोहन हो,
 जिसमे दिप दिप तडित चकित कर देती होगी
 कवि लोचन, लज्जा लोहित लावण्य रागि मे ।

धामा करें, गुरदेव, आप जो नू जीवन के
 रसोल्लास के प्रति सदव जीवित जाग्रत थे,

जो रस सिद्ध कवीश्वर बन विचरे पृथ्वी पर,
 आज आप भी वहा ऊबते होंगे निश्चय
 भ्रमरो के उस भ्रनाद्यत भ्रान्त लोक में—
 और, चाहत होंगे फिर से मत्स्य घरा पर
 आकर, जीवन श्रम के शोभा सुख को बरना ।

एक बार आये थे जहाँ स्नेहवश प्रेरित
 देवो का ले दिव्य रूप, हे कवियो के कवि,
 भ्रमरो की वीणा घर कर मे भुवन मोहिनी,
 भू जीवन सागर को करने रग उच्छ्वसित, —
 गीति छन्द की तीव्र मधुर शत भकारो से
 प्राणो का जल लहरा, ज्वार उठा आशा का,
 फेना के शिखरो पर लोक बसा स्वप्नो का
 इ दु रश्मि के सम्मोहन से माया दीपित ।
 आय थे भू रोदन को सगीत बनाने
 इलक्षण मधुर स्वर श्रुतियो के शत आवर्तो से
 भावो के छाया पुलिनो को स्वप्न ध्वनित कर ।

आये थे तुम जीवन शोभा के शिल्पी बन,
 मानव उर की आशाओ, अभिलाषाओ को
 सूक्ष्म स्वरो मे पुन ऊध्व मुख ऋतुत करने,
 निज विराट प्रतिभा की अद्भुत रहस्य शक्ति से
 स्वग घरा के बीच कल्पना का रगस्मित
 इन्द्रधनुष प्रभ सेतु बांधो सुर नर मोहन,
 अप्सरियो के रणित पदो से मौन गुजरित ।

युग द्रष्टा बन आये आप यहाँ, जन गायक,
 देश बाल का तमस चीर निज सूक्ष्म दृष्टि से,
 पठे जन जीवन के निस्तल अतस्तल मे
 धरती के अवसाद भरे जन गण को देने
 उद्बोधन का गान, जागरण मात्र, मनोबल ।
 मानव की चेतना रश्मि को अतल गुहा से
 बाहर ला, मन मे अभिनव आलोक भर गये,
 रग रग की आभा पलङ्किया को बिखरा
 नव जीवन सौंदर्य गये बरसा धरती पर
 गीतो से, छन्दा से, भावो से, स्वप्ना से ।

एक बार फिर आओ कवि, इस विधुर देश को
 अपनी भ्रमर गिरा से नव आश्वासन देने ।
 आज और भी लोक प्रतीक्षा यहाँ आपकी,
 वाणी के वर पुत्र, घरा की महा मृत्यु को
 भ्रमर स्वरो से जगा, विश्व को दो जीवन वर ।

आओ हे फिर अपने भारत के मानस ग
 मध्य युगो का घणित जान जम्बाल हटा कर

ज्वलित स्वर्ण दण्ड - सी उसकी चेतनता को
 साधो फिर जग के समक्ष, जितम नव जीवन
 नव मानवपन का उज्ज्वल मुग्ध प्रतिबिम्बित हो !
 प्राज धरा के अधकार में उसका जगमग
 वाचन दो फिर से उठेल जीवन प्रभात में,
 रंग दो जन मन के नभ को नव अरुणोदय से
 स्नात करे फिर खनोज्वल भू स्वर्ग स्थिर में !

प्राणो हे कवि, प्राणो, फिर निज धमत स्पश से
 प्रादर्शों की छायाप्राणो को नव जीवन दो,—
 मत्स्य लोक के जड प्राणण में जीवन चेतन
 स्वर्ग स्वप्न विचरें, ज्वाला के पग धर नूतन,
 नव आशा, अभिलाषा से दीपित दिगत कर !
 प्राणो तुम, जीवन वसन्त के अभिनव पिक बन,
 धरा चेतना हों सांस्कृतिक स्वर्णोदय में !

प्राज सूक्ष्म दशन में जगता मनोनयन में
 भारत का ध्यान हिरण्य स्मित,—जीवन मन के
 तम से पर, प्रादित्य वण उसकी आत्मा का,—
 भूत शिखर के चरम चूड़सा, शत सूर्योज्वल !
 हास नाश से रहित अमर चेतना शक्तियाँ
 वह अतहित किये हृदय में, सूक्ष्म, सूक्ष्मतम,
 गुह्य, रहस्य, वणनातीत,—जग के मंगल हित !

उसके अतर्गत के ज्योतिमय शतदल पर
 स्वयं खड़े हैं, सत्य चरण धर, अविनाशी प्रभु
 तेजोमय, जाज्वल्य, हिरण्य शल से अद्भुत !
 पुरुष पुरातन, पुरुष सनातन, विश्व मोहिनी
 निज वशी के सजन नाद से जगा अचित से
 स्वर्गिक पावक के असरय चतय लोक स्मित,
 बरसा रहे अतत शून्य में स्वर लय नतित
 कोटि सूक्ष्म सौंदर्य, प्रेम, ध्यान के भुवन !—

प्राणो की आशाऽकाशाप्राणो से चिर उबर
 जीवन मन के स्वर्ग, तृप्ति के सुख में नीरव,
 रूप गन्ध रस स्पश शब्द के विम्ब जगत बहु
 निज असीम वैभव में अक्षय—दमक रहे जो
 सप्त चेतनाप्राणो के रग स्तरो में छहरे !

सयम तप के स्वर्ण शुभ्र नीहार से जडित
 भारत के चेतना श्रृंग पर, ध्यान मौन रव,
 परम पुरुष वह नृत्य कर रहे सजन हृष की
 विस्मृति में लय !—जिनके अति चेतन प्रकाश से
 शोभा सुपमा की सहस्र दीपित मरीचियाँ,
 प्राभा की प्राभाए, छाया की छायाएँ

दिशा बाल म फूट रहीं, शत सुर धनुषों के
रगो की आलोक क्रांति से दष्टि चकित कर ।

भर-भर पडते सतत सत्य शिव सुन्दर उनसे
महाकाल श्री' महा दिशा की चेतनता से
मुग्ध चमत्कृत कर,—रोमांचित दिव्य विभव से ।
आज घरा के भूतो के इस तमस क्षेत्र मे
जीवन सृष्णा, प्राण क्षुधा श्री' मनोदाह से
क्षुब्ध, दग्ध, जजर जन गण चीत्कार कर रहे,
घृणा द्वेष स्पर्धा से पीडित, वन पशुओं से ।
बिखर गया मानव का मन अणुवीक्षण पथ से
बहिर्जगत मे, स्थूल भूत विज्ञान से भ्रमित ।
अतद्दृष्टि विहीन मनुज निज अन्तजग के
वैभव से अनभिज्ञ, हृदय से ध्रुय, रिक्त है ।

आज आत्मघाती वह, अपने ही हाथों से
मनुज जाति का महा मरण निर्माण कर रहा
भौतिक रासायनिक चमत्कारो से अगणित ।
तक नियंत्रित यात्रिकता के पद प्रहार से
ध्वस्त हो रहे अतमन के सूक्ष्म सगठन
सत्यो के, आदशों के, भावो, स्वप्नो के,
श्रद्धा विश्वासो के, सयम तप साधन के,—
मनुष्यत्व निभर है जिन ज्योतिस्तम्भो पर ।

ऐसे मरणो-मुख जग को, कहता मेरा मन
श्रीर कौन दे सकता नव जीवन, आश्वासन,
शान्ति, तप्ति,—निज अन्तर्जीवन के प्रवाह से
भारत के अतिरिक्त आज ?—जो शाश्वत, अक्षर
अंतर ऐश्वर्यों का ईश्वर है वसुधा पर ।
कहता मेरा मन, भारत ही के मंगल मे
भू मंगल, जन मंगल, देवो का मंगल है ।—
—देव, आप आशीर्वाद दें जन भारत को ।

२६

श्री अखनी-द्रनाथ ठाकुर की ७५वीं वर्षगांठ पर

आज आपकी वय गांठ के शुभ अवसर पर
करते हम समवेत प्रार्थना, वृद्ध चित्र कवि,
फिर फिर ऐसे हृय दिवस आयें, दे जायें
नवल सुनहली गांठ आप के वयस सूत्र में ।

पक्व वयस के रजत भास श्री' स्वर्ण वय नव
अकित अनुक्षण करें काल के पट पर अक्षय
दारद इन्दु स्मित कीर्ति शुभ्र व्यक्तित्व आपका,—
केग शमश्रुओं की दोभा रेंग शुभ्र, शुभ्रतर,
स्वप्न तूलि से अपनी, हे रगो के गायक,

जिसने वाणी की अदृश्य स्वर झकारो को
रूप रंग रेखा की आकृति में जीवित कर
इन्द्रधनुष प्रभ स्वप्नो की स्मित रत्न श्री में
दिया बखेर, श्वसित कर रगच्छाया को मत ।
शुभ वयस के रजत स्वर्ण क्षण लावें अविरत
नूतन स्वप्नो से रजित भावी का वैभव,—
सतरंग स्वर्गिक पावक से शोभा चित्रित कर
जीवन का चिर रहस सत्य, नयनो के सम्मुख—
नित अभिनव सतुलन, वण मंत्री, सीपठव भर ।
अमर शिल्पि, मानव की आशाआशाआ में
नव्य रंग रश्मि सगति ध्वनि छाया प्रकाश भर
आप चेतना पट पर जन जन के रंग जावें
मनुष्यत्व की आभा रेखा छवि देवोपम,—
स्वर्ग आपको दिव्य स्वास्थ्य द, दीध आयु दे ।

३०

मर्यादा पुरुषोत्तम के प्रति
जय पुरुषोत्तम । विश्व सचरण में धारण कर
विश्व दयाम तन, तुमने मन में किया अवतरण
प्रथम बार श्रेता युग में मानव सस्कृति का
जो प्रोज्वल निर्माण काल था, जब जन का मन
बहिर्जगत में बिखरा था इन्द्रिय द्वारों से ।
जीवन के दश मुख तम से आन्दोलित अंतर
प्राणों के आवेगों की झुंझ से ताड़ित
प्रलय सिंधु-सा गजन करता था दिग्गत में
क्रुद्ध तालसा के आवतों में आलोडित ।
बिकट भराजकता में पशु आकाशाग्रों की
सम्भव था तब नहीं शांत स्थिर जीवन घापन,—
वन जीवी, पशु जीवी मनुज, मनोजीवी तब
नहीं बना था निद्रा भय मधुनाहार की
देह बतियों से चालित वह जतुमात्र था ।
प्रथम सचरण था वह मन का भू जीवन पर
नहीं नियंत्रण था उसका वह असंगठित था ।
उतरे थे तुम रजत पुरुष तब अन्तर्नभ से
सदाचार की दिव्य शुभ आभा से मण्डित,
शशि किरणा से प्रहसित शरद नीलिमा स नव ।
जीवन के तम को, छाया-सा, सहज प्रणत कर
मानव के पद तल पर, तुमने तन के ऊपर
मन को किया प्रतिष्ठित था जन मंगल के हित ।
क्षुब्ध उच्छ्वसित प्राणों के उमद सागर को
शासित कर बाँधा मर्यादा सतु चिरतन,

मर्यादा पुरुषोत्तम । बहिर्मुखी ७
 दश शीशो को मनोभूमि पर बिया
 रदिम शुभ्र चेतना तीर से, चीर
 वैदेही सी मनश्चेतना को विदेह

प्रथम विजय थी वह जीवन पर मानव मन की
 तरुण श्रमण-मे विह्वल से तुम मनदचूड़ पर
 सूय मनस के स्वर्ण विम्ब । जब अजित वासना
 हुई सममित सम्कृत नव जीवन मानों में
 ऊध्व प्रस्फुटित, विकसित हो, मनुजोचित बन कर ।

पूण बिया वह वृत्त वृष्ण युग म
 प्राणों म जब हुए अवतरित तुम
 मर्यादा के पुलिना पर जीवन
 दिव्य ज्वार लहरा,—अंतर के रस
 जीवन का आनंद, प्रेम, सौंदर्य
 —वह विकास परिणति वा स्वर्णम वैभव

एक बार फिर उतरो, अतमन के सारथि
 भू की आकाशा के नव विकसित शतदल पर
 आज मनोजीवन, प्राणों के जीव के स्तर
 जीण, विरस, विश्रु लगते, सौंदर्य हीन हा ।
 विगत चेतना,—कभी विशाल शुभ्र सरसिज सी,—
 मूढ़ रही अब मन के दल युग की सध्या मे,—
 स्रोतहीन पुलिनो सी नीरस रीति नीतिय
 सींच नहीं पाती जीवन की उबरता को ।

आज और भी नीचे उतरो प्राणों
 जीवन के तम के नीचे उज्ज्वल !
 स्वर्ण शुभ्र दो रेख लीच, नव प्रतिपत्त
 विह्वल उठे स्वप्नो से उपचेतन
 घरा स्वर्ण वैध जायें एक क्षितिज के
 एक नव्य आध्यात्मिकता आलोक
 मज्जित कर दे जीवन मन की सी
 सीमा रहित चेतना की नव शोभा

बहे एक अविराम धार मे स्वर्ग चेतन
 देह प्राण मन के मुवनो मे सजीवन भर
 मनुज और भी निज अंतरतम म प्रवेश क
 ऊध्व, गहन, व्यापक बन, निकले अधिक् बहिर्मुख ।

घरा चेतना की काले तम की
 फुल्ल स्वर्ण लोहित रजित हो युग
 नव जीवन सौंदर्य पथ मे विह्वल
 अंतर मे भर अतिचेतन पावक परा
 प्राणों की सौरभ विद्युत से हपित व
 —हृदय कमल मे भू के फिर उतरो, ।

प्राप्तो हे, पावन हो भूतल ।
 फिर धम ग्लानि से पीडित जग,
 फिर नग्न वासना उच्छुसल
 जन परित्राण करने उतरो,
 हे राम, परम निबल के बल ।

फिर हुई अहल्या मनोभूमि,
 चेतना, शिला-सी जड निश्चल
 फिर मानवीय बनकर निलरे
 भू शाप मुक्त हो, छू पदतल ।

फिर जीण हुआ युग चाप आज,
 फिर वीर विहीन मही अचल,
 तुम करो धरा चेतना पुन
 यह विश्व प्राप्ति का सकट पल ।

लो, बनी विमाता पुन कुमति
 वनवासी सत्य, गही अरु छल,
 फिर भौतिक मद का कचन मग
 मोहित करता जन मन दुबल ।

वह भस्म रेख, मह नाश छोर,
 फिर साधु वेश घर हँसता खल,
 श्री हीन हृदय की पचवटी,
 हत लोक चेतना, विश्व विकल ।

श्रद्धा जटायु सी पल्ल कटी,
 दो मुक्ति उस, हे जन वत्सल,
 आश्वस्त प्रणत को करो पुन
 निममता के वाली को दल ।

उद्वेलित भव जीवन वारिधि,
 दुस्तर, अज्ञात जन मन विह्वल,
 फिर बांधो नव चेतना सेतु
 हो पार सत्य की सत्य सकल ।

लक्ष्मण-सा ही अरु शक्ति प्राप्त
 विश्वास मम आहत, निबल,
 सजीवन दो फिर मूर्छित को
 हनुमत-सी प्राणद शक्ति अचल ।

अह मेघनाद-सा गजन भर
 अण नास कँपाता अतस्तल,
 तज कुम्भवण-सी युग निद्रा
 जन अह शृंग मद जाये डल ।

दश शीश उठाये घृणा धोर,
 जलता उर उर म द्वेषानल,

फिर उसे परास्त करा मन में,
जन जीवन हो सयुक्त, सफल !

वदही सी ही विरह मुक्त
चेतना, चूम प्रिय चरण कमल,
फिर राज्यारोहण करो, राम,
हृदयासन मे, हो जन मंगल !

३२

श्री अरविन्द के प्रति

(अ)

आज जबकि नीरस भ्रसार विश्वी लगता जग जीवन,
मानस का सौंदर्य फूल सा मुरझा रहा सुरभि क्षण,
बिखर गया जब सतरंग बुदबुद उर का स्वप्न भ्रचानक,
जीवन सघषण से लोहित, गये मत्स्य के पग धक !

जीण युगो की नैतिकता जब करती जन मन शोषण,
क्षुद्र अहं की दासी बन, म्वापों को किये समपण,
अन्तविश्वासो के उन्नत शृंग रहे ठह भू पर
सूख गया चिर स्रोत प्रेरणा का, उर हुआ धनुवर !

आज जब कि मन प्राण इंद्रियो के क्षत विक्षत अंग अंग,
पुन चाहती वे गति - लय मे बँधना देवो के संग,
ध्वंस भ्रंश हो गये विगत आदर्शों के जब खँडहर,
कुचल रहा मानव आत्मा को जड भौतिक आडम्बर !—

आज जब कि बुझ गयी चेतना, अघकार से उर भर,
चूण ही गया हृदय सम्पत्ता का, नीरव सरवृत्ति स्वर !

(ब)

तुम्हें पुकार रहा तब अंतर, भावी मानव ईश्वर,
नव्य चेतना, नव मन, नव जीवन का भू को दो वर !
स्वर्ण चेतना द्रवित जलद तुम, रजत तडित रवि स्पष्टित
रत्नच्छाय सजल, रहस्यप्रभ घात - घात सुरधनु मण्डित,
दिव्य प्रेरणाधो की जगमग किरणो से चिर गुम्फित,
मनस पक्ष मे ज्वलित अमर पिण्डो को किये तिरोहित !
स्वर्मानस मे उठ, उतरो, प्रभु, जन मन के शिखरो पर,
सूक्ष्म चेतना वाष्प कणो मे लिपटा मानव अंतर,
नव जीवन सौंदर्य म बरस, करो धरा मुख सस्मित,
अमृत चेतना के प्लावन मे मत्स्य शोक कर मज्जित !

हे अतिचेतन, नव मानस वसन्तो मे हो नव भूषित
नव आदर्श बनी तुम, जिसमे नव जीवन हो विम्बित !
जीवन मा से ऊपर तुम नव जीवन मे नव मन मे
मानवता को बाँधो अभिनव ऐक्य मुक्ति बंधन मे !

प्रढाजलि अर्पित करता मन, ह मनुष्यता के उनायक,
 जग जीवन के महायज्ञ में प्रतिमानवता के नव पावक !
 लोक अभीप्सा की आहुति पा स्वर्गशिखा से उठ प्रज्वलित
 देव धरा के अघकार की स्वर्ण प्रात में करन दीपित !
 महाकाल श्री' महादिशा ज्यो सहम उठे छबि देख अलीकिक,
 रूपांतरित हुए विमुग्ध त्रिभुवन भौतिक, मानस, आध्यात्मिक !
 निखिल व्यक्त अज्यवत, सकल सीमा असीम लय हुए विमोहित
 पुन देव में स्वय परम का देख दिव्य आभा में मूर्तित !
 जीवन मन के मान गल गय, मिटी पूणताएँ अपूण बन
 अल्प मनुज के स्वल्प राज्य घुल गये कुहास-स उर के घन !
 प्रतिमानस के ज्वलित स्वर्ण दपण में सहज विलोक प्रतिफलित
 शुभ्र भागवतजीवन का भू स्वर्ग अतीन्द्रिय इन्द्रिय शोभित !
 धय भवनि, भवतरित हुए जो तुम प्रतिमानव लोक विधायक
 जन मन के चिर कुरुश्रेष्ठ के युग सारथि क्रम में प्रतिनायक !

कसा था वह दिव्य अवतरण,—
 (धय आज का ज्योति दिवस क्षण !)
 चिदापगा का अतुल वेग चिर दुधर
 मनश्चूड परकियादवन था जब धारण,—
 जिज्ञासा से पुलकित अतर !

स्वर्ण शुभ्र नीहार शृंग पर
 फूटी अगणित उपा क्या निखर,
 रहसू चकित आलोक क्राति में
 धरा स्वर्ग के डूबा दिगन्तर ?
 अमर ज्योति पिण्डों का पावक
 नव प्रकाश में आत्मसात् कर !

विश्व मन सगठन हुआ क्या विकसित ?
 नव्य सगुण सचरण देव में मूर्तित ?
 रंग रंग की आभा पखडियाँ
 बरसी क्या निस्वर
 सुरधनुश्री - सी भू पर ?

जब अत स्वर्णिम शिखरो पर
 उतरा अति आभा का जलधर,
 ज्वलित तडिल्लेखाश्री स कर
 भ्रूत सूक्ष्म विश्व का अम्बर,
 ध्यान मौन तब देव सपख मरु से भास्वर
 उडते थे क्या निश्चल, परम चेतना नभ पर ?

मनश्चेतना के ज्योत्स्ना जीवी इस जग म
 बिल्वराते लघु तारक आभा जिसके भग मे,
 नत मस्तक ही, ध्यान मग्न यह पद्म अचिन्त
 मानस जल मे रह अलिप्त, निन करता चिन्तन,—
 निज शोभा स्वर्णिम प्रभात मे उसके लोचन
 देव खोल दे, बरुणा-वर से ज्योतित कर मन,—
 करता थढ़ा प्रीति से नमन ।

गीत पग्य चन्दी अलि उसके अन्तर मे स्थित
 मुक्ति मांगता, अन्तमधु करने को सचित,—
 निज स्वर मे भर कर स्वर्गिक मधु वैभव नूतन,
 गा गा, वह कर सब देव को हृदय समर्पण,—
 स्वीकृत हो यह प्रणत निवेदन ।

३५

स्वप्न-पूजन

स्वप्नो के योवन से भर दो हे,
 मेरा मन,
 शोभा की ज्वाला म सिपटा
 मेरा जीवन ।

मेरे भावा के सतरंग स्तर
 बाधे स्वयं धरा का अन्तर
 जीवन की आकुल लहरो पर
 ध्यान स्थित हो मेरा आसन ।
 अमर स्पश से खोली ह
 उर का वातायन,
 प्राणो के सौरभ से पुलकित
 कर मेरा तन ।

श्रद्धानत मेरा मन निश्चित
 करे शिखर-सा ऊर्ध्व गमन निन,
 बरसे आशीवाद - सी अमित
 उस पर तेरी रवण स्मित किरण ।
 मेरे कम वचन मन हो शुचि
 तेरे पूजन,
 स्वप्नो से दीपित कर दो हे
 उर का प्राण ।

३६

वह मानव क्या ?

जिम आत्मा म हो नहीं प्रेम की अमर धार,
 वह आत्मा क्या ?

जा काट न सके मृत्यु बधन ।

जिस मन में तप की, मति म प्रतिभा की न धार,
व मति मन क्या ?

जो कर न सर्व सत्यालाचन !
जिन प्राणा में, जीवन म इच्छा की न धार,
वह जीवन क्या ?
जा कर न सबे भव सघषण !

यदि भले बुरे का जगे इन्द्रिया म विचार,
यदि मन में छा जाये जीवन का अधकार,
यदि आत्मा को दे डूबा प्राण वासना ज्वार
जीवन निरीह, सघष विरत हो, निरपचार !

तब ये सब क्या ?
इनका न प्रयोजन ! यही मरण !
वह मानव क्या ?
जो करे न अमरो संग विचरण !

३७

जिज्ञासा

किसकी लय म घूम घूम
बन गये स्वयं तुम भास्वर
ओ नीरव नीहार, ज्योति पिण्डा म
अगणित हंस कर !

कौन सत्य वह ? महाशून्य तुम
जिसस गभित हो कर
महा विश्व म बदल गये
धारण कर निखिल चराचर !

किसके बल से पच भूत ये
सतत कम मे तत्पर ?
शब्दित नभ, चल अनिल,
द्रवित जल, दीप्त अग्नि, भू उवर !

पद्म पत्र पर तुहिन स्वप्न - सा
हंसमुख चचल सुंदर
किसने जीवन का सम्मोहन
दिया मत्य भव मे भर !

कौन मृत्यु के अथ तमस को
अमृत स्पर्श से छू कर
स्वर्ण चेतना म भर, जग का
करता नव रूपांतर ?

इन प्रश्नों का मुझे नहीं
 शब्दा में दो प्रिय, उत्तर,
 तदावार कर हृदय
 सहज समझा दो हे करुणाकर !

३८

प्रकाश क्षण

जान मैं क्यों देखा करता
 जो जन मन में चिर मुदर !

वह किम युग का था खब ग्रह
 किन युग सीमाओं का विभ्रम ?
 अब भेद विवर्तन युग का तम
 आते प्रकाश क्षण निखर निखर !

वह व्यक्ति समाज जनित अंतर
 भू मन का स्थूल विभाजन भर,
 वह एक चेतना रे अकूल
 जो बनी बिन्दु गुम्फित सागर !

अब सूक्ष्म हो रहा नव विकसित,
 अब व्यक्ति विद्व भी परिवर्तित,
 हो रहा रजत मन स्वर्ण द्रवित
 आ रहा धरा पर स्वर्ग उतर !

चेतन हिरण्य से अत स्मित
 ही व्यक्ति समाज नवल कल्पित,
 गत अह नव्य में ही मज्जित
 चेतना ऊध्व विचरे भू पर !

३९

करुणा धारा

आज उठा लो जन मन से
 दुस्मृति का अचल,
 मनुज चेतना से भू मन की
 छाया श्यामल !

अतल मोन नयनों में डूबें
 निखिल विद्व जीवन के अंतर,
 बिहंस उठे आलोक कमल - सी
 मुख शोभा मानस के जल पर,

आज बखेरो निज स्मिति की
 पल्लवियाँ निश्छल !

शोभा के शिखरो पर उतरे
 प्राणो की अभिलाषा निस्वर,
 भाव गौर चूड़ो पर विचरें
 रहस स्वप्न अंतर के सुंदर,

आज खोल दो नवल
 चेतना का वक्षस्थल ।

मनुज प्रेम की बाँहा मे बँध
 विस्मृत हो जगती के सुख दुख,
 आज तुम्हारी कृष्णा घारा
 मत्स्य घरा के प्रति हो उमूख,
 श्रद्धानत जन भाल उठे
 पद रज से उज्ज्वल,
 जीवन सुंदरता से रक्षितम
 रंग दे पद तल ।

४०

रंग दो

रंग दो हे, रंग दो आकुल मन ।
 अमर रूप स्रष्टा, किरणो की
 तूली से रंग दो उडते धन ।

शशि से रग छाया प्रभ अंतर,
 क्षणप्रभा से इच्छा के पर,
 वरसा दो उर के अम्बर मे
 शोभा का नीरव सम्मोहन ।

आशा का हो इद्र चाप वर
 इद्र चाप मे स्वप्नो के शर,
 विरह अश्रु का भाव जलद हो,
 रग रहस्यो के हो गोपन ।

रंग दो नव शोभा से लोचन,
 प्रीति मधुरिमा से स्वर्णम मन,
 गीति चुम्बनो से मदिराधर
 स्वर्ण रुधिर से रँगो कर चरण ।

उलट रश्मियो के सतरँग घट
 रंग दो मेरा प्राणो का पट,
 रंग रँग की पखडियो मे हँस
 फूट पडे अंतर का जीवन ।

रंग जाये जो मेरा अंतर
 गोचर तुम बन सकी अगोचर,
 नव्य चेतना के पावक कण
 मैं कर सकू घरा पर वितरण ।

अंतर घन

विजली कॅंप कॅंप उठती घन में,
प्राणों की अभिलाषा मन में ।
तुम आभा देही बन जगती
तडित् चकित आशा के क्षण में ।

बरस रहा स्मृतियों का बादल
लिपटा मन मैं ममता कोमल,
स्वप्ना के पखा की छाया
फला नीरव उर प्राण में ।

यह आलोक मिला जीवन-तम,
प्रीति प्रतीति भरा सशय भ्रम,
विरह मिलन की मम व्यथा का
मन्द्र निनाद ध्वनित प्रतिक्षण में ।

सूक्ष्म वाष्प का यह अंतर घन,
तेरी आभा से नव चेतन,
इंद्र धनुष शोभा से मण्डित
गजन भरता हृदय गगन में ।

४४

अमर स्पर्श

खिल उठा हृदय,
खुल गये साधना के ब घन,
सगीत बना, उर का रोदन,
अब प्रीति द्रवित प्राणों का पण,
सीमाएँ अमित हुई सब लय ।

क्यों रहे न जीवन में सुर्य दुख,
क्यों जन्म मृत्यु से चित्त विमुख ?
तुम रहो दगों के जो सम्मुख
प्रिय ही मुझको भ्रम भय सशय ।

तन में आयें शशव यौवन
मन में हो विरह मिलन के अण,
युग स्थितियों से प्रेरित जीवन,
उर रहे प्रीति में चिर तमय ।

जो नित्य अनित्य जगत का भ्रम
वह रहे, न कुछ बदले, हो वम,
हो प्रगति ह्रास का भी विभ्रम,
जग से परिचय, तुमसे परिणय ।

शोभा जागरण

बरसा हे शोभा चेतन क्षण !
विद्वज समीरण के स्पन्दन मे
लहराये सौन्दर्य चिरन्तन !

शोभा त आदोलित हो जग,
शोभा मे घुमुमित जीवन मग,
शोभा के स्मित छायातप का
श्रीहा स्थल हो मन का प्रांगण !

धुलें निखिल मू मन के बल्मप,
मुक्त बनें जीवन मे परवण,
दृष्टाग्री के रण म विजयी
मा पर हो अन्त प्रवास क्षण !

सृजन करें नव मू शोभा जन,
जो अपूर्ण वह बने पूर्णतम,
जीवन शोभा हा जन चिन्तन,
अन्तर शोभा स्वप्न - जागरण !

मानसी

रंग उठते भावो के बादल,
रेखा दाशि सा दिखा सलज मुख
फिर फिर हो जाती तुम भोभन !

तुहिन अश्रु वाष्पो मे वीमल
बुद कली - सी लिपटी उज्ज्वल,
भरती तुम आकुल अन्तर मे
सुधा द्रवित ज्वाला स्मिति निश्चल !

बरस रहा नीरव सम्मोहन,
अंगडाता मन स्वप्नो का वन,
मधुर गुजरण भर, अब बहता
प्राण समीरण सुख से चंचल !

उतर रहस्य विचरते गोपन,
पद चापो से कपता निजन
तद्रिल छाया की घाटी मे
गा उठता अन्तर जल कल-कल !

मीन मधुरिमा से भर अन्तर,
आग्री, मानसि, हृदय मे उतर,
म्लान वेदना के आनन से
उठा करुण आँसू का अचल !

गोभा जागरण

बरसा है गोभा चेतन क्षण !
विश्व समीरण के स्पन्दन में
लहराये तीक्ष्ण चिरतन !

गोभा से आदोलित हो जग,
गोभा में कृमुमित जीवन मग,
गोभा के स्मित छायातप का
बीटा स्थल ही मन का प्रांगण !

धुलें निराल भू मन के कल्मष,
मुक्त बनें जीवन में परवश,
इच्छाओं के रण में विजयी
मन पर ही अन्त प्रवास क्षण !

सजन करें नय भू गोभा जन,
जो अपूण वह बने पूणतम,
जीवन गोभा ही जन चितन,
अंतर गोभा स्वप्न - जागरण !

मानसी

रंग उठते भावों के बादल,
रेखा दाहि - सा दिता ललज मुख
फिर फिर हो जाती तुम ओभन !

तुहिन अथु वाणो में कोमल
कु द कली सी लिपटी उज्ज्वल,
भरती तुम आवुल अंतर में
सुधा द्रवित ज्वाला स्मिति निश्छल !

बरस रहा नीरव सम्मोहन,
अंगडाता मन स्वप्नों का यन,
मधुर गुजरण भर, अथ बहता
प्राण समीरण सुख से चंचल !

उतर रहस्य विचरते गोपन,
पद चाणो से कौपता निजन
तद्भिल छाया की घाटी में
गा उठता अंतर - जल कल-कल !

मीन मधुरिमा से भर अंतर,
आओ, मानसि, हृदय में उतर,
म्लान वेदना के आनन से
उठा करुण आसू का अंचल !

अंतर घन

विजली वप कँप उठती घन म,
 प्राणो की अभिलाषा मन मे ।
 तुम आभा देही वन जगती
 तडित् चकित आशा के क्षण म ।
 बरस रहा स्मृतियों का वादल
 लिपटा मन मे ममता कोमल,
 स्वप्ना के पखा की छाया
 फँसा नीरव उर आँगन मे ।

यह आलोक मिला जीवन-तम,
 प्रीति प्रतीति भरा सशय भ्रम,
 विरह मिलन की मम व्यथा का
 मद्र निनाद ध्वनित प्रतिक्षण म ।
 सूक्ष्म वाष्प का यह अंतर घन,
 तरी आभा से नव चेतन,
 इन्द्र धनुष शोभा से मण्डित
 गर्जन भरता हृदय गगन मे ।

४४

अमर स्पश

खिल उठा हृदय,
 पा स्पश तुम्हारा अमर अभय ।
 सुल गये साधना के बघन,
 सगीत बना, उर का रोदन,
 अब प्रीति द्रवित प्राणो का पण,
 सीमाएँ अमित हुईं सब लय ।
 क्यो रह न जीवन मे सुरा दुग,
 क्यो जम मत्यु से चित्त विमुख ?
 तुम रहो दूगो के जा सम्मुख
 प्रिय ही मुझको भ्रम भय सगय !

तन म आयें शशव यौवन
 मन म हा विरह मिलन के व्रण,
 युग स्थितियों से प्रेरित जीवन,
 उर रहे प्रीति म चिर तमय ।
 जो नित्य अनित्य जगत का प्रम
 वह रहे, त कुछ बदले ही प्रम
 ही प्रगति ह्रास का भी विधम
 जग से परिषय, तुमसे परिणय ।

तुम सुन्दर स बन प्रति सुन्दर
 आभा अंतर म अंतरतर,
 तुम विजयी जो, प्रिय, हो मुझ पर
 वरदान, पराजय हा निश्चय ।

४५

प्रीति परिणय

प्रिय, बनत तुम विरह प्रणय मे,
 प्रलय सृजन के गीत हृदय मे !

उर के वाष्प जलद षण भर भर
 हंस उठते मोती बन सुन्दर,
 तुहिन षणी वा हार गूथती
 प्रात विरण तुम्हारी जय मे ।
 जीवन वा उठ वातर क्रदन
 प्राणो वो छू बनता गायन,
 सुन मधुवर वा आत गुजरण
 तिलते मुकुल मौन विस्मय मे ।
 वन गूलो स विधा मृदुल भोग
 फूलो के तन मन उठते रग,
 विवश कर दिये तुमने सुख दुख
 लांघ प्रीति के चिर परिणय मे ।
 नीचे सागर भरता गजन,
 हंसता ऊपर चन्द्र विमोहन,
 बढनी गानी जीवन बेला
 अमर प्रतीक्षा के विनिमय मे ।

४६

नव आवेश

जाग्रत मन से पहिले तुममे
 मिल जाता अतमन ।

जब तम मे डूबा रहता जग,
 दृग अपलक तबते निजन मग
 तुम स्वप्ना के पग घर धाते
 अतपथ से गोपन ।
 बजते नि स्वर नूपुर ममर,
 सुन पडत अश्रुत वशी स्वर,
 बुद्धि चकित रहती, बज उठता
 उर मे स्वागत गायन ।

मू अदन बन जाता कूजन,
 शांत निखिल जीवन सघषण,

क्षण मगुरता के आसन पर
 दिखता मौन चिरतन !
 चिर परिचित यह मानव जीवन,
 स्वप्न स्नात, लगता नव शोभन,
 अंतरतम म जगता अविदित
 एक अतुल आकषण !

शोभा पर शोभा पडती भर,
 सहज हृष से कँपता अंतर,
 मज्जित कर युग सीमाओं को
 बहता अतर्ज्विन !

जब तक होगी क्रांति समापन,
 वाछित होगा विश्व सगठन,
 एक नवल आवेश करेगा
 मानव अंतर धारण !

४७

स्वप्न गीत

(गमस्य के प्रति)

आओ, प्यारे मुना, आओ,
 भू पर चढ़ा से न-है, मुसकाओ,
 आओ !

तुम स्वप्नों के पथ से आओ,
 नव जीवन के रथ से आओ,
 मुना हो तो नयन जुड़ाओ,
 मुनिया हो तो हृदय चुराओ !

झिलमिल करते जुगनू वन में,
 बिजली छिपती दिपती घन में,
 जगते तुम आशा से मन में
 मधुर रूप धर हमें रिझाओ !

खेल रही लहरें चल जल में
 लोट रही मधु रज भूतल में,
 स्वप्नों की छाया आंचल में
 कँपती, उसको सत्य बनाओ !

भूल हृदय की मुटु धडकन में,
 फिर - फिर जग मन के लोचन में,
 तुम रहस्य से गोपन क्षण में
 लिपट मधुर प्राणों में जाओ !

स्रोत फूट पडता कलरव कर,
 वशी बज उठती मधुरव भर,
 तुम नीरव स्मित से मन को हर
 निज क दन किलकार सुनाओ !

आओ, तिलता कमन नाल पर,
 प्रांग खोलती बसी डाल पर,
 आती नव मजरि रंगाल पर
 फूल मद्दश मुगटा दिगलाओ !
 दूज रेल मे उगो गगन पर,
 ओस बूद मे उतरो, सुदर,
 जगो प्रात तारा म दूग हर,
 नव बालारण से मुसनाओ !

वादल से स्वातिज बन आओ,
 पपीठरे की प्यास बुभाओ,
 कोयल चाहेगी, संग गाओ,
 मंना, प्यारा नाम बताओ !

बापी मे अब तारक उज्ज्वल,
 सीपी के उर मे मुबनाफल,
 सुरंग फूल के अचल म फल,
 तुम गोदी मे लाल, सुहाओ !

सुदर तन स सुदर तन घर,
 दीपक स दीपक लौ-स बर,
 लहरी से लहरी स उठ बर
 फिर नव जीवन तम दुहराओ !

शाश्वत स, लघु तन मे सीमित,
 रवि से, हिमकण मे प्रतिबिम्बित,
 जग से नयन बनी म अकित,
 पूनो से प्रतिपत बन आओ !

तुम अदम्य यौवन की आशा,
 नारी जीवन की अभिलाषा,
 प्राणो की ममता-नरिभाषा,
 मूर्तिमान नव तन घर लाओ !

आओ, तुम देखोगे गांधी,
 जिनसे हमे मिली आजादी
 स्यात् तुम्ह पहनावे खादी,
 आओ, अब न अधिक बिलमाओ !

तुम स्वतंत्र भारत मे आओ,
 मुक्त तिरगे को फहराओ,
 फिर फिर गांधी की जय गाओ,
 नव युग के संग चरण बढाओ
 नहे आओ !

× को पाओगे बदर ×
 मा को चित्र लिखी-सी सुदर
 आओ तुम विकसित नर बनकर
 कुल दीपक, कुल रत्न कहाओ !

आओ राजा, आओ रानी,
 तुम्ह बुलाती मौसी नानी
 तुम सच हो,—तुम नही कहानी,
 पापा को आ नाच नचाओ !

'गाओ भवन,' मुबारकबादी !
 बल की-सी घटना है शादी !
 खुश होगी पर मुनकर दादी,
 तुम पोते को गोद खिलाओ !
 मुने आओ !

४८

त्रिवेणी

(तापसी)

तीथराज जो जन सस्कृति का केन्द्र प्रतिष्ठित
 उस प्रयाग से कौन नही भारत मे परिचित ?

शुभ्र नील लहरा का जहाँ स्फुरत्प्रभ सगम,
 प्रक्षयवट, श्रुति भरद्वाज का विश्रुत आश्रम !

गंगा यमुना सरस्वती की निमल वेणी
 मिलकर बनती जहा पुण्य जल प्रथित त्रिवेणी !

रश्मि चपल शत छायाभाओ से जा गुम्फित,
 युग युग के मू मानस पट सी लगती जीवित !

ऊर्मि मुखर भव गंगा यमुना गौर श्याम तन
 सरस्वती के संग गोपन करती सम्भाषण !

लोक तारिणी गंगा अपनी कहती गाथा,
 ताप हारिणी, हरती जो जन - मन की बाधा !

लो, वह आती, वजते चल किरणोज्वल पायल,
 टकरानी सगीत लहरियाँ कल कल छल छल !

(गंगा)

मैं विष्णुपदी, मैं सुरसरिता,
 मैं हरि चरणों से आयी,
 मैं पुण्य त्रिपयगा, स्वगंगा की
 सुधा धार है लायी !

शत रश्मि ज्वलित निभर सी उतरी
 मैं शनर के शिर पर
 शोभा मे लहरी, जटा शकरी
 कवियो से कहलायी !

मैं सगर वस हित, विदिन,
भगीरथ श्रम स प्रायी भू पर
स्वर्गीय तान सी जहनु धवण में
पैठ सहज विनमायी !

मैं हिम तनया, मैं मेरु-प्रातमजा
मनोरमा की दुहिना
मेरी धारा में जन - मन की
धारा अविराम समायी !

मेरे पुलिनो पर वस प्रथित जन तीथ,
ग्राम, पुर जनपद,
मेरे अचल में मुक्ति मनुज ने
जन्म मरण से पायी !

मेरी सहरो के वम्पन में
शत शत हृदयो का स्पन्दन,
रवि दाशि की किरणें भरती जिनमें
भ्रमरो की तरुणाई !

मैं उबर रखती धरती का उर
सूक्ष्म मृत्तिका भरकर,
मेरी वरुणा, अचल-सी जीवन
हरियाली में छापी !

आओ हे, अतस्तल में डूबा,
धोषो मन के बल्मप,
निस्तल अकूल जीवन की
शाश्वत धारा यह सहारायी !

(तापसी)

बदल गया सहसा जल का फेनिल छाया पट,
छप छप टूट रहा चादी - सा बालू का तट !

वेगवती यमुना अब आती रगस्थल पर
निश्छल गंगा लेती उसको बाँहो में भर !

ऋ दन करता रह - रह उसका आबुल अतर,
सुनिए उसके अश्रु द्रवित वशी के से स्वर !

(यमुना)

मैं सूय सुता, मैं यम भगिनी कहलाती
मैं तुमसे मिलते, धीरे आज लजाती !

मेरे तट पर थे रास रचे मोहन ने,
अब तक अस्फुट किंकिणियो की ध्वनि आती !

जल में शत तडित लताग्रो - सी सु दरिया
 तिरती थी, कल त्रीडा करती, इठलाती ।
 जिनकी देखा - देखी ये चचल लहरें
 शोभा प्रीवा मटकाती, भकुटि नचाती ।
 मरे कलरव में गूज रहे मुरली स्वर
 स्वप्नो की छाया आचल में छहराती ।
 युग युग ती वे नीरव सगीत हिलोरें
 मरे उर में हा - हा भर हृदय कँपाती ।

(गगा)

सखि, धीर धरो, तुम शत करो अपना मन,
 तुमस मिलकर परिपूण हुआ नू जीवन ।
 सुख दुख पुलिनो में बहती मानस धारा
 नश्वर जग में अनुभव अविनश्वर घाती ।
 परिवर्तित विकसित होता जग जीवन क्रम,
 विपदा सम्पदा न रहती कभी चिरतन ।
 तेरे उर में बहता युग युग का सचय
 यह निस्तल नील गम्भीर धार बतलाती ।
 तू जान सम्यता संस्कृति की स्रोतस्विनि,
 जीवन मुक्ता, सयुक्ता, प्रीति तरगिणि ।
 इस मम व्यथा पर नू सुख सकल निछावर
 तू श्याम विरह में छल छल अश्रु बहाती ।

(तापसी)

यमुना मन के भाव सखी से नहीं छिपाती
 वह अपने आक्रोश रोष की कथा सुनाती ।
 उसके उर में सुलग रही अब दारुण ज्वाला,
 वह विद्रोहिणि, वेग न जाता उग्र सँभाला ।

(यमुना)

सखि ! तुमको पा कृतकृत्य हुआ मेरा मन
 वह सुख ये मुखर हिलोर नहीं वह पाती ।
 मैं पार कर चुकी गिरि प्रातर, बीहड़ वन
 कूलो की कटु सीमाओं से टकराती ।
 मैं धीर धरित्री का निमम वक्षस्थल
 अवचेतन की अधियाली - सी लहराती ।

गजन भरता घहरह यह उद्वेलित मन,
मेरे अंतर मे शान्ति चतुर्दिश गाती ।

दीनो दुखियों के मनस्ताप से मन्थित
मैं प्रलय बाढ़ बन युग के पुलिन डुबाती ।

मैं सुख स्पर्शों में पली, मम - ब्राह्म हो,
नागिन - सी उठ, फेरो के फन फैलाती ।

युग सगम हो जन - जन के मन का सगम
मैं भ्रू मन मे फिर ज्वार अदम्य उठानी ।

(तापसी)

गगा जी गम्भीर गिरा कहती यह सुनवर
हरिचरणा का प्रीति स्रोत है उनके भीतर ।

(गगा)

तुम दुदम सूर्य सुता हो, सजा - जाता,
दीनो का दुख कब तुमसे देखा जाता ?

अमरो की शान्ति लिये यह मेरी धारा,
तुम मेरे उर मे नव प्रेरणा जगाती ।

मैं सुनती हूँ अपने भीतर अभ्रुत स्वर
स्वर्णम नूपुर ध्वनि भरती निस्वर ममर ।

वह सुनो, मौन अम्बर मे जगता गुजन,
यह कौन - उपा सी नव अरुणोदय लाती ?

(तापसी)

गगा यमुना के सगम का धर पावन तन
सरस्वती का होता अत स्फुरित अवतरण ।

वह अदश्य, केवल जन मन सगम मे शोचर,
विश्व समागम से अतीत, शाश्वत, लोकोत्तर ।

सुनिए उर उर मे अब उसके चिर नीरव स्वर,
वह इन्द्रिय अग्राह्य, अनिवचनीय, सूक्ष्मतर ।

(सरस्वती)

मैं अन्त सलिला, चिर विमला,
अतमंख धारा हूँ अचपल,
मैं मन शिखर से स्वत निखर
बहती निस्वर, भर अतजल ।

धर ऊर्ध्व चरण, शत सूर्य किरण,
कन्ती रहस्य पथ से विचरण,

अन्नर प्लावन भरती प्रतिक्षण
मैं ज्ञान-गहन कर अन्तस्तल ।

चेतना ज्वार - सी दुनिवार
मैं विश्व पुलिन करती मज्जित,
सहराकर, डुबा निखिल अन्तर,
बढ़ती अकूल निस्तल निमल ।

(तापसी)

कालिंदी की क्षुब्ध तरंगों क्रोध से सिंहर
प्रदन पूछती, सरस्वती का सम्बाधन कर ।

(यमुना)

तुम छाया हा भयवा माया ?
मैं तुमको समझ न पाती ।
तुम सच कहती, क्या तुम बहती ?
क्यों प्रकट नहीं हो जाती ?

फेनिल उच्छल, बढ़कर बल कल
क्यों गरज न तुम लहराती ?
गिरि गहन चीर गति से अघोर
भू पथ क्यों नहीं बनाती ?

श्रृंखु कुचित जग का मग निश्चित,
पग पग पर बाधा अगणित,
छिपती भीतर, आकर बाहर
जन दुख क्यों नहीं बँटाती ?

(सरस्वती)

मैं बहने भायी, रुका, रुकी,
गति ही मे मत बह जाओ,
ओ इच्छा से पागल सरिते,
सोचो, मन को समझाओ ।

तुमने बाहर बाहर बढ़कर
हो पार किये गिरि बानन,
पर बढ़ता भीतर हृदय रदन,
मुझसे मत भेद छिपाओ ।

तुम उद्वेलित, आकुल, अशांत,
शत आवेशों से मणित,
तुम भावतों मे घूम रही,
मुझको मत माग सुझाओ ।

तुम श्रद्ध रुद्ध नित उफनाती,
टकराती, रंग रंग जाती,

मुझको भय है, तुम अतस गत म
यहीं रही गिर जाया ।

भीतर देगो, भीतर है मति,
बाहर गति, अंधी गति है,
तुम घात धीर गगा म मिल
गति को गम्भीर बनाओ !
(गगा)

मेरी भी यह चिर अभिताया
जन सगम बने सनातन,
हा विश्व समागम, हिल मिलकर
विकसित वृद्धित हो जन मन ।

इस हृदय मिलन म अवाहन कर
भू मन हो चिर पावन,
बाहर भीतर जड चेतन मय
जीवन हो पूण प्रतिक्षण ।

गगा यमुनी जीवन धारा
नित बहे अबाध चिरन्तन,
सयुक्त हृदय, सयुक्त वम हो
जन मगल के साधन ।

(तापसी)

गगा यमुना गाती जीवन मगल गायन,
फेन हार रच, सरस्वती को वरती अर्पण ।

(गगा यमुना)

मू मगल हो, भव मगल हो
जीवन शोभा से उबर जग,
प्रीति द्रवित जन अन्तस्तल हो ।

जन मगल हो, जग मगल हो ।

जब जब पकिल हा जीवन तट,
तमस रुद्ध मानव उर के पट,
कहना धारा - सी अंतर से
फूटो तुम मू मग उज्ज्वल हो ।

विस्तृत मुक्त मिले पथ बाहर,
पूण अगाध बहे जल भीतर,
मुखरित जग जीवन प्रवाह नित,
श्यामल धरणी का अचल हो ।

सकल स्रोत मिल एक धार हो
लोक समागम भार - पार हो
ज्ञान शक्ति सचय अपार हो,
युग का युद्ध अनल शीतल हो ।

युगवाणी

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९३६]

कवि श्री निरालाजी को

दृष्टिपात

'युगवाणी' का तीसरा संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें मैंने 'युगवाणी' के बलापक्ष के सम्बन्ध में दो वाक्य लिखकर, पाठकों की सुविधा के लिए, युग दान के प्रमुग तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला है।

'युगवाणी' को मैंने गीत मध्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें पाठ्यात्मकता का अभाव है, प्रत्युत, उगवा काव्य अप्रच्छन्न, अनलकृत तथा विचार भावना प्रपान है। युग क गण्डहर पर युगवाणी का वाक्य सौन्दर्य प्रभात के ईश्वर म्रणिम धानप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे बला प्रेमी, ध्वम के डेर में दृष्टि हटार, सहज ही ख सकते हैं।

'युगवाणी' की भाषा मूढम है, उसमें विदलेपन का सौन्दर्य है। जिस परम्परागत मधुवा को हम पल्लवा के ममर में लज्जारण और फलो के रग गुजन में यौवन गवित देवत धाय है उसकी दमिण पवन (वाक्य प्रेरणा ?) निगिर में ठण्ठी उमामें भर, धाज डेर-डेर पीले-पुराने पत्ता को युग-परिवर्तन की धांधी में उडाकर,—जैसे, उा टूटत हुए स्वप्नो पर मियर चरण न रत मकन ने कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई— नयी मस्वृति के बीज बखेर रही है। 'युगवाणी' में धाय टेढ़ी मेढ़ी पतली टूँठी टूँठी के वा का दूर तब फेला हुआ वासामि जीर्णानि विहाय सौन्दर्य देखेंगे, जिससे नवप्रभात की सुनहली विरणें बारीक रेसमी जाली की तरह लिपटी हुई हैं, जहाँ धासा के भरत हुए धशु प्रागत स्वर्णोदय की धामा में हंसत हुए-स दिग्यायी देत है, जहाँ शाखा प्रशाखाओं के अन्तरान स—जिनमें अत्र भी कुछ विवण पत्ते अटके हुए हैं—छोटे-बड़े, तरह-तरह के, भावनाओं के नीड, जाना की ठिठुरती रापती हुई महानिशा के युग वापी वास स मुवन होकर नवीन बोपलो से छनत हुए नवीन आलोक तथा नवीन उष्णता का स्पश पाकर फिर से सगीत मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पत्ते की मासल हरियाली को जब कीड़े चाट जाते हैं, उसकी सूक्ष्म स्नायुओं में बुनी हुई हुयेली का कत्रा विघास जिस प्रकार देखने वालों को आश्चर्यचकित कर देता है उसी प्रकार की मिलती जुलती हुई सौन्दर्य मन्त्राति की भाँकी धाय 'युगवाणी' में भी पायेंगे। तब आप सहज ही युगवाणी के स्वरो में वह उठेंगे

सदियों से आया मानव जग में यह पतझर ।

और,—

जीवन बसत नुम, पतझर बन नित आती,
अपहृप, चतुर्दिक् सु दरता बरसाती ।

'युगवाणी' में प्रवृत्ति सम्बंधी कविताओं के अतिरिक्त, जो मेरी अर्थ

दृष्टिपात

'युगवाणी' का तीसरा संस्करण पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसमें मैंने 'युगवाणी' के कलापक्ष के सम्बन्ध में दो शब्द लिखकर, पाठकों की सुविधा के लिए, युग दर्शन के प्रमुख तत्त्वों पर भी प्रकाश डाला है।

'युगवाणी' को मैंने गीत गद्य इसलिए नहीं कहा है कि उसमें काव्यात्मकता का अभाव है, प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलकृत तथा विचार भावना प्रधान है। युग के खण्डहर पर 'युगवाणी' का काव्य सौंदर्य प्रभात के ईषत् स्वर्णिम आतप की तरह बिखरा हुआ है, जिसे कला प्रेमी, ध्वंस के डेर से दृष्टि हटाकर, सहज ही पक सकते हैं।

'युगवाणी' की भाषा सूक्ष्म है, उसमें विश्लेषण का सौंदर्य है। जिस परम्परागत मधुवन को हम पल्लवों के ममर से लज्जार्ण और फूलों के रंग गुजन में यौवन गर्वित देखत आये है उसकी अभिन्न पवन (काव्य प्रेरणा ?) शिशिर में ठण्डी उसासों भर, आज डेर-डेर पीले-पुराने पत्तों को युग परिवर्तन की आघी में उड़ाकर,—जैसे, उा टूटते हुए स्वप्नों पर स्थिर चरण न रख सकने के कारण ही प्रलय नृत्य करती हुई— नयी संस्कृति के बीज बखेर रही है। 'युगवाणी' में आप टैली मेडी पतली ठूठी टहनियों के वन का दर तक फैला हुआ वासामि जीर्णानि विहाय सौंदर्य देखेंगे, जिससे नवप्रभात की सुनहली किरणें बारीक रेशमी जाली की तरह लिपटी हुई हैं, जहाँ ओसा के झरते हुए अश्रु आगत स्वर्णोदय की आभा में हँसत हुए-से दिखायी देते हैं, जहाँ दाम्या प्रशास्त्रियों के अंतराल से—जिनमें अब भी कुछ विषण पत्तों अटके हुए हैं—छोटे-बड़े, तरह तरह के, भावनाओं के नौड, जाडों की ठिठरती वापती हुई महाविशा के युगव्यापी आस से मुक्त होकर नवीन कोपलों में छनते हुए नवीन आलोक तथा नवीन उष्णता का स्पष्ट पाकर फिर से सगीत मुखर होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

पत्तों की मासल हरियाली को जब कीड़े चाट जाते हैं, उसकी सूक्ष्म स्नायुओं से बुनी हुई हथेली का कला-विन्यास जिस प्रकार देखने वाले को आश्चर्यचकित कर देता है उसी प्रकार की मिलती जुलती हुई सौंदर्य सश्रान्ति की भांकी आप 'युगवाणी' में भी पावेंगे। तब आप सहज ही युगवाणी के स्वर्गों में बह उठेंगे

सदियों से आया मानव जग में यह पतझर ।

और,—

जीवन वसंत लुम, पतझर वन नित आती,
अपरूप, चतुर्दिक सुंदरना बरसाती ।
'युगवाणी' में प्रकृति सम्बन्धी कविनाम्ना के अतिरिक्त, जो मेरी अन्य

प्राकृतिक रचनाओं की तुलना में अपनी विशेषता रखती हैं,—भुग्नत पाँच प्रकार की विचारधाराएँ मिलती हैं

(१) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय, जिसमें मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके।

(२) समाज में प्रचलित जीवन मायताओं का पर्यालोचन एवं नवीन सस्कृति के उपकरणों का संग्रह।

(३) पिछले युगों के उन मृत आदर्शों और जीण रूढ़ि रीतियों की तीव्र भत्सना, जो आज मानवता के विकास में बाधक बन रही हैं।

(४) मानसवाद तथा फॉण्ड के प्राणिशास्त्रीय मनोदशन का युग की विचारधारा पर प्रभाव जन समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक समुदाय का जीर्णोद्धार।

(५) वहिर्जीवन के साथ अतर्जीवन के संगठन की आवश्यकता राग भावना का विकास तथा नारी जागरण।

'युगवाणी' की कुजी उसकी 'बापू शीपक पहली कविता में है,—

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहाँ आत्म दशन आदि से समासीन अम्लान।

मानव जीवन एवं समाज का हृपांतर करने तथा पृथ्वी पर मानव स्वर्ग बसाने का वस्तु स्वप्न नवीन युग की भावात्मक देन है। मध्ययुग के दाशनिकों ने जिस प्रकार बाह्य जीवन सत्य की अवहेलना कर जगत् को माया या मिथ्या कहा है और आधुनिक भूतदशन जिस प्रकार अतर्जीवन सत्य की उपेक्षा कर उसे वहिर्जीवन के अधीन रखना चाहता है, 'युगवाणी' में इन दोनों एकांगी दृष्टिकोणों का खण्डन किया गया है।

लोक कल्याण के लिए जीवन की बाह्य (सम्प्रति राजनीतिक आर्थिक) और आन्तरिक (सांस्कृतिक आध्यात्मिक) दोनों ही गतियों का संगठन करना आवश्यक है। मात्रा और गुण दोनों में सन्तुलन होना चाहिए। जहाँ एक ओर असंख्य नये भूखों का उद्धार करना जरूरी है वहीं पिठली सस्कृतियों के विरोधा एवं रीति-नीतियों की शृंखलाओं से मुक्त होकर मानव चेतना को युग उपकरणों के अनुरूप, विकसित लोक जीवन निर्माण करने में सलग्न होना है।

'युगवाणी' का विष्वमूर्ति कथा है, जिससे वह जातिगत मन से मुक्त होकर त्रिश्वमन एवं युग के लोकमन को अपने स्वरो में मूत कर सके मनुष्य की अतर्चेतना में जो सत्य अभी अमूत है उसे रूप दे सके जीवन सौंदर्य की जो मानसी प्रतिमा आज अतमन में विकसित हो रही है उस भौतिक जीवन में साकार कर सके, और हमारा मा स्वर्ग पृथ्वी पर उतर आये। वही-वही भावी जीवन की कल्पना प्रत्यक्ष हो उठी है। यथा, अर छंदों और प्राप्ति में सीमित कविता विश्व जीवन के रूप में बहने लगी है, मानव जीवन ही काव्यमय बन गया है कलात्मक भाव जीवन की वास्तविकता में बंध गये हैं। ऐसे ससार में, जहाँ सांस्कृतिक शक्तियाँ उन्मुक्त हो गयी हैं अर जीवन मधपण एवं समाज निर्माण का श्रम सुखद सुन्दर लगता है।

एक युग के असंगठित जीवन को अंतरार कहा है, संगठित मन का प्रकाश। विकसित व्यक्तिवाद के साथ ही विनमित समाजवाद का

विशेष महत्त्व दिया है, जिसमें देव बनने के एकांगी प्रयत्न में हम मनुष्यत्व से विरक्त होकर सामाजिक जीवन में पशुओं से भी नीचे न गिर जायें, देवत्व को आत्मसात् कर हम मनुष्य बन रहें और मानव दुबलताओं के भीत" से अपना निर्माण एवं विकास कर सकें। नवीन समाज की परिस्थितियाँ हमें आदर्शों की आरंभ ले जान वाली हैं। हमारा मन युग के छायाभावा से सनस्त न रह, हम आज के मनुष्य की चेतना का, जो लण्ड युगों की चेतना है, त्रिकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप सगठन एवं निर्माण कर सकें।

अपने दश में जनसाधारण के मन में जीवन के प्रति जा खोलने वराग्य की भावना घर कर गयी है उसका त्रिरोध कर नवीन सामाजिक परिस्थितियों के आकार पर नवीन मानसिक जीवन प्रतिष्ठित करने पर जोर दिया गया है। भौतिक विज्ञान के विकास के कारण मूल रचना के जिस भावात्मक दशन का इस युग में आविर्भाव हुआ है उसे युगदशन का एक मुख्य स्तम्भ माना है।

मध्ययुग आत्मदशन या आत्मवाद का सक्रिय, सगठित एवं सामूहिक प्रयोग नहीं कर सका। तब भौतिक विज्ञान इतना समुन्नत नहीं था, वाष्प, विद्युत्, रेडिओ आदि मानव-जीवन के बाह्य नहीं बन सके थे। जीवन की बाह्य परिस्थितियाँ एक सीमा तक विकसित होने के बाद निष्क्रिय और जड़ हो गयी थी। मध्ययुगीन विचारकों, सत्ता एवं साधुओं के लिए यह स्वाभाविक ही था कि वे विश्व संचरण के प्रति निरीह होकर (मायावाद मिथ्यावाद आदि जिसके दुष्परिणाम हैं) व्यक्ति से सीधे परात्पर की ओर चले जायें। उनके नैतिक उन्नयन के प्रयत्न भगीरथ प्रयत्न कह जा सकते हैं पर वे राम प्रयत्न या कृष्ण प्रयत्न (जिन्हें राम कृष्ण अवतरण कहना उचित होगा) नहीं थे, जिनके द्वारा विश्व संचरण में भी प्रकाश-तरंग या युगांतर उपस्थित हो सकता है और जिनकी विकसित चेतना विश्व जीवन के रूप में सगठित एवं प्रतिष्ठित हो सकती। वर्तमान युग, नैतिक उन्नयन से अधिक, इसी प्रकार के बहिर तरंग-तरंग की प्रतीक्षा करता है।

रूप मत्स्य और कम के मन से मेरा अभिप्राय लोक जीवन के सगठित रूप से और संस्कृति के रूप में सगठित मन से है। पिछले जीवन के सगठित सत्य (संस्कृति) को जिसके मूल केवल मध्ययुग की चेतना के आकाश में हैं लोकसंग्रह से प्राणशक्ति ग्रहण करने के लिए अधोमूल बन जाना है, फिर से नीचे से ऊपर की ओर उठना है। गीता में जिस विश्व अश्वत्थ को ऊर्ध्वमूलमध शासक कहा है वह आध्यात्मिक दृष्टि कोण है जिसके अनुसार विश्वमन (अधिमन) एवं जीवन का समस्त सत्य विज्ञान भूमि में बीज रूप में संचित है, जहाँ से वह जगत जीवों में अवतरित एवं प्रस्फुटित होता है। 'युगवाणी' में, अवतरण और विकास, दोनों संचरणों को महत्त्व दिया है। इसी प्रकार का समन्वय पाठकों को 'ज्योत्स्ना' में भी मिलेगा।

संश्लेष में मैंने माक्सवाद के लोच सगठन रूपी व्यापक आदर्शवाद और भारतीय दशन के चेतनात्मक ऊर्ध्व आदर्शवाद दोनों का संश्लेषण करने का प्रयत्न किया है। भारतीय विचारधारा भी सत्य, प्रता, द्वापर

कलियुग के नामो से प्रादुर्भाव, निर्माण, विकास और ह्रास के वृत्त सचरणों पर विश्वास रखती है। अतः नवीन युग की भावना केवल कपोल कल्पना नहीं है। पदार्थ (मैटर) और चेतना (स्फिरिट) को मिला दो किनारों की तरह माना है जिनके भीतर जीवन का लोकोत्तर सत्य प्रवाहित एवं विकसित होता है। भविष्य में जब मानव जीवन विद्युत् और अणु शक्ति की सबल टांगों पर प्रलय वेग से दौड़ने लगेगा तब ग्राह्य के मनुष्य की तर्कों बादों में बिखरी हुई चेतना उसका संचालन करने में किसी तरह भी समय नहीं हो सकेगी। इसलिए सामाजिक जीवन के साथ ही मनुष्य की अतर्कितता में भी युगांतर होना अवश्य भावी है।

इस युगविवर्तन में अनेक अभावात्मक एवं विरोधी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं जो हमारे पिछले सामाजिक सम्बन्धों की प्रतिक्रियाएँ हैं। वर्तमान राजनीतिक आर्थिक आन्दोलन इन्हीं विरोधों को दबाने एवं नवीन भाव परिस्थितियों का निर्माण करने के लिए जन्म ले रहे हैं। एक विरोधी तत्त्व और भी है जो इनसे सूक्ष्म है। वह है मनुष्य का रागतत्व, जो पिछले युगों के संस्कारों से रजित और सीमित है। इस रागतत्व को अपने विकास के लिए भविष्य में अधिक ऊँच एवं व्यापक धरातल चाहिए। वर्तमान नारी जागरण और नारी मुक्ति के आन्दोलन उस धरातल पर पहुँचने के लिए सोपान मात्र हैं। राग सम्बन्धी आन्दोलन एक प्रकार में अभी अविकसित और पिछड़ा हुआ है। प्राणिशास्त्रीय मनोविज्ञान उस पर केवल प्राणिक प्रकाश डालता है। मनुष्य स्वभाव को संस्कृत बनाने के लिए रागात्मिका प्रवृत्ति का विकास होना अनिवार्य है। वह एक मूल प्रवृत्ति है। इस वृत्ति के विकास से मनुष्य अपने देवत्व के समीप पहुँच जायेगा और ससार में नर नारी सम्बन्धी रागात्मक मायताओं में प्रकारांतर हो जायेगा। स्त्री पुरुष भौतिक विज्ञान शक्ति से समृद्धि भावी लोकतंत्र में रहने योग्य संस्कार विकसित प्राणी बन सकेंगे। तब शायद धरती की चेतना स्वर्ग के पुत्रियों को छूने लगेगी। राग सम्बन्धी इस सचरण के लिए 'युगवाणी' में यत्र-तत्र संकेत किया गया है।

मुझे विश्वास है कि इन दृष्टिकोणों से 'युगवाणी' को समझने में पाठकों को सुविधा होगी। दशन पक्ष के लिए आधुनिक कवि (भाग दो) की भूमिका को पढ़ना भी उपयोगी सिद्ध होगा। इति।

प्रयाग २४ सितम्बर '४७

सुमित्रानन्दन पंत

बापू !

किन तत्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानव को ?
किस प्रकाश से भर जाओगे इस समरो-मुख भव को ?
सत्य अहिंसा ने आलोकित होगा मानव का मन ?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जायेगा जग जीवन ?
आत्मा ही महिमा से मण्डित होगी तब मानवता ?
प्रेम शक्ति से चिर निरस्त ही जायेगी पाशवता ?

बापू ! तुमसे सुन आत्मा का तेजराशि आह्वान
हूँ उठते हैं रोम हृदय से, पुलकित होते प्राण !
भूतपाद उस घरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !
नही जानता, युग विवत में होगा कितना जन क्षय,
पर, मनुष्य को सत्य अहिंसा इष्ट रहेगे निश्चय !
नव संस्कृति के दूत ! देवताओं का करने कार्य
मानव आत्मा को उबारने आये तुम अनिवाय !

युगवाणी

युग की वाणी,
हे विश्वमूर्ति, कल्पाणी !
रूप रूप बन जाय भाव स्वर,
चित्र गीत झकार मनोहर,
रक्त मास बन जाय निमित्त
भावना, कल्पना, रानी !
युग की वाणी !

आत्मा ही बन जाय देह नव,
आन ज्योति ही विश्व स्नेह नव,
हास, अश्रु, भाशाऽकाशा
बन जाय खाद्य, मधु पानी !
युग की वाणी !

स्वप्न वस्तु बन जाय सत्य नव,
स्वर्ग मानसी ही भौतिक भव,
अंतर जग ही बहिर्जगत
बन जावे, वीणापाणी !
युग की वाणी !

सब मुक्ति हो मुक्ति तत्त्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब,
बने विश्व जीवन की स्वरलिपि
जन मन मम कहानी !
कवि की वाणी !

नव दृष्टि

खुल गये छ'द के बाध, प्राप्त वे रजत पाश,
अब गीत मुक्त, श्रौ' युग वाणी बहती अयास !
बन गये कलात्मक भाव जगत के रूप नाम,
जीवन सघर्षण देता सुख, लगता ललाम !

सु'दर, शिव, सत्य कला के कल्पित माप मान,
बन गये स्पूल, जग जीवन से हो एकप्राण !
मानव स्वभाव ही बन मानव द्वादश सुकर
करता अप्रुण को पूर्ण, असु'दर को सु'दर !

मानव !

जग जीवन के तम में
दय, अभाव क्षयन मे
परवश मानव !
बुन स्वप्ना के जाल
ढक दो विश्व-पराभव
बुत्सित गहित, घोर !

ऊणनाभ से प्राण
सूक्ष्म, अमर अंतर-जीवन का
ताने मधुर वितान,
देश काल के मिला छोर !

पशु-जीवन के तम मे
जीवन रूप मरण मे
जाग्रत मानव !
सत्य बनाया स्वप्ना को
रच मानवता नव,
हो नव युग का भोर !

युग उपकरण

वह जीवित मगीत, लीन हा जिसमे जग-जीवन-मघप,
वह घात, मनुज-स्वभाव ही जिसका दोष गुद निष्कप !
वह अ न मी-दय, सहन कर भवे बाह्य बर्ह्य विरोध,
सत्रिय घुबग्गा न घुना का' कर घणा ग जा परिशीघ !

नम्र शक्ति वह, जो सहिष्णु हो, निबल को बल करे प्रदान
मृत प्रेम, मानव मानव हो जिसके लिए अभिन, समान ।
वह पवित्रता, जगती के कलुषो से जो न रहे सत्रस्त,
वह सुख, जो सवत्र सभी के सुख के लिए रहे सयस्त ।

ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्माण,
वह दशन विज्ञान, मनुजता का हो जिससे चिर कल्याण ।
वह सस्कृति, नव मानवता का जिसमे विकसित भव्य स्वरूप,
वह विश्वास, सुदुस्तर भव सागर मे जा चिर ज्योति-स्तूप ।
रीति नीति, जो विश्व प्रगति मे बनें नही जड बधन पाश,
ऐसे उपकरणो से हो भव मानवता का पूण विकास ।

नव सस्कृति

भाव कम मे जहा साम्य हो सतत,
जग जीवन मे हो विचार जन के रत ।
ज्ञान बद्ध, निष्क्रिय न जहा मानव मन,
मत आदश न व धन, सक्रिय जीवन ।
रुटि रीतिया जहा न हो आराधित,
श्रेणि वग मे मानव नही विभाजित ।
धन बल से हो जहा न जन श्रम शोषण,
पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन ।

जहा दैय जत्रर अभाव ढवर पीडित
जीवन यापन हो न मनुज को गहित ।
युग युग के छाया-भावो से आसित
मानव प्रति मानव मन हो न सशक्ति ।
मुक्त जहाँ मन की गति, जीवन मे रति,
भव मानवता मे जन-जीवन परिणति ।
सस्कृत वाणी, भाव, कम, सस्कृत मन,
सुदर हो जन वास, वसन, सुदर तन ।

ऐसा स्वग घरा मे हो समुपस्थित,
नव मानव सस्कृति किरणो मे ज्योतित ।

पुण्य प्रसू

ताक रहे हो गगन ?
मत्यु नीलिमा-गहन गगन ?
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?—
निस्पन्द, शून्य, निजन, निस्वन ?

दखो भू को ।
जीव प्रसू को ।
हरित भरित

पल्लवित ममरित
 कूजित गुजित
 बुसुमित
 भू को !
 कोमल
 चचल
 शाद्वल
 भ्रचल,—
 बल बल
 छल छल
 चल जल निमल,—

बुसुम खचित
 मारुत सुरभित
 खग कुल कूजित
 प्रिय पशु मुखरित—

जिस पर भक्ति
 सुर मुनि वा दत्त
 मानव पद तल !

देखो भू को,
 स्वर्गिक भू को
 मानव पुण्य प्रसू को !

चींटी

चींटी को देखा ?
 वह सरल विरल, वाली रेखा
 तम के तागे-सी जो हिल डुल
 चलती लघुपद पल पल मिल जुल,
 वह है पिपीलिका पाँति !

देखो ना, किस भाँति
 काम करती वह सतत ?
 कन् कन् कन्वे चुनती भविरत !

गाय चराती,
 धूप खिलाती,
 बच्चा की निगरानी करती,
 लडती, प्ररि से तनिक न डरती
 दल के दल सेना सँवारती,
 घर, घाँगन, जनपथ बुहारती !

देखो वह बल्मीकि । सुषर,
 उसके भीतर हैं डुग, नगर !

अद्भुत उसकी निर्माण-कला,
कोई शिल्पी क्या कहे भला ।

उसमे हैं सोध, घाम, जनपथ,
आंगन, गो गृह भण्डार अकथ,
हैं डिम्ब सध, वर शिविर रचित,
डयोढी बह, राजमाग विस्तृत ।

चीटी है प्राणी सामाजिक,
वह श्रमजीवी, वह सुनागरिक ।

देला चीटी को ?

उसके जी को ?

भूरे बालो की-सी कतरन,
छिपा नही उसका छोटापन,
वह समस्त पृथ्वी पर निभय
विचरण करती, श्रम मे त मय,
वह जीवन की चिनगी अक्षय ।
वह भी क्या देही है तिल सी ?
प्राणो की रिलमिल भिलमिल सी ।
दिन भर मे वह मीलो चलती,
अथक, काय से कभी न टलती,
वह भी क्या शरीर से रहती ?
वह कण, अणु, परमाणु ?
चिर सत्रिय वह, नही स्थाणु ।

हा मानव ।

दह तुम्हारे ही है, रे शव ।

तन की चिता मे घुल निशिदिन

देह मात्र रह गये, दबा तिन ।

प्राणि प्रवर

हो गये निछावर

अचिर धूलि पर ।।

निद्रा, भय, मथुनाहार

—ये पशु लिप्साएँ चार—

हुईं तुम्हें सवस्व सार ?

धिक् मथुन - आहार - यत्र ।

क्या इही बालुका - भीतो पर

रचने जात हो भव्य, अमर

तुम जन ममाज का नव्य तत्र ?

मिली यही मानव म क्षमता ?

पशु पक्षी, पुष्पो से समता ?

मानवता पशुता समान है ?

प्राणिसास्त्र देता प्रमाण है ?

बाह्य नही, आंतरिक साम्य

जीवो स मानव को प्रवाम्य ।

मानव को ध्यान चाहिए,
 ससृष्टि, आत्मोदरप चाहिए,
 बाह्य विधान उम है बंधन
 यदि न साम्य उनम अनरतम—
 मूल्य न उनका चीटी के सम
 व है जड़, चीटी है धनन ।
 जीरित चीटी, जीवन - वाह्य,
 मानव जीवन वा वर नायक,
 वह स्व तत्र वह आत्म विधायक ।

× ×

पूर्ण तत्र मानव, वह ईश्वर,
 मानव का विधि उससे भीतर ।

पतझर

रिक्त हो रही आज डालियाँ,—डरो न विचित्,
 रक्त पूण, मासल हागी फिर, जीवन रजित ।
 जमशील है मरण धमर मर मर कर जीवन,
 भरता नित प्राचीन, पल्लवित होता नूतन ।

पतझर यह, मानव जीवा म धाया पतझर,
 आज युगो के बाद हा रहा नया युगांतर ।
 वीत गये बहु हिम, बर्षतिप, रिभव पराभव,
 जग जीवन मे फिर वसत आने को धमिनव ।

भरते हो, भरने दा पत्ते,—डरो न विचित्,
 नवल मुकुल मजरियो स भव हागा शोभित ।
 सदियो म धाया मान जग में यह पतझर,
 सदियो तक भोगोने नव मधु का र्बभव वर ।

शिल्पो

इस क्षुद्र लेखनी स केवल करता मैं छाया लोक सजन ?
 पैदा हो मरते जहाँ भाव, बुदबुद विचार औ स्वप्न सधन ?
 निर्माण कर रहे वे जग का जा जोड इट, चूना, पत्थर,
 जो बना हथोडे, धन, क्षण क्षण हैं बना रहे जीवन का घर ?
 जो बठिन हलो की नोको म धविराम लिख रहे धरती पर ?
 जो उपजात फल, फूल, अन्न, जिन पर मानव जीवन निर्भर ?
 इस धमर लेखनी से प्रतिक्षण मैं करता मधुर धमृत धषण,
 जिससे मिटटी के पुतलो मे भर जाते प्राण, धमर जीवन ।
 निर्माण कर रहा है जग का मैं जोड जोड मनुजी के मन
 मैं वाट वाट बटु घुणा कलह रचता आत्मा का मनोभवन ।

खर-कोमल शब्दों को चुन-चुन मैं लिखता जन जन के मन पर,—
 मानव आत्मा का खाद्य प्रेम जिस पर है जग जीवन निभर !
 मैं जग जीवन का शिल्पी हूँ जीवित मेरी वाणी के स्वर,
 मैं मास-व्यड पर जन मन के मुद्रित करता हू सत्य अमर !

दो लडके

मेरे आंगन में, (टीले पर है मेरा घर)
 दा छोटे से लडके आ जाते हैं अक्सर !
 नगे तन, गदबदे, सावले, सहज छवीले,
 मिट्टी के मटमैले पुतले,—पर फुर्तले !

जल्दी से, टीले के नीचे, उधर उतरकर
 वे चुन ले जाते कूड़े से निधिया सुदर,—
 सिगरेट के खाली डिब्बे, पानी चमकीली
 फीतो के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली

मासिक पत्रों के कवरो की, श्री' बदर से
 क्लिककारी भरते हैं, खुश हो-हा अदर से !
 दोड़ पार आगन के फिर हो जाते आभल
 वे नाटे छ-सात साल के लडके मासल !

सुदर लगती नमन देह, मोहती नयन मन,
 मानव के नात उर में भरता अपनापन !
 मानव के बालक हैं य पासी के बच्चे,
 रोम-रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे !

अस्थि मास के इन जीवों का ही यह जग घर,
 आत्मा का अधिवास न यह, वह सूक्ष्म, अनश्वर !
 'योछावर है आत्मा नश्वर रक्त-मास पर,
 जग का अधिकारी है वह, जो है दुबलतर !

बहिन, बाबू, उत्का, भ्रमा की भीषण भू पर
 कैम रह सकता है कोमल मनुज कलवर ?
 निष्ठुर है जड प्रकृति, सहज भगुर जीवित जन,
 मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन !

क्यों न एक हो मानव मानव सभी परस्पर
 मानवता निर्माण करें जग म लोकोत्तर ?
 जीवन का प्रासाद उठे भू पर गौरवमय,
 मानव का साम्राज्य बने,—मानव हित निश्चय !

जीवन की क्षण धूलि रह सके जहा सुरक्षित
 रक्त मास की इच्छाएँ जन की हो पूरित !
 —मनुज प्रेम से जहाँ रह सकें,—मानव ईश्वर !
 और कौन-सा स्वर्ग चाहिए तुम्हें धरा पर ?

द्वाभा वा ईपत उज्ज्वल कोमल तम धीरे धिर कर
 दश्य पटी को बना रहा गम्भीर, गाढ रंग भर भर !
 मधुर प्राकृतिक सुपमा यह भरती विपाद है मन मे,
 मानव की जीवित सुदरता नहीं प्रकृति दशन म !
 पूण हुई मानव अगो मे सुदरता नमगिक
 सत ऊपा सध्या स निमित्त नारी प्रतिमा स्वर्गिक !
 भिन - भिन बह रही आज नर नारी जीवन धारा,
 युग - युग के संकत - कदम से रूढ,—छिन सुख सारा !

गगा का प्रभात

गलित ताम्र भव मकुटि मात्र रवि
 रहा क्षितिज स देख,
 गगा के नभनील निकप पर
 पडी स्वण की रेख !
 आर पार फले जल म
 घुल कर कोमल आलोक
 कोमलतम बन निखर रहा
 लगता जग अखिल असोक !

नव विरणा न विश्वप्राण म
 किया पुलक सचार
 ज्योति जडित बालुका पुलिन
 हो उठा सजीव अपार !
 सिहर अमर जीवन कम्पन स
 खिल खिल अपन आप,
 केवल लहराने का लहराता
 लघु लहर बलाप !

सजन शीलता स अपनी ही
 हा ज्या अवश अकाम—
 निरुद्देश्य जीवन धारा
 बहती जाती अविराम !
 दख रहा अनिमेष—हो गया
 स्थिर, निश्चल, सरिता जल,
 बहता है मैं, बहते तट,
 बहते तर क्षितिज, अवनित तल !

यह विराट भूतो का भव
 चिर जीवन से अनुप्राणित,
 विविध विरोधी तत्वो के
 सघपण स सचानित !

निज जीवन के हित ध्वगणित
 प्राणी हैं इसके आधित,
 मानव इसका शासक,—आतप,
 अनिल, धन, जल शासित !

मानव - जीवन, प्रकृति - सरणि मे
 जड विरोध कुछ निश्चित,
 विजित प्रकृति को वर, उसने की
 विश्व सभ्यता स्थापित !
 देश, काल, स्थिति से मानवता
 रही सदा ही बाधित,
 देश, काल, स्थिति को बदा म कर
 करना है परिचालित !

धुंध व्यक्ति को विकसित होकर
 बनना भव जन - मानव,
 सामूहिक मानव को निर्मित
 करनी भव सस्कृति नव !
 मानवता के युग प्रभात मे
 मानव - जीवन धारा
 मुक्त भ्रवाघ वहे, मानव जग
 सुख स्वर्णिम हो सारा !

मूल्यांकन

आज सत्य, शिव, सुंदर करता
 नहीं हृदय आकर्षित,
 सम्म, सिष्ट श्री' सस्कृत लगते
 मन को केवल कुत्सित !
 सस्कृति, कला, सदाचारो स
 भव - मानवता पीडित,
 स्वर्ण - पीजडे मे बंदी है
 मानव आत्मा निश्चित !

आज असुंदर लगते सुंदर
 प्रिय पीलित, शोषित जन
 जीवन के दैत्या से जजर
 मानव - मुख हुरता मन !
 मूढ, असम्प, उपक्षित, दूषित
 भू के उपकारक,
 धामिन, उपदेशक पण्डित,
 दानी है लोव - प्रतारक !

धम नीति श्री' सदाचार वा
 मूल्यांकन है जन हित,

सत्य नहीं वह, जनता से जो
 नहीं प्राण - सम्बन्धित ।
 आज सत्य, शिव, सुन्दर केवल
 वर्गों में हैं सीमित,
 ऊर्ध्वमूल सस्कृति का होना
 अधोमूल से निश्चित ।

उद्बोधन

इस विश्वी जगती में कुत्सित
 अंतर चितवन से चुन चुनवर
 सार भाग जीवन का सुन्दर
 मानव । भावी मानव के हित
 जीवन पथ कर जाओ ज्योतित ।
 अक्षय, शुद्ध, अपाप विद्ध जो
 मानव उर का सत्य अपरिमित
 उस रूप जग में कर स्थापित
 भव जीवन कर जाओ निमित्त ।
 क्षुद्र, घणित, भव - भेद - जनित
 जा, उस मिटा, भव-सघ भाव भर
 देश, काल औ' स्थिति के ऊपर
 मानवता को वरो प्रतिष्ठित ।

इस कुरूप जगती में कुत्सित
 अंतर - बाह्य - प्रकृति पर पा जय,
 नव विज्ञान ज्ञान कर सचय
 मानव । भावी मानव के हित
 नव सस्कृति कर जाओ निमित्त ।

खोलो

रुद्ध हृदय के द्वार
 खोलो फिर इस बार ।
 मुक्त निखिल मानवता हो,
 जीवन सौंदर्य प्रसार,—
 खोलो फिर इस बार ।
 युग - युग के जड़ अघकार में
 बंदी जन - ससार
 रुद्धि - पाश में बंधी मनुजता
 करती पशु - चीत्कार ।—
 खोलो फिर इस बार ।

निमम कर आघात मम में
 निष्ठुर तडित प्रहार

चूण करो गत सम्भारा का,
 ता जन प्राण उबार !—
 मोसो फिर इस बार !

गूज उठे जन - जन म जीवन
 उर म प्रणम पुशार,
 पुन पन्लवित हा मानव-जग,
 हो वसन्त, पतभार !—
 साला फिर इस बार !

माक्स के प्रति

दत्तवधा, वीरो की गाथा, सत्य, नही इतिहास,
 सम्राटा की विजय लालसा, ललना भुबुटि - विलास,
 देव नियति का निमम श्रीडा चम्र न वह उच्छ्वल
 धर्मा घता, नीति, मस्कृति का ही न मात्र समर स्थल !

साक्षी ह इतिहास, किया तुमन दुदुभि से घोपित,—
 प्रकृति विजिन कर, मानव न का विश्व सम्यता स्थापित !

विकसित हो बदले जब जब जीवनोपाय के साधन,
 युग बदले, शासन बदल, कर गत सम्यता समापन !
 सामाजिक मम्ब घ बने नव, धय भित्ति पर नूतन
 नव विचार नव रीति नीति, नव नियम, भाव, नव दगन !

साक्षी है इतिहास, धाज हाने का पुन युगान्तर
 श्रमिको का धब शासन होगा उत्पादन यन्त्रो पर !

वग हीन सामाजिकता देगी सबका सम साधन,
 पूरित हागे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन !
 दिग दिग तम व्याप्त निखिल युग युग का चिर गौरव हर,
 जन मस्कृति का नव विराट प्रासाद उठेगा भू पर !

धय माक्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर,
 तुम त्रिनन के पान चक्षु - से प्रकट हुए प्रलयकर !

भूत दर्शन

बहुता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वावेपण—
 भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दपण !

स्थूल सत्य आधार सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन
 बाह्य विवतन से होता युगपत अन्तर परिवतन !

राष्ट्र, वग, आदश, धम, गत रीति नीति श्रौं दशन
 स्वण पाश हैं मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन !

दगन युग का अत अत विज्ञाना का सधपण,
 धब दशन विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण !

नवीन्भूत इतिहास मूल सश्रिय, सवरण, जड चेतन
इह तत्र स अभिव्यक्ति पाता युग-युग म नूतन ।

धर्म धाज साम्राज्यवाद, धनपति बगो का शासन,
प्रस्तर युग की जीण सम्यता मरणासन, समापन ।

साम्यवाद के साथ स्वण युग करता मधुर पदापण,
मुक्त नितिध मानवता करती मानव का अभिवादन ।

साम्राज्यवाद

परिवर्तन ही जग जीवा का निमग चिरन्तन, दुजय
साधी है इतिहास युग का प्रत्यावतन अभिनय ।

मुक्ति का बे, वृत्तपति, सामन्त, महता के वभव क्षण
बिता गय बहु राज सत्र,—सागर मे जमा बुदबुद वण ।
रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनो म शासन
पूजीवाद निगा भी है होन को धाज समापन ।

बिबिध ज्ञान, विज्ञान, बना, यत्रा का भ्रदभूत वीरल
जग को दे बहु जीवन साधन, वाण, रश्मि, विद्युत बल,
मरणांमुख साम्राज्यवाद पर वहि और विष वषण,
अन्तिम रणको है सचेष्ट, रच निज विनाश आयोजन ।

विश्व क्षितिज मे धिरे पराभव के हैं मेघ भयकर,
नव युग का सूत्र है निश्चय यह ताण्डव प्रलयकर ।
जन युग की स्पर्णम किरणो मे होगी भू आलोकित,
नव ससृति के नव प्ररोह होगे शोणित स सिंचित ।।

समाजवाद-गांधीवाद

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान
अर्थशास्त्र और राजनीतिगत विवाद एतिहासिक विज्ञान ।

साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव जीवन के दैय दुःख म किया मनुजता का परिचाण ।
अन्तर्मुक्त अद्वैत पडा था युग-युग से निष्क्रिय, निष्प्राण,
जग म उस प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु विधान ।

गांधीवाद जगत म आया ले मानवता का नव मान,
सत्य अहिंसा स मनुजोचित नव सस्कृति करने निर्माण ।
गांधीवाद हमे जीवन पर देता अतगत त्रिंशाम,
मानव की नि सीम शक्ति का मिलता उसम चिर धामान ।

व्यक्ति पूण बन, जग जीवन मे भर मरना है नूतन प्राण,
विवर्तित मनुष्यत्व कर सक्ता पशुता म जन का वपाण ।

मनुष्यत्व का तत्व सिद्धांत निश्चय हमने गांधीवाद, सामूहिक जीवन विनास की साम्य योजना है अविवाद ।

सकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति

हाड मास का आज बनाओये तुम मनुज समाज ?
 हाथ पांव सगठित चलावेंगे जग जीवन काज ।
 दया द्रवित हो गये देव दारिद्र्य असख्य तनो का ?
 अब दुहरा दारिद्र्य उहे दोगे निरुपाय मनो का ?
 आत्मवाद पर हँसते हा भौतिकता का रट नाम ?
 मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
 वस्तुवाद ही सत्य, मया मिद्वानवाद, प्रादर्श ?
 बाह्य परिस्थिति पर आश्रित अंतर जीवन उत्पन्न ?
 मानव ! कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है मूल ?
 सरिता का जल मया, सत्य केवल उसके दो कूल ?
 आत्मा श्री' मूता म स्थापित करता कौन समत्व ?
 बहिरंतर, आत्मा मूता से है अतीत वह तत्व ।
 भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दा कूल,
 व्यक्ति विश्व से, स्थूल-सूक्ष्म से परे 'सत्य के मूल ।

घनपति

वे नशस हैं वे जन के श्रमबल स पोषित,
 दुहरे घनी, जोक जग वे, मू जिनमे शोषित ।
 नहीं जिह करनी श्रम मे जीविका उपाजित,
 नैतिकता स भी रहते जो अत अपरिचित ।
 शय्या की त्रीडा क दुक है जिनको नारी,
 अहमय वे, मूट, श्रमबल के व्यभिचारी ।
 सुरागना, सम्पदा, सुराश्री से ससवित ।
 नर पशु वे मू भार मनुजता जिनसे लज्जित ।
 दर्पा हठी निरकुश निमम, वलुपित, कुत्सित
 गत सस्कृति के गरल लोक जीवन जिनसे मृत ।
 जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
 अब न प्रयोजन उनका अतिम हैं उनके क्षण ।

मध्य वर्ग

मस्कृति का वह दाम विविध विश्वाम विधायक,
 विविल नान विज्ञान नीनिधा का उनायक ।

उच्च वग की सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
प्रभु सेवक, जन वक्क वह, निज वग प्रतापक ।

भोग शील, धनिको का स्पर्धी, जीवन प्रिय प्रति,
आत्म वृद्ध, सकीर्ण हृदय, तार्किक, व्यापक मति ।
पाप पुण्य सन्त्रस्त, अस्थियो ता बहु कोमल,
वाक् कुशल, धी दर्पी, प्रति विवक से निबल ।

मध्यवर्गे का मानव, वह परिजन पत्नी प्रिय,
पशुकायी, व्यक्तित्व प्रसारक, पर हित निष्क्रिय ।
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिको का हो अभिभावक,
नव युग का वाहक हो नेता, लोक प्रभावक ।

कृपक

युग - युग का वह भारवाह आवटि नत मस्तक,
निखिल सम्य समार पीठ का उसके स्फोटक ।
वज्र मूढ, जड मूत, हठी, वृष बाधक कपक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रुढियो का चिर रक्षक ।

कर जजर, ऋण प्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति मू धन,
निखिल दैय, दुर्भाग्य, दुरित, दुःख का जो कारण,
वह कुबेर निधि उम, -स्वेद सिंचित जिसके वण,
हय शोक की स्मृति के बीते जहाँ वष मण ।

विश्व विवतनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल
वही खेत, गह द्वार, वही वृष, हँसिया श्री हल ।
स्थानर स्थितियो का शिशु, स्थावर, स्थाणु कृपीयल,
दीधमूत्र, अति दुराग्रही, साक्षर श्री वृषल ।

है पुनीत सम्पत्ति उमे दैवी निधि निश्चित
सततवित गो वृषभ, गुल्म, वृण, तरुचिर परिचित ।
वह सकीर्ण समूह - कृपण, स्वाश्रित, पर-पीडित,
अति निजस्व प्रिय, गोपित, नृण्डित, दन्तित शुषादित ।

युग - युग से निसर्ग, स्वीय श्रमवत् से जीवित,
विश्व प्रगति अनभिज्ञ, वृषन्तम मे निज सीमित ।
कपक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृपि काय-कल्प, अयथा कृपण मृत ।

श्रमजीवी

वह पवित्र है वह जग के कर्म म गोपित,
वह निर्माता श्रेणि, वग धन, बल मे शोषित ।
मूढ, अनिश्चित, -सम्य शिक्षित । वह शिक्षित,
विश्व उपेक्षित, -गिष्ट सम्बृतो मे मनुजोचित ।

दैय कष्ट कृण्डित, -गुम्बर है उगका धानन
गदे गात बसा है पावन श्रम का जीवन ।

मनुष्यत्व का तत्त्व गिनाता निरुपय हमरो गांधीयान्,
सामूहिक जीवन विनाम की साम्य योजना है प्रथिवाद ।

सकीर्ण भौतिकवादियो के प्रति

हाड मास का भाज बनाओय तुम मनुज समाज ?
हाथ पांव सगटिन चलवेंगे जग जीजा बाज ।

दया द्रवित हो गय देग दारिद्र्य भ्रतम्प तनो का ?
भय दुहरा दारिद्र्य उह दोग निरुपय मनो का ?

भारमवाद पर हँसत हा भौतिकता का रट नाम ?
मानयता की भूति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?

वस्तुवाद ही सत्य, मूपा मिडानवान्, भादश ?
बाह्य परिस्थिति पर भाश्रित भ्रतर जीवा उत्तर ?

मानव ! कभी भूत न नी क्या सुपर सकी है मूल ?
सरिता का जल मपा, सत्य केवल उसके दो बूल ?

भारमा भौ भूता म स्यापिन करता कौन समत्व ?
बहिरतर, भारमा भूता से है भतीत वह तत्व !

भौतिकता, भाध्यात्मिकता केवल उसके दा बूल,
व्यक्ति विश्व स, स्थूल सूक्ष्म से परे सत्य के मूल ।

धनपति

वे नशस हैं वजन के श्रमचल म पोषित,
दुहरे धनी जाक जग के मू जिनम शोषित ।
नहीं जिहें करनी श्रम स जीविका उपाजित,
नैतिकता स भी रहत जो भ्रत भ्रपरिचित ।

शय्या की त्रीडा कदुव है जिनका नारी,
अहमय वे मूल, श्रयबल के व्यभिचारी ।
सुरागना, सम्पदा, सुराभो स समवित ।
नर पशु वे मू भार मनुजता जिनम सज्जित ।

दर्पो, हठी निरकुश, निमम कलुषित, कुत्सित,
गत सस्कृति के गरल, सोन जीवन जिनसे मृत ।
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
भ्रव न प्रयोजन उनका, भ्रतिम हैं उनके क्षण ।

मध्य वर्ग

सस्कृति का वह दास विविध त्रिस्वाम त्रिधाया,
निखिल ज्ञान, विज्ञान नीनियो का उतायक ।

उच्च वग वी सुविधा का शास्त्रोक्त प्रचारक,
 प्रभु सेवक, जन वचक वह, निज वग प्रतारक ।
 भोग शील, धनित्रो का स्पर्धी, जीवन प्रिय प्रति,
 आत्म वृद्ध, सतीण हृदय, तार्किक, व्यापक मति ।
 पाप पुण्य सत्रस्त, अस्थियो का बहु कोमल,
 वाक् कुशल, धी दर्पी, प्रति विवेक से निबल ।
 मध्यवग का मानव, वह परिजन पत्नी-प्रिय,
 यशकामी, व्यक्तिव प्रसारक, पर हित निष्क्रिय ।
 श्रमजीवी वह, यदि श्रमिका का ही अभिभावक,
 नव युग का वाहक हो नेता, लोक प्रभावक ।

कृषक

युग - युग का वह भारवाह भावटि नत मस्तक,
 निखिल सम्य ससार पीठ का उसके स्फोटक ।
 वच्य मूढ, जड मूत, हठी, वृष बाधक कपक,
 ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रुडियो का चिर रक्षक ।
 कर जजर, ऋणग्रस्त, स्तल्प पैत्रिक स्मृति मू धन,
 निखिल दैय, दुर्भाग्य दुरित, दुस्त का जो कारण,
 वह कुवेर निधि उमे,—स्वेद सिंचित जिसके वण,
 हय शोक की स्मृति के बीते जहाँ वप मण ।
 विश्व विवतनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल
 वही खेत, गह द्वार, वही वप, हसिया औ' हल ।
 स्यावर स्थितियो का शिशु स्यावर, स्थाणु वृषीबल,
 दीघसूत्र, प्रति दुराग्रही, साशक औ वृषल ।
 है पुनीत सम्पत्ति उसे दैयी निधि निश्चित
 सततवित गो वृषभ, गुल्म, वृण, तरुचिर परिचित ।
 वह सकीण, समूह - वृषण, स्वाश्रित, पर-पीडित,
 प्रति निजस्व प्रिय, शोपित, लुण्ठित, दलित क्षुधादित ।
 युग - युग से नि सग स्वीय श्रमबल से जीवित,
 विश्व प्रगति अनभिज्ञ, वृष-तम मे निज सीमित,
 कपर् का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित
 सामूहिक वृषि काय कल्प, अयया वृषक मृत ।

श्रमजीवी

वह पवित्र है वह जग के कदम स पोषित
 वह निर्माता श्रेणि, वग, धन, बल से शोषित ।
 मूढ, अशिक्षित,—सम्य शिक्षितो से वह शिक्षित,
 विश्व उपेक्षित,—शिष्ट ससृष्टो मे मनुजोचित ।
 दैय कष्ट लुण्ठित—सु दर है उसका भ्रानन,
 गदे गात वसन हो पावन श्रम का जीका ।

म्नेह साम्य, सौहाद्रपूण तप से उमका मन,
वह सगठित करेगा भावी भव का शासन !

मूल प्यास से पीडित उसकी भूरी धावृति
स्पष्ट क्या कहती—कैसी इस युग की सस्कृति !
वह पशु से भी घृणित मनुज—मानव की है वृति !
जिसके श्रम से सिची समृद्धा की पृथु सम्पति !

मोह सम्यदा अधिकारा का उम न विचित,
काय कुशल यत्री वह, श्रम पट्टता से जीवित !
शीत ताप श्रौ' क्षुधा तपा मे सदा समयित,
दढ चरित्र वह, दुग सहिष्णु, ध्रुव धीर, अभय चित !

लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत,
नव्य सभ्यता का उनायक, शासक, शासित !
चिर पवित्र वह भय अयाय, घृणा से पालित,
जीवन का शिल्पी,—पावन श्रम मे प्रक्षालित !

घन नाद

ठड ठड ठन !

लौह नाद से ठोक पीट घन
निमित्त करता श्रमिको का मन,
ठड ठड ठन !

'कम क्लिष्ट मानव भव जीवन,
श्रम ही जग का शिल्पि चिर-तन,'
कठिन सत्य जीवन का क्षण क्षण
घोषित करता घन वज्र स्वन—
'व्यथ विचारो का सघषण,
अविरत श्रम ही जीवन साधन,
लौह बाण्ड मय, रक्त मास मय,
वस्तु रूप ही सत्य चिर-तन !,
ठड् ठड् ठन !

अग्नि स्फुलिगो का कर चुम्बन
जाग्रत करता दिग दिगत घन,—
'जागो, श्रमिको, बनो सचेतन,
मू के अधिकारी है श्रमजन !
मास पेशियाँ हूण्ट, पुण्ट, घन,
बटो शिराएँ, श्रम-बलिष्ठ तन,
मू का भव्य करेगे शासन,
चिर लावण्यपूण श्रम के वण !'
ठड ठड ठन !

कर्म का मन

भव या जीवन मन का जीवन,
 कार्यार्थी को है मन बधन ।
 भवचेतन मन से होता रे,
 चेतन मन सन्तत संचालित,
 मन के दपण मे भव की छवि,
 रजित होकर होती बिम्बित ।
 स्प-जगत की प्रतिछाया यह
 भाव-जगत मानस का निश्चित,
 गत युग का मृत सगुण भाज
 मानव मन की गति करता कुण्ठित ।
 भ्रत कर्म को प्रथम स्थान दो,
 भाव जगत कर्मों से निर्मित ।
 निखिल विचार, विवेक, तक,
 भव रूप कर्म को करो समर्पित !
 प्रथम कर्म, कहता जन दशन,
 पीछे रे सिद्धांत, मन, वचन ।

रूप का मन

निर्मित करो रूप का मन,—
 रूप का मन ।

भव सत्य पीडित मानव
 मत धरो स्वप्न के चरण,
 वाष्प लोक के योग्य तुम्हारा,
 भाव सत्य विश्लेषण ।
 रूप जगत यह रूप कर्म कर,
 रूप सत्य कर चित्तन,
 रूप करो निर्माण विश्व का,
 भरो रूप भव से मन ।
 भाव भीत तुम, गत भावो के
 पहने स्वणिम बधन,
 रूप हीन मत भावो को
 देते हो सत्य चिरतन ।
 दश काल से सीमित
 गत सस्कृतियों का सघषण
 नव्य रूप कर मुक्त
 भव्य भव भाव करेगा धारण ।
 निर्मित करो रूप का नव मन
 रूप तत्व कर दशन,

रूप भाव का मूल
रूप को भाव करो सब भ्रमण ।

मुक्त रूप का तत्व
वनेगा जगती का नव जीवन,
रूप मुक्ति ही भाव मुक्ति ।
यह तात्त्विक सत्यावेपण ।

रूप पूजन

करो रूप पूजन, भव मानव । भाव पुष्प कर भ्रमण,
धरो रूप चरणो मे तव नव तन, मन, जीवन, यौवन ।
निखिल शक्ति बंध रूप पाश मे करती ससृति नतन,
रूप परिधि मे मुक्त प्रकाशित शत शत रवि, शशि, उडुगन ।
आज अलकृत करो धरा को रूप रग भर नूतन,
युग युग की चिर भाव राशि के पहना वसन, विभूषण ।
प्रकृति रूप - इच्छा से उमद करती सजन सनातन,
रूप सृष्टि यह भावो को दो मधुर रूप परिभ्रमण ।
सच है, जग जीवन विकास मे आते ऐसे युग क्षण,
जब मानव इस रूप जगत वा करता सूक्ष्म निरूपण ।
वह विश्लेषण युग देता निर्माण शक्ति फिर नूतन,
अंतर जग का बहिर्जगत मे होता जब परिवतन ।
आज युगांतर होने को है जगती तल मे निश्चित,
नव मानवता की किरणो से विश्व क्षितिज है ज्योतित ।
नव्य रूप से करो, भव्य मानव । स्वरूप जग निर्मित,
अखिल अवनि खिल उठे रूप मानवता से हो कुसुमित ।
वरो रूप को, हे नव मानव । रच भव प्रतिमा जीवित,
अग अग मे देश दश की भाव राशि घर अर्पित ।
जन जन की विच्छिन्न शक्ति हो जग जीवन मे विकसित,
युग युग की अतप्त आकाश उर उर की परिपूरित ।

रूप निर्माण

रम्य रूप निर्माण करो हे, रम्य वस्त्र परिधान,
रम्य बनाओ गह जनपथ को, रम्य नगर, जनस्थान ।
रम्य सृष्टि हो रूप जगत की रम्य धरा शृंगार,
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु वा, होंगे रम्य विचार ।
रम्य रूप हो मानवता का, अखिल मनोरम वेश,
भाषा रम्य मनुजता का मन बहन करे निशेष ।
भेद जनित माया, माया का रूप करो विघास,
मानव सन्धृति मे विरोध दूवें, हो ऐक्य प्रकाश ।
रूप रचो भव मानवता का, रूप भाव आधार,
रम्य रूप मानव समूह हा । जीवन रूप विचार ।

भूत जगत

जड चेतन हैं एक नियम के वश परिचालित,
माया का है भेद, उभय हैं अयो-याश्रित ।
भूत जगत की पावनता को करो न कल्पित,
निखिल जीव जग की सत्ता इससे परिपालित ।

पावन हो भव धाम,—अनिल जल, स्थल, नभ पावन,
पावन हो गह, वसन,—विमूषण, भाजन पावन ।
हृदय बुद्धि हो पावन, देह, गिरा, मन पावन,
पावन दिशि पल, खाद्य द्वास, भव जीवन पावन ।
सुंदर ही पावन, ससृष्ट ही पावन निश्चय,
सुंदर हो मू का मुख, ससृष्ट जीवन सचय ।
सुंदर भव प्रालय, ससृष्ट जड चेतन समुदय,
सुंदर नव मानव, ससृष्ट भव-मानव की जय ।

जीवन मास

मानवता का रक्त मास जग जीवन स चिर प्रोत प्रोत,
निखिल विचारो का बहता इस अरुण रुधिर मे जीवित स्रोत ।
युग युग की चेतना अमर, दिशि दिशि के जीवन का उल्लास,
रक्त मास म देश देश की ससृष्टि का शाश्वत इतिहास ।
कहाँ खोजने जाते हो सुंदरता श्री' आनंद अपार ?
इस मासलता मे है मूर्तित अखिल भावनाओं का सार ।
मास नहीं नश्वर रज, ज्योतिष मास नहीं जड जीव विलास,
अंतर बाह्य चतुर्दिक है तम, रूप मास है अमर प्रकाश ।
शत वसंत, शत श्रौटम, शरद का मास बीज मे है आवास,
ईश्वर है यह मास, पूण यह, इसका होता नहीं विनाश ।
मास मुक्ति है भाव मुक्ति श्री' भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मास मुक्ति ही लोक मुक्ति भव जीवन का जो चरम विकास ।
मासो का है मास मानुषी मास, करो इसका सम्मान,
निमित्त करो मास का जीवन, जीवन मास करो निर्माण ।

मानव पशु

मानव के पशु के प्रति
हो उदार नव ससृष्टि ।
युग युग से रच शत शत नतिक बंधन
बांध दिया मानव ने पीडित पशु तन ।
विद्रोही हो उठा आज पशु दपित,
वह न रहगा अब नव युग मे गहित ।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताडन,
रीति नीतियो का गत निमम शासन ।

वह भी क्या मानव जीवन का लाछन,
वह, मानव के देव भाव का वाहन !

नहीं रहे जीवनोपाय तब विवसित,
जीवन यापन कर न सके सब ह्छिन !
नैतिक सीमाएँ बहु धर निर्धारित,
जीवन इच्छा, की जन ने मर्यादित !

नू मानव के श्रेयस् के हित निश्चित
पशु ने अपनी बलि दी, देवों के हित !
जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत
गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित !
देव और पशु, भावों में जो सीमित
युग युग में होते परिवर्तित, अवसित !
मानव पशु ने किया आज भव अजित
मानव देव हुआ अब वह सम्मानित !

मानव के पशु के प्रति
मध्य वग की हो रति !

नारी

मुक्त करो नारी को, मानव ! चिर बदिनि नारी को,
युग युग की बबर कारा से जननि, सखी, प्यारी को !
छिन करो सब स्वर्ण पाश उसके कोमल तन मन के,
वे आभूषण नहीं, दाम उसके बदी जीवन के !

पुरुष वासना की सीमा से पीडित - नारी जीवन,
नर नारी का तुच्छ भेद है केवल युग विभाजन !
उसे मानवी का गौरव दे पूण सख दो नूतन,
उसका मुख जग का प्रकाश हो उठे अथ अवगुणन !

योनि मात्र रह गयी मानवी निज आत्मा कर अपण,
पुरुष प्रकृति की पशुता का पहने नैतिक आभूषण !
नष्ट हो गयी उसकी आत्मा, त्वचा रह गयी पावन,
युग युग से अवगुणित गहिणी सहती पशु के बधन !

खोली हे मेखला युगों की कटि प्रदेश से, तन से !
अमर प्रेम हो बधन उसका, वह पवित्र हो मन से !
अगो की अविकच इच्छाएँ रहें न जीवन पातक,
वे विकास में बनें सहायक, होवें प्रेम प्रकाशक !

क्षुधा तृप्ता, ही के समान युग्मेच्छा प्रकृति प्रवर्तित,
कामेच्छा प्रेमेच्छा बनकर ही जाती मनुजोचित !
क्षुधा कामवश गत युग ने पशु बल से कर जन धासित
जीवन के उपकरण सदृश नारी भी कर ली अधिकृत !

मुक्त करो जीवन सगिनि को, जननि देवि को आदत,
जग जीवन में मानव के सग ही मानवी प्रतिष्ठित !

प्रम स्वग हो घरा, मधुर नारी महिमा से मण्डित,
नारी मुख की नव किरणा स युग प्रभात हो ज्योतित !

नर की छाया

पुरुषो ही की छाँवो स नित देख दख अपना तन,
पुरुषो ही के भावो से अपने प्रति भर अपना मन —
तो, अपनी ही चितवन स वह हो उठती है लज्जित,
अपने ही भीतर छिप छिप जग से हो गयी तिरोहित ।
वह नर की छाया नारी । चिर नमित नयन, पद विजडित,
वह चकित, भीत हिरनी सी निज चरण चाप से शकित ।
मानव की चिर सहर्षमिणि, युग युग से मुख अबगुण्डित,
स्थापित घर के कोने मे वह दीप सिखा - सी कम्पित ।
करती वह जीवन यापन युग - युग स पगु - सी पालित,
वदिनी काम वारा की, आदश नीति परिचालित ।।

बन्द तुम्हारे द्वार ?

मुसकाती प्राची व द तुम्हारे द्वार ?
ले किरणा मे ऊपा
जागी सरसी म का हार,
सोयी तुम इस सरोजिनी,
बार ?

नव मधु म, अस्थिर मलयानिल,
भौरो मे गुजार,
विहग कण्ठ मे गान,
मोन पुष्पो मे सौरभ भार,
बार ?

प्राण ! प्रतीक्षा मे प्रकाश
औ' प्रेम बने प्रतिहार ।
पथ दिखलाने को प्रकाश,
तुमसे मिलने को प्यार ।
बार ?

गीत हृष के पख मार
आकाश कर रहे पार,
भेद सवेगी नही हृदय
प्राणा की मम पुकार ।
बार ?

प्राज निछावर सुरभि
खुला जग मे मधु का भण्डार,
दबा सकोगी तुम्ही प्राज
उर म मधु जीवन ज्वार ?
बार ?

सुमन के प्रति

भाव वाणी या रूप, ?
तुम क्या हो चिर मूक सुमन !
किसके प्रतिरूप ?
मौन सुमन !

सुन्दरता से अनिमित्त चितवन
छू कोमल ममस्थल
मूक सत्व के भेद सकल
कह देती, (खुल दल पर दल) —
सहज समझ लेता मन !

विजय रूप की सदा भाव पर,
भाव रूप पर निमर !

में अवाक हूँ तुम्हें देखकर
मौन रूपधर !

रूप नहीं है नश्वर ! —
सत्ता का वह पूण, प्रकृति स्वर,
सुन्दर है वह, अमर !

कवि !

हे राजनीतिविद्, अर्थविज्ञ !
रच शत शत वाद, विवाद, तन्त्र,
परतन्त्र क्रिया तुमने मानव,
तुम बना न सके उसे स्वतन्त्र !
ह दशनन, शत तर्कों से,
सच्छास्त्रों से पा गहन ज्ञान,
तुम भी न दे सके मानव को
उसकी मानवता का प्रमाण !
हे चित्रकार, ले रंग तूलि,
भर रूप रेख, छायाभ अंग,
चित्रित न कर सके मानव में
तुम मानवता के रूप रंग !

गायक पा कोमल, मधुर कण्ठ,
रच वाद्य ताल, भ्रालाप, तान,
मानव उर तुम मानव उर म
लय कर न सके, गामम गान !
हे शिल्पकार वर ! कठिन धातु,
जड प्रस्तर में भर अमर प्राण
दे सके नहीं मानव जग को
तुम मानवता का प्रकृत मान !

कवि, नव युग की चुन भाव राशि,
 नव छन्द, आभरण, रस विधान,
 तुम बन न सकोगे जन मन के
 जाग्रत भावों के गीत यान ?

प्रकाश !

आओ, प्रकाश, इस युग युग के भ्रवगुण्ठन से मुख दिखलाओ,
 आओ है, मानव के घट के पट खोल मधुर श्री बरसाओ !
 आओ, जीवन के आंगन में स्वर्णिम प्रभात जग के लाओ,
 मानव उर के प्रस्तर युग के इस अघ तमस को बिखराओ !
 विज्ञान ज्ञान की शत किरणों जनपथ में बरसाते आओ,
 मुरझाय मानव मुकुलो को छूकर नव छवि में विवसाओ !
 दिशि पल के भेद विभेदों को तुम ढुवा एवता में, आओ,
 नव भूतिमान मानवता बन जन जन के मन में बस जाओ !

आम्र विहग !

हे आम्र - विहग ! —
 तुम ताम्र सुभग
 नव पणों में
 छिपकर, उडले कणों में
 मजरित मधुर
 स्वर ग्राम प्रचुर !

उमुक्त नील
 तुम पख डील,
 उड उड सलील
 हो जात लय
 नि सीम शान्ति में चिर सुखमय,—
 जब नीड - निलय में हृद - हृदय
 हो उठता पीडातुर प्रतिशय !

फिर आम्र विहग !
 छिप ताम्र सुभग
 नव पणों में
 बरसाते आकुल कणों में
 मजरित मधुर
 स्वर - गीत विदुर !

भी प्रसार
 भावना - कल्पना विचार
 नि सीम विरव में छंद अपार
 हो विलीन

गाता नवीन
 मधु के गाने,
 जग मे नव जीवन बरसाने,
 मुरभा मानव - उर विकसाने !
 हे भ्रात्र विहग !
 तुम सुनो सजग,—
 जग का उपवन
 मानव जीवन
 है शिशिर - त्रस्त
 बहु व्याधि त्रस्त !
 मे जीण, क्षीण, चिर दीण, पण
 जो स्रस्त, ध्वस्त, श्री - हत, विवण
 क्षय हो समस्त—
 युग सूय भ्रस्त !
 ये राष्ट्र वग
 बल शक्ति भग,
 बहु जाति - पाति
 कुल वश ख्याति,
 द्रुत हो विनष्ट सब नरक स्वग !
 विश्वास भ्रघ,
 सघप द्रुद्र,
 बहु तकवाद,
 उर के प्रमाद,
 गत रुडि रीति
 मृत घम नीति
 ये है जगती की ईति भीति !

हो भ्रत
 दै य जग के दुरत,
 भावे वसत,
 जीवन दिगत
 फिर से ही स्मित कुसुमित भ्रनन्त !

हो नग्न भग्न
 भ्रानद भग्न,
 सहार श्रात
 निर्माण लग्न !
 सब क्षुधा - क्षुब्ध
 क्षामना लुब्ध
 हो तप्त दप्त
 जग काय लिप्त !
 भ्रजान चूण
 हो ज्ञान पूण,

मानव समूह
 हो एक व्यूह ।
 जग के सब भेद-भाव हो लय,
 जीवन की बाधाएँ हो क्षय,
 जय हो, मानव जीवन की जय ।

उन्मेष

मोन रहेगा ज्ञान,
 स्तब्ध निखिल विज्ञान ।

क्रांति, पालतू पशु - सी होगी शान्त,
 तक बुद्धि के वाद लगेगे भ्रान्त !
 राजनीति भी' अर्थशास्त्र
 होंगे सघष परास्त ।
 धम, नीति, आचार—
 रुधेगी सबकी क्षीण पुकार ।

जीवन के स्वर मे ही प्रकट महान
 फूटेगा जीवन रहस्य का गान !
 क्षुधा तथा भी स्पृहा, काम से ऊपर
 जाति, वग भी' देश, राष्ट्र से उठकर
 जीवित स्वर में, व्यापक जीवन गान
 सद्य करेगा मानव का कल्याण ।

अनुभूति

रक्त - मांस की देह बन गयी जीवन - इच्छा निभर,
 मधुर भावना, मंदिर कल्पना रुधिर - शिराएँ सु दर ।

रिक्त पूण हो, शून्य सब, जीवन स भ्राज गया भर,
 निश्चल मरण स्पृहा स चंचल कोंप कोंप उठता धर धर ।

समस नयन की तारा बन चितवन करता आलोकित ।
 गत अभाव बन गये भाव ही लोक - प्रेम सम्पोषित ।

प्रखिल अमंगल दैत्य मूलकर वर विरोध, विनत - फन,
 मात्र - मुग्ध फणियो - से करते जीवन-स्वर में नतन ।

भव सस्कृति

तुम हरित - कचु,
 सित ज्योति किरण छवि वसना,
 भव सस्कृति की नव प्रतिमा ।

निधन समृद्ध, शासक शासित
 तुमको समान सस्कृत प्राकृत,

गत धर्म वर्म, मृत रूढि रीति तम भ्रशाना,
नव मानवता की महिमा ।

सहार मग्न, शुभ सृजन लग्न,
वर राष्ट्र वग बल भेद भग्न
भरती समत्व जगती मे, तुम दिशि रशाना
नव युग की गौरव गरिमा ।

वर देश काल औ' प्रकृति विजित,
विज्ञान पान इतिहास ग्रथित,
मानव की विश्व विजय स तुम स्मित - दशना
पृथ्वी की स्वग मधुरिमा ।

हरीतिमा

हँसते मू के भ्रंग भ्रंग,
हरित हरित रँग ।

दूर्वा पुलकित भूतल
नबोल्लसित तृण तरु दल
इगित करते खचल
जीवन का जीवित रँग
हरित हरित रँग ।

श्यामल, कोमल, शीतल
लोचन - प्रिय, प्राणोज्वल,
तन पोपक, मन सम्बल,
सजल सिंधु शोभित रँग
हरित हरित रग ।

हरित वसन, तन छवि सित,
जग जीवन प्रतिमा नित
हरती मानव का चित,
भव सस्कृति भावित रँग,
हरित हरित रँग ।

प्रकृति के प्रति

हार गयी तुम
प्रकृति ।

रच निरूपम
मानव-कृति ।

निखिल रूप, रेखा, स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर ।

नातु वण, रस सार,
वने अस्थि, त्वच, रक्त-धार,
कुसुमित अग उभार ।

दुर्निवार यह राग, राग का
रूप करो निर्माण,
वेष्टित करो राग से भव,
हो जन - जीवन कल्याण !

राग साधना

जीवन तन्त्री आज सजाओ
अमर राग तारों से,
गूँज उठें नभ धरा
प्रेम की स्वर्गिक भकारो से !

राग - साधना करो मधुर
उर - उर के अखिल मिला सुर,
प्रतिध्वनित हो राग
हृदय से, रोओ के द्वारो से !

राग विश्व का जीवन,
ससति का है सार सनातन,
अभिव्यक्त हो राग,
भाव, वाणी ओ' आचारो से !
जीवन तन्त्री आज सजाओ
प्रणय राग तारो से !

रूप सत्य

मुझे रूप ही भाता !
प्राण ! रूप ही मेरे उर मे
मधुर भाव बन जाता !
मुझे रूप ही भाता !
जीवन का चिर सत्य
नहीं दे सका मुझे परितोष,
मुझे ज्ञान से वस्तु सुहाती,
सूक्ष्म बीज से कोष !

सच है जीवन के वसन्त मे
रहता है पतझर,
वण गन्धमय कलि कुसुमो का
पर, ऐश्वर्य अपार !

राशि - राशि सौन्दर्य, प्रेम,
आनन्द, गुणो का द्वार,
मुझे सुभाना रूप रग
रखा का यह ससार !

मुझे रूप ही भाता
प्राण ! रूप का सत्य
रूप के भीतर नहीं समाता !
मुझे रूप ही भाता !

मुझे स्वप्न दो

मुझे स्वप्न दो, मुझे स्वप्न दो !
हे जीवन के जागरूक !
जीवन के नव - नव मुझे स्वप्न दो !
स्वप्न - जागरण ही यह जीवन,
स्वप्न - पुलक-स्मित तन, मन, यौवन,
मेरे स्वप्नों के प्रकाश में
जग का अंधकार जाये तो !

वस्तु - ज्ञान से ऊब गया मैं,
सूखे मरु में डूब गया मैं,
मेरे स्वप्नों की छाया में
जग का वस्तु सत्य जाये खो !
शिशिर शयित जग जीवन बन मे
हो पल्लवित स्वप्न नव, क्षण में,
मेरे वार्यों में, वाणी में
नव नव स्वप्नों का गुजन हो !
हे जीवन के जागरूक !
भव जीवन के नव मुझे स्वप्न दो !

मन को स्वप्न

सत्य बनाओ, हे
मेरे मन के स्वप्नों को
सत्य बनाओ !

भ्राज स्वप्न को सत्य,
सत्य को स्वप्न बना नव सृष्टि बसाओ !
निखिल पान को कम,
कम को ज्ञान बना भव मूर्ति सजाओ !
भ्राज विश्व को व्यक्तित,
व्यक्तित को विश्व बना जग-जीवन लाओ !

सत्य बनाओ, हे,
मेरे जीवन - स्वप्नों को
सत्य बनाओ !

भ्राज अखिल विज्ञान ज्ञान को
रूप, गंध, रस में प्रकटाओ !

ताम्र रजत, मरकत, विद्रुम के विविध किसलयों का मधु-भार,
सुंदर सलिल समीर भ्राज, सुंदर लगता नभ का विस्तार,
सुंदर निखिल धरित्री, सुंदर खग-भृग युग्मा का अभिसार !

प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !

मानव उर की आकाशाश्रो का है पर सौंदर्य अपार !

भ्राज बसाऊंगा मैं फिर से घर-घर स्वप्नों का ससार !

मुझे गूँघने दोगे अपनी स्वर्ण रजत बलियों का हार ?

भ्राज रसाल ! ताम्र रसाल !

मधुषो से गुजरित मुझे दोगे न मजरित अपनी डाल ?

भ्राज तुम्हारे भ्रग-भ्रग से फूट रही नव मधु की ज्वाल,
ईश्वर के पर्णों में दिशि दिशि नृत्य कर रहा स्वर्ण सकाल,
मजरियों के मंदिर शरो से जर्जर जड चेतन इस काल,
बीरो की उमद सुगंध पी भ्रघ हुई भीरो की माल !

भ्राज रसाल ! ताम्र रसाल !

कोकिल की आकुल ध्वनि सुन लद उठे पल्लवों से वन शाल,
भ्राज लुभाऊंगा मैं जग को बुन बुन नव स्वप्नों का जाल !

सखे ! मुझे दोगे स्वप्नों से स्वर्ण मजरित अपनी डाल ?

पलाश !

मरकत वन में भ्राज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल
जगा रही उर में आकुल आकाशाश्रो की ज्वाल !

पीपल, चिलबिल, भ्राज, नीम की पल्लव श्री सुकुमार—
तुम्हीं उठाये हो, पर, वसुधा का मधु-यौवन-भार !

वण - वण की हरीतिमा का वन में भरा विकास,
तुम नव मधु की निखिल कामनाश्रो के प्रिय उच्छवास !

शत - शत पुष्पों के रंगों की रत्नच्छटा पलाश !
प्रकट नहीं कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास !

स्वर्ण मजरित भ्राज भ्राज श्रो' रजत ताम्र कचनार,
नील कोकिला की पुकार नव पीत भृग गुजार !

वण स्वरो से मुखर तुम्हारे मौन पुष्प भ्रगार,
यौवन के नव रक्त तेज का जिनमें मंदिर उभार !

हृदय रुधिर ही अर्पित कर मधु को अर्पण श्री शाल !
तुमने जग में भ्राज जला दी दिशि दिशि जीवन ज्वाल !

पलाश के प्रति

प्राप्त नहीं मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास
जो कि तुम्हारी डाल डाल पर करता सहज विलास !
भ्राज प्रलय-ज्वाला में ज्यो गल गये विश्व के पाश
जीवन की हिल्लोल लोल उमड़ी छूने आकाश !

आत्मा की निमीम मुक्ति को
 भव की सीमा में बघवाओ !
 जन की रक्त मास डच्छा को
 मधुर अन्न-फल में उपजाओ !

सत्य बनाओ, हे
 मानव उर के स्वप्नो को
 सत्य बनाओ !

जीवन स्पर्श

क्यों चंचल, व्याकुल जन ?
 फूट रहा मधुवन में जो सौ-दर्यौल्लास,
 बलि कुसुमों में राग रगमय शक्ति विकास,—
 व्याकुल इसीलिए जन जन मन !

दौड़ रही रक्तिम पलाश में जीवन-ज्वाल,
 आन्न मोर में मदिर गंध, तरुणों में तरुण प्रवाल !
 विहग-युग्म हो विह्वल सुख से आप
 पखों से प्रिय पक्ष मिला करते मधु प्रेमालाप !
 अखिल विघ्न, भय, बाधाएँ कर पार
 शीत, ताप, भ्रम के सह बहु वार,
 कौन शक्ति सजती जीवन का वास-ती शृंगार ?

सभी उसी के हेतु विकल मन !
 उसी शक्ति का पाने जीवन स्पर्श
 रोम रोम में भरने विद्युत हर्ष,
 चिर चंचल, व्याकुल जन !

मधु के स्वप्न

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !
 सखे, मुझे दोगे सिद्धर के पुष्पो की ज्वाला का हाम ?
 आज उल्लसित धरा, पल्लवित विटपो में बहु वण विकास,
 पीपल, नीम, अशोक, आन्न से फूट रहा हरिताम ह्लास,
 गीत निरत हैं युवक, नृत्य रत युवती जन स्मित मुख, सविलास,
 फिर भी स्वप्न नहीं आते उड़-उड़ सुख के पखों में पास !

रक्त पलाश ! रक्त पलाश !
 मुझे चाहिए अब जन जन के जीवा में ही नव मधुमास !
 जन जीवन में आज चाहता है पाना जीवन उरलास,
 तुम मुझको दोगे जीवन की ज्वाला का जाज्वल्य प्रवास ?
 प्रिय बचनार ! प्रिय बचनार !
 मुझे बिना पत्रों की पुष्पा की डाली दोगे उपहार ?
 सुदर मधुऋतु सुदर है गुजित दिगन्त का हरित प्रसार,

ताम्र, रजत, मरकत, विद्रुम के विविध किसलयों का मधु-भार,
 सुन्दर सलिल समीर आज, सुन्दर लगता नभ का विस्तार,
 सुन्दर निखिल धरित्री, सुन्दर खग-मृग युग्मों का अभिसार !

प्रिय कचनार ! प्रिय कचनार !
 मानव उर की आकाशाओं का है पर सौन्दर्य अपार !
 आज बसाऊँगा मैं फिर से घर-घर स्वप्नों का सार !
 मुझे गूँथने दोगे अपनी स्वर्ण रजत कलियों का हार ?

ताम्र रसाल ! ताम्र रसाल !
 मधुपो से गुजरित मुझे दोगे न मजरित अपनी डाल ?
 आज तुम्हारे भ्रम भ्रम से फूट रही नव मधु की ज्वाल,
 इंद्र के पणों में दिशि दिशि नृत्य कर रहा स्वर्ण सकाल,
 मजरियों के मंदिर शरो से जर्जर जड चेतन इस काल,
 बोरो की उमद सुगंध पी भ्रम हुई भीरो की माल !

ताम्र रसाल ! ताम्र रसाल !
 कोविल की आकुल ध्वनि सुन लद उठे पल्लवों से वन शाल
 आज लुभाऊँगा मैं जग को बुन बुन नव स्वप्नों का जाल !
 सखे ! मुझे दोगे स्वप्नों से स्वर्ण मजरित अपनी डाल ?

पलाश !

मरकत वन में आज तुम्हारी नव प्रवाल की डाल
 जगा रही उर में आकुल आकाशाओं की ज्वाल !
 पीपल, चिलबिल, ताम्र, नीम की पल्लव श्री सुकुमार—
 तुम्हीं उठाये हो, पर, वसुधा का मधु-यौवन भार !
 वण - वण की हरीतिमा का वन में भरा विकास,
 तुम नव मधु की निखिल कामनाओं के प्रिय उच्छ्वास !
 शत - शत पुष्पों के रंगों की रत्नच्छटा पलाश !
 प्रकट नहीं कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास !
 स्वर्ण मजरित ताम्र आज भी' रजत ताम्र कचनार,
 नील कोविला की पुकार नव, पीत मग गुजार !
 वण स्वरो में मुखर तुम्हारे मौन पुष्प भ्रंगार,
 यौवन के नव रक्त तेज का जिनमें मंदिर उभार !
 हृदय रुधिर ही अर्पित कर मधु को अर्पण श्री शाल !
 तुमने जग में आज जला दी दिशि दिशि जीवन-ज्वाल !

पलाश के प्रति

प्राप्त नहीं मानव जग को यह मर्मोज्वल उल्लास
 जो कि तुम्हारी डाल-डाल पर करता सहज विलास !
 आज प्रलय-ज्वाला में ज्यों गल गये विश्व के पाश
 जीवन की हिल्लील लोल उमड़ी छूने आकाश !

आकाशाएँ अखिल अवनि की हुईं पूण उमुक्त,
 यह रक्तोज्वल तेज धरा के जीवन के उपयुक्त ।
 उद्भिज के जीवन-विकास मे हुआ नवीन प्रभात,
 तरुओ का हरिता-धकार हो उठा ज्योति अवनदात ।
 नव जीवन का रुधिर शिराओँ मे कर वहन, पलाश ।
 तृण-तरु जग से मानव जग मे तुमने भरा प्रकाश ।
 यह शोभा, यह शक्ति, दीप्ति यह यौवन की उद्दाम
 भरती मन मे भोज, दृगो को लगती प्रिय, अभिराम ।
 जीवन की आकाशाओ का यह सौंदर्य अमद ।
 मानव भी उपभोग कर सके मुक्त, स्वस्थ आनन्द ।

कैलिफोर्निया पाँपी

कैमा प्रकाश से प्रेम तुम्हे, छू स्वर्ण-रजत, किरणें प्रभात
 पीले सुफेद सी फूली मे तुम खिलखिल पडती पुलक गात ।
 जड वत मूल । उडती होतीं तुम नितली सी सुख से उमुक्त
 पृथ्वी के हो ये डाल - पात पर पाण्डित्य नही तुम्हारा सुख ।
 ब घन मे भी हो सहज मुक्त तुम, इसीलिए उडकर क्षण मे,
 निज सुख की ही प्रतिशयता मे हो समा गयी मेरे मन मे ।

बदली का प्रभात

निशि के तम मे भर भर
 हलकी जल की फुही
 धरती को कर गयी सजल ।
 अंधिमाली मे छनकर
 निमल जल की फुही
 तृण तरु को कर उज्ज्वल ।

बीती रात,—

धूमिल मजल प्रभात
 वृष्टि शून्य, नव स्नात ।
 अलम उनीदा सा जग,
 कोमलाभ, दग सुभग ।
 कहाँ मनुज को अवनसर
 देखे मधुर प्रकृति मुख ?
 भव अभाव से जजर
 प्रकृति उसे देगी सुख ?

दो मित्र

उस निजन टीले पर
 दोनो बिलबिल

एक दुगरे म मिन,
मिनो - म है मर,
मोन, मगोहर !

दोगो पाएप
मह वर्पांग
एए मार ही बट,
दोप, गुदुइगर !

एगभर म सब पत्र गय भर,
गा, घवल डालो पर
पतनी, टेड़ी टहनी घगणित
गिरा-आस-सी फंसी घविरस,
तगघो बी रेगा एबि घविरस
मू पर कर छापांगित !
गीत निरर गगन पर
विप्रित - म दो तरवर
घांगा बो सगत है गुजर
मन बो गुजर !

अभा मे नीम

गर मर मर मर
रसम ब म स्वर भर,
घने नीम दन
सम्ब, पनन, घघन,
दगन - रण म
रोम ह्य म
हिन हिन ठरन प्रनिगम !

बूग गिरर म मू पर
एन-गा मिथित घनि कर
पूट परा, ना, निमर—,
मगन —कम्र, घर
मम मन, मर मरकर,
नीम नीम ठर निमर
मिटर मिह्र घर घर घर
करता मर मर
घर मर !

विद-मृत ए निमित्त म
हृदि मर म घानय—
वाग ठर म घविरस
एन-मर-म दन कर !
मिगन, मिगन मीम मर,

भीत, पीत, वृश, निबल,
नीम दल सकल
भर भर पडते पल पल ।

श्रोस के प्रति

विस अक्लुप जग से उतरे
तुम प्रतनु श्रोस ।
तृण, कलि, कुसुम अघर पर बिलखे ?
किसने तुम्हें सजाया,
सु-दर, सुघर बनाया ?
रजत-वाष्प की सुभग
जलद सीपी ने ?
ऐसी भाभा देखी नहीं किसी ने ।
सस्मित तुमसे है प्रभात-जग,
स्वर्गिक मोती, अतुल कोप ।

किसकी यह कल्पना ?
तुम्हे जो दिया बना
उज्ज्वल,
कोमल,
चंचल,
निमल,
निर्दोष ।

चटुल अनिल ने तुम्हें तोल
सबको समान कर गोल गोल,
शक्ति-छवि से भर
वपु को सु-दर,
लुडकाया भू के पलको पर,

हे स्वप्न-सुघर ।
तुम पर सहल रवि-योछावर ।
स्वर्गीय तुम्हारा लोल लास,
जीवन के अल-पल का ह्लास,
निज सधु सत्ता वा कर विकास
तुम बने वाष्प आकाश ।

श्रोस ।
उर-परितोष ।
श्रो स्पगं शीत !
छवि गीत
श्रोस ।

श्रोस बिन्दु

श्रोस बिन्दु ! लघु श्रोस बिन्दु !
 बहु नीले पीले, हरे, लाल,
 चंचल ताराश्रोस जल - जल,
 फैलाते शीतल, सजल ज्वाल !
 बलरव करते, किलकार, रार
 ये मौन मूक,—तृण तर दल पर,
 तक्ते अपलक निश्चल सोये,
 उड-उड पंखडियो पर सुंदर !
 ये पक्षी, मधुमक्खी, तितली
 जुगनू, मछली, रवि, ऋक्ष, इडु
 निज नाम-रूप खो, जान बूझ,
 सब बने हुए हैं श्रोस बिन्दु !

जलद

तूल जलद, ऊण जलद,
 तूम धूम जल पूण जलद,
 वात मसण जल-सूत
 भू पट पर जीमूत,
 हरित काढते तण, तरु, छद !
 स्तनित जलद, तडित जलद,
 ससति को कर चकित जलद
 इन्द्रचाप रंग चित्र,
 गज मग रूप विचित्र,
 बनते रवि-शशि तरी सुखद !
 धीर जलद, तूण जलद,
 श्वेत श्याम छवि पूण जलद,
 शिखी नृत्य पर लुब्ध,
 दादुर ध्वनि स क्षुब्ध
 विरहिणि कृषि के दूत फलद !

अनामिका के कवि के प्रति

छद बघ ध्रुव तोड, फोडकर पवत कारा
 अचल रुडियो की, कवि, तेरी कविता धारा
 मुक्त, अवाध, अमन्द, रजत निभर सी नि सत,—
 गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुप, अविजित !
 स्फटिक शिलाश्रो से तूने वाणी का मंदिर
 शिल्पि, बनाया,—ज्योति कलश निज यश का घर चिर !

शिलीभूत सौ दय, ज्ञान, आनन्द अनन्द
 शब्द शब्द म तरे उज्ज्वल जडित हिम शिखर ।
 शुभ कल्पना की उठान भर भास्वर कलरव,
 हस, अश वाणी के, तरी प्रतिभा नित नव ।
 जीवन के कदम स अमलिन मानस सरसिज
 शोभित तेरा, वरद शारदा का प्राप्तन निज ।
 अमृत पुत्र पवि, यश काय तव जरामरणजित्,
 स्वय भारती से तरी हस्तत्री भवृत् ।

आचार्य द्विवेदी के प्रति

(१)

भारते दु ने जिसकी अक्षय अमर नीव पर
 प्रथम शिला का गौरव स्थापित किया पूर्वतर,
 कुशल शिल्पिगण विविध कीर्ति-स्तम्भो से सुन्दर
 महिमा सुपमा जिसे दे गय, स्तुत्य यत्न कर,

भारत की वाणी का वह भव्योच्च सौषवर
 अतनयनो मे क्या, हे आचार्य, पूणतर
 उदभासित हो उठा आपके दिव्य रूप घर ?
 ज्योति बिचम्बित, स्वीय कीर्ति का स्वर्ण कलश वर
 जो पहले ही आप रख गये अग्र शिखर पर ।

देव, आपके मन स्वप्न को ले पलकों पर
 भावी चिर साकार कर सके रूप रंग भर,
 दिशि दिशि की अनुभूति, ज्ञान, बहु भाव निरतर,
 उसे उठावें युग-युग के सुख दुख अनन्दवर,
 —आप यही आशीर्वाद दें, देव यही वर ।

(२)

भारत-दु कर गये भारती की वीणा निर्माण,
 क्या अमर स्पर्शों ने जिसका बहुविध स्वर सन्धान,
 निश्चय, उसमे जगा आपने प्रथम स्वर्ण अक्षर
 अखिल देश की वाणी को ? दिया एक आकार ।
 पलहीन थी क्षुब्ध कल्पना, मूक कण्ठगत गान ।
 शब्द शून्य थे भाव, रक्त प्राणो से वधित प्राण ।
 सुख दुख की प्रिय कथा स्वप्न बन्दी थे हृदयोदगार ।
 एक देश था सही, एक था क्या वाणी व्यापार ?
 वाग्मि ! आपने मूक दश को कर फिर से वाचाल,
 रूप रंग से पूण कर दिया जीण राष्ट्र ककाल ।

शत वण्ठो स फूट आपके शनमुख गौरव गान
 शत शत युग स्तम्भो पर तानेँ स्वर्णिम कीर्ति वितान ।
 चिर स्मारक सा उठ युग युग म भारत का साहित्य
 आय, आपके यश काय को घरे सुरक्षित नित्य ।

कुसुम के प्रति

भर गय हाय, तुम कांत कुसुम !
 सब रूप - रग दल गये बिखर,
 रह सवे न चाह चिरतन तुम,
 जीवन की मधु स्मिति गयी विसर !
 चुपके मे भर, तुमने फल को
 निज सौंप दिया जीवन, यौवन,
 क्षण - भर जो पलका पर भलका
 वह मधु का स्वप्न न रहा स्मरण ।
 चिर पूण नहीं कुछ जीवन मे
 अस्थिर है रूप जगत का मद,
 यस आत्म त्याग, जीवन - विनिमय
 इस सधि-जगत मे है सुखप्रद !
 करुणा है प्राणवत जग की,
 अवलम्बित जिस पर जग जीवन,
 भर दती चिर स्वर्गिक करुणा
 जीवन का खोया सूनापन ।
 करुणा रजित जीवन का सुख,
 जग की सु दरता अश्रु स्नात,
 करुणा ही से साथक होते
 चिर जन्म मरण, सध्या प्रभात ।

क्रान्ति

तुम अघकार, जीवन को ज्योतिर करती,
 तुम विष हो, उर म मधुर सुधा सी भरती !
 तुम मरण, विश्व मे मधुर चेतना भरती,
 तुम निखिल भयकर, भीति जगत की हरती !
 तुम नूय, अतुल ऐश्वय सदा बरसाती,
 अपरूप, चतुर्दिक सुदरता सग्माती !
 निष्ठुर निमम क्षुद्रा को भी अपनाती
 तुम दाया वन को हरित भरित कर जाती !
 तुम चिर विनाश, नव सजन गोद मे लाती,
 चिर प्राकृत, नव सस्कृति के ज्वार उठाती !
 तुम रुद्र, प्रलय-ताण्डव मे ही सुख पाती
 जीवन वसत तुम, पतझड बन नित आती !

धूम धूम छा निभर अम्बर,
 झूल झूल झुझा झोको पर,
 है दुदम उददाम हरो
 भव ताप, दाप, अभिमत कर सिचन ।

इन्द्रचाप से कर दिशि चित्रित,
 बहभार से केकी पुलकित,
 हरित भरित हे करो धरणि को
 हो करुणाद्र, घोर वज्र स्वन ।

निश्चय

सधर्षों मे शांति बनूँ मैं ।
 अधकार मे पड जीवन के,
 अधकार की कांति बनूँ मैं ।

जग जीवन के ज्वारो मे बह,
 कोमल प्रखर प्रहारो को सह,
 भव के क्रन्दन किलकारो मे
 हंसमुख नीरव कांति बनूँ मैं ।

घृणा उपेक्षा मे रह अविचल,
 निंदा लाछन से बन उज्ज्वल,
 ऋटियो से ज्योतिर कर निज पथ
 जन-सेवा की श्रांति बनूँ मैं ।

भ्रूल निराशा, कटु निष्फलता
 दैय, स्वभाव जनित दुबलता,
 भ्रान्ते बढूँ घोर एकाकी,
 भाग्य चक्र को भ्रांति बनूँ मैं ।

खोज

आज मनुज को खोज निवालो ।
 जाति वण सस्कृति समाज से
 मूल व्यक्ति को फिर से चालो ।

देश राष्ट्र के विविध भेद हर,
 धर्म नीतियो मे समत्व भर,
 ह्रिडि रीति गत विद्वानो की
 अध यवनिका आज उठा लो ।-

भाषा भूषा के जो भीतर,
 श्रेणि वग मे मानव ऊपर,
 झखिल अवनि मे रिक्त मनुज को
 बेवस मनुज जात अपना ला ।

राजा प्रजा, धनी धी' निर्धन
सम्य घससृत्, सज्जन दुजन
भव मानवता से सबको भर,
खण्ड मनुज को फिर स ढालो !

श्रावाहन

रूप धरो, नव रूप धरो !
जीवन के धन अघवार,
नव ज्योतिष हो भव रूप धरो !

हे कुरूप, हे कुत्सित, प्राकृत,
ह सुदर, हे मसृत्, सस्मित,
धामो जग जीवन परिणय मे
परिचित से मिल बाँह भरो !

कीमल कटु, कटु कीमल बनवर,
उज्ज्वल मद, मद उज्ज्वलतर,
दिवा निशा के ज्योति तमस मिल
सौम्य प्रात अभिसार करो !

पतभर मे मधु, मधु मे पतभर,
सुख मे दुख, दुख मे सुख बनकर,
जम मृत्यु मे, जम मृत्युहर !
भव की जीवन भीति हरो !
रूप धरो, नव रूप धरो !

लेन-देन

कातो अधकार तन मन का !
नव प्रकाश के रजत स्वण से
बुनो तरुण पट नव जीवन का !

युग-युग के बहु भेदो को धुन
बबरता, पाशवता को चुन,,
नव मानवता से ढेक दोह
कुत्सित नग्न रूप जन जन का !

दिशिपल के ताने बाने भर
धूपछाँह रच सस्कृति सुदर
बीनो स्नह सुहृदि समय से
शील वसन नव भव यौवन का !

सजा पुरातन को, कर नूतन
देश देश का रँग अपनापन,
निखिल विश्व की हाट घाट मे
लेन-देन हो मानवपन का !

वस्तु सत्य

आज भाव से बनो वस्तु-भव ।
चेतनता से रूप गन्ध रस
शब्द स्पश बन उपजो अभिनव ।

बनो प्रेम से प्रेमी प्रिय जन,
सुन्दरता से सुन्दर तन मन,
आज अतुल आनंद राशि से
बनो विपुल जग जीवन उत्सव ।

कारण से शुभ कम बन सकल,
सूक्ष्म बीज से पत्र, पुष्प, फल,
नित्य मुक्ति में भव बंधन बन,
बनो शक्ति से खाद्य मधु विभव ।

सीमा में ही बनो असीमित,
जन्म मरण में ही चिर जीवित,
पल पल के परिवर्तन में तुम
बनो सनातनता का अनुभव ।

भव मानव

आज बनो फिर तुम नव मानव ।
चुन-चुन सार प्रकृति से अतुलित
जीवन रूप धरो ह अभिनव ।

नभ से शक्ति, कांति रवि से हर,
भूतो में चेतनता दो भर,
निस्तलता जलनिधि से लेकर
भू से विभव मरुत से लो जव ।
सुमनो से स्मिति, विहंगो से स्वर
शशि से छवि, मधु से यौवन वर,
सुन्दरता, आनंद, प्रेम का—
भू पर विचर,—करो नव उत्सव ।

आज त्याग तप, समय साधन
साधक हो, पूजन आराधन,
नीरस दशन दशनीय—
मानव वपु पाकर मुग्ध करे भव ।
निखिल ज्ञान विज्ञान समीक्षा—
करता भव इतिहास प्रतीक्षा,
मूर्तिमान नव ससृष्टि बन,
आप्तो, भव मानव, युग-युग सम्भव ।

प्रकृति-शिशु

बड़े प्रकृति शिशु भव मानव मे ।
भय का दे पायेय प्रकृति ने
भेजा मनुज अपरिचित भव मे ।

बँधा मोह बंधन मे अपने,
उर मे इच्छाओ के सपने
जीवन का गेश्वय खोजता
बह चिर जीण जगत के शव मे ।

जीवन इच्छा को कर मस्कृत,
प्राकृत भय के तम को ज्योतित,
विवसित हो, मानव मानव को
वह अपना-सा पा अनुभव मे ।

निज पर मे समता कर निर्मित
मानवना का सार सकलित,
बह भव जीवन का स्रष्टा हो,
द्रष्टा हो, रति ही चिर नव मे ।
बड़े प्रकृति शिशु भव मानव मे ।

आवेश

ज्यो मधुवन मे गूजते भ्रमर,
नव आम्र कुज मे पिकी मुलर,
मेरी उर त त्री से रह रह
गीतों के मधुर फूटते स्वर ।
ज्यो भरते हरसिगार भर भर,
ज्या हिम फुहार ऋण फहर फहर,
मेरे मानस से सु-दरता
नि सत होती त्यो निखर-निखर ।
गिरि उर से ज्यो बहुत निभर,
रवि शशि मे तिग्म मधुरतर कर,
मेरे मन की आवेश शान्ति
गीतों मे पडती बिलर बिलर ।

आत्म समर्पण

रक्त मास की अचिर देह मे तुमने अपनापन भर
बना दिया इसको चिर पावन नाम रूप ज्योतित कर ।
बहु जन नूय, अपरिचित जग मे प्रतिक्षण दे निज परिचय
रहने योग्य कर दिया इसको स्नेह मेह शोभामय ।
दान अतुप्त प्रासादाक्षण तुम पर हो योछावर
पूण हो गयी आज, जम की युग-युग की मार्ग वर ।

निलिप्त ज्ञान विज्ञान तक प्री' जन्म - मरण प्रसन्नोत्तर
साधक सब हो गये, पूण त मय प्रिय तुममे होकर !

तुम ईश्वर

सीमाओं मे ही तुम असीम,
बन्धन नियमा मे मुक्ति सतत,
बहु रूपा मे नित एक रूप
सघणों मे ही शान्ति महत !

बलुपित दूषित मे चिर पवित्र,
कृत्स्नित कुरूप मे तुम सुन्दर,
खण्डित कुण्डित मे पूण सदा
क्षणमगुर मे तुम नित्य अमर !

तुम पतित क्षुद्र मे चिर महान,
परित्यक्तो के जीवा महचर,
तुम विषयगामियो के सत पथ
जीवन मृत के नव जीवन वर !

तुम बाधा विघ्नो मे हो बल,
जीवन के तम मे चिर भास्वर
असफलताओं मे इष्ट सिद्धि,
तुम जीवो ही मे हो ईश्वर !

वाणी

वाणी, वाणी,
जीवन की वाणी दो मुझको भास्वर !
मौन गगन को भेद

बोलत जिस वाणी मे उडुचर,
जिसमे नीरव गिरि से निःसृत
होते मुखरित निभर !

जिस वाणी मे मध गरजते,
लहरा उठते सागर,
जिसमे नित दामिनी दमकती,
मोर नाचते सुन्दर !

वाणी, वाणी,
मुझे वस्तु-वाणी दो पूण चिरन्तन !
जिस वाणी मे छू मलयानिल
पुलको से भरता तन,
जिसमे मट्टु मुख कुसुम खोलते,
अणु - अणु करने नतन !

जिस वाणी मे क्षुधा, तृषा
 धी' काम दीप्त करते तन,
 जिसमे इच्छा, सुख दुख उठते,
 आते शैशव, यौवन ।

वाणी, वाणी,
 मुझे स्रष्टि की वाणी दो अविनश्वर ।
 जो बहु वण, गंध, रूपो मे
 करती सृजन निरंतर,
 जिस वाणी मे अनुभव करते
 चुपके निखिल चराचर ।
 जो वाणी चिर जन्म मरण
 तम ओ प्रकाश से है पर,
 जो वाणी जीवन की जीवन,
 शाश्वत, सुंदर, अक्षर ।
 वाणी, वाणी,
 मुझको दो घट-घट की वाणी के स्वर ।

युग नृत्य

नृत्य करो, नृत्य करो ।
 शिशिर ममीर
 मत्त अधीर,
 प्रलयकर नृत्य करो,
 मृत्यु से न व्यथ हरो ।
 जीण शीण विश्व पण
 ह विदीर्ण, हे विवण,
 काल भीत, रक्त पीत,
 ममर भर सजन गीत,
 अभयकर नृत्य करो,
 निखिल विश्व बंध हरो ।

अनिल अनल नभ जल स्थल,
 अचल चपल, दिशि ओ पल,
 ज्याति अंध, मूय चंद्र,
 तार मद्र, गीति छंद
 निगम ज्ञान, स्मृति पुराण,
 प्रलयकर नृत्य करो
 निखिल विश्व बंध हरो ।

ऋति रीति, याय नीति,
 वर प्रीति, ईति भीति,
 क्षुधा तृषा, गत्य मृषा,
 लज्जा, भय, रोष, विनय,

राग द्वेष, हर्ष क्लेश,
प्रलयकर नृत्य करो,
जीवन जड सिन्धु तरो ।

देश राष्ट्र, लोह काष्ठ,
श्रेणि वग, नरक स्वर्ग,
जाति पाति, वश ख्याति,
धनी निधन, भूपति जन,
आत्मा मन, वाणी तन,
अभयकर नृत्य करो,
नव युग को अखिल धरो ।

नृत्य करो, नृत्य करो,
शिशिर समीर,
क्षुब्ध अघोर,
ताण्डव गति नृत्य करो,
भूतल कृतकृत्य करो ।

ग्राम्या

[प्रथम प्रकाशन-वर्ष १९४०]

प्रिय नरेन्द्र को

निवेदन

‘ग्राम्या’ मे मेरी ‘युगवाणी’ के बाद की रचनाएँ सग्रहीत हैं । इनमे पाठको को ग्रामीणो के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है । ग्राम्य जीवन मे मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नहीं लिखी गयी हैं । ग्रामो की वर्तमान दशा मे वैसा करना केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता । ‘युग’, ‘संस्कृति’ आदि शब्द इन रचनाओ मे वर्तमान और भविष्य दोनो के लिए प्रयुक्त हुए हैं, जिसे समझने मे पाठको को कठिनाई नहीं होगी, ‘ग्राम्या’ की पहली कविता ‘स्वप्न पट’ से यह बात स्पष्ट हो जाती है । ‘बापू’ और ‘महात्माजी के प्रति’, ‘चरखा गीत’ और ‘सूत्रघर’ जैसी कुछ कविताओ मे बाहरी दृष्टि से एक विचार वर्णमय जान पड़ता है, पर यदि हम ‘आज’ और ‘कल’ दोनो को देखेंगे तो यह विरोध नहीं रहेगा ।

अत मे मेरा निवेदन है कि ‘ग्राम्या’ मे ग्राम्य दोषो का होना अत्यन्त स्वाभाविक है, सहृदय पाठक उनसे विचलित न हो ।

नक्षत्र

कालाकांकर (अवध)

१ मार्च, १९४० ई०

सुमित्रानन्दन पंत

स्वप्न पट

ग्राम नहीं वे ग्राम आज भी' नगर न नगर जनाऽकर,
मानव कर से निखिल प्रकृति जग सस्कत, सायक, सुन्दर ।
देश राष्ट्र वे नहीं, जीण जग पतझर त्रास समापन,
नील गगन है हरित घरा नव युग नव मानव जीवन ।
आज मिट गये दैय दुख, सब क्षुधा तृषा के क्रन्दन
भावी स्वप्नो के पट पर युग जीवन करता नतन ।
डूब गये सब तक वाद, सब देशो राष्ट्रो के रण,
डूब गया रव घोर क्रांति का शात विश्व सघषण ।
जाति वण की, श्रेणि वग की तोड भित्तियाँ दुधर
युग युग के बंदीगृह से मानवता निकली बाहर ।
नाच रहे रवि शशि, दिगन्त मे,—नाच रहे ग्रह उडुगण,
नाच रहा भूगोल, नाचते नर नारी हर्षित मन ।
फुल्ल रक्त शतदल पर शोभित युग लक्ष्मी लोकोज्ज्वल
अयुत करों से लुटा रही जन हित, जन बल, जन मगल ।
ग्राम नहीं वे, नगर नहीं वे,—मुक्त दिशा भी' क्षण से
जीवन की क्षुद्रता निखिल मिट गयी मनुज जीवन से ।
(दिसम्बर '३६)

ग्राम कवि

यहा न पल्लव वन मे ममर, यहा न भधु विहगो मे गुजन,
जीवन का सगीत बन रहा यहाँ अतप्त हृदय का रोदन ।
यहाँ नहीं शब्दो मे बँधती आदशों की प्रतिमा जीवित,
यहा व्यथ है चित्र गीत म सुन्दरता को करना सचित ।
यहा घरा का मुख कुरूप है, कुत्सित गर्हित जन का जीवन,
सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या जहा उदर है क्षुब्ध, नग्न तन ?—
जहा दैय जजर असह्य जन पशु-जघय क्षण करते यापन,
कीडो से रँगते मनुज शिशु, जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन ।
सुलभ यहाँ रे कवि को जग मे युग का नहीं सत्य दिव सुन्दर,
कप-कौप उठते उसके उर की व्यथा विमूर्छित वीणा के स्वर ।
(दिसम्बर '३६)

ग्राम

बहद ग्रंथ मानव जीवन का, काल ध्वस से कवलित,
ग्राम आज है पष्ठ जनो की करण कथा का जीवित ।

युग युग का इतिहास सम्यताओं का इसमें संचित,
संस्कृतियों की ह्रास वृद्धि जन शोषण से रेखांकित ।

हिंस्र विजेताओं, भूषों के भ्रात्रमणों की निबन्ध,
जीण हस्तनिधि यह नृशस गृह सघर्षों की निश्चय ।
घर्षों का उत्पात, जातियों, वर्गों का उत्पीडन,
इसमें चिर सकलित रुढि, विश्वास, विचार सनातन ।
घर घर के बिलरे पानों में नग्न, क्षुधात कहानी,
जन मन के दयनीय भाव कर सकता प्रकट न वाणी ।
मानव दुर्गति की गाथा से मोतप्रोत मर्मांतक
सदियों के भ्रत्याचारों की सूची यह रोमाचक ।

मनुष्यत्व के मूल तत्त्व ग्रामों ही में अंतर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविच्छिन्न ।
शिक्षा के सत्याभासों से ग्राम नहीं हैं पीडित,
जीवन के सहकार अविद्या-तम में जन के रक्षित ।

(जनवरी '४०)

ग्राम दृष्टि

देख रहा हूँ आज विश्व को मैं ग्रामीण नयन से
सोच रहा हूँ जटिल जगत पर, जीवन पर जन मन से ।
पान नहीं है, तक नहीं है, कला न भाव विवेचन,
जन हैं, जग है, क्षुधा, काम, इच्छाएँ, जीवन साधन ।
रूप जगत है, रूप दृष्टि है, रूप बोधमय है मन,
माता पिता, बधु, बाधव, परिजन पुरजन, भू गो धन ।
रुढि रीतियों के प्रचलित पथ, जाति पाँति के बंधन,
नियत कम हैं, नियत कमफल,—जीवन चक्र सनातन ।
जन्म मरण के, सुख दुःख के ताने बानों का जीवन,
निष्ठुर नियति के धूपछाँह जग का रहस्य है गोपन ।
देख रहा हूँ निखिल विश्व को मैं ग्रामीण नयन से,
सोच रहा हूँ जग पर मानव जीवन पर जन-मन से ।
रुढि नहीं है रीति नहीं है, जातिवण केवल भ्रम,
जन जन में है जीव जीव जीवन में सब जन हैं सम ।
ज्ञान वधा है, तक वधा, संस्कृतियों व्यथ पुरातन,
प्रथम जीव है मानव में, पीछे है सामाजिक जन ।
मनुष्यत्व के मान वधा, विज्ञान वधा रे दशन,
वधा धम, गणतंत्र,—उहे यदि प्रिय न जीव जन जीवन ।

(दिसम्बर '३६)

ग्राम चित्र

यहाँ नहीं है चहल-पहल वैभव विस्मित जीवन की
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ ममर ले वन की ।

आता मोन प्रभात अकेला, स घ्या भरी उदासी,
 यहाँ घूमती दोपहरी मे स्वप्नो की छाया सी ।
 यहाँ नही विद्युत दीपो का दिवस निशा मे निर्मित,
 अंधियाली मे रहती गहरी अंधियाली भय कल्पित ।
 यहाँ खव नर(वानर ?) रहते युग युग से अभिशापित,
 अन्न वस्त्र पीडित असम्य, निबुद्धि, एक म पालित ।
 यह तो मानव लोक नही रे, यह है नरक अपरिचित,
 यह भारत का ग्राम,—मम्यता, सस्कति से निवासित ।
 भाङ फूस के विवर —यही क्या जीवनशिल्पी के घर ?
 कीडो-से रेंगते कौन ये ? बुद्धि-प्राण नारी नर ?
 अकथनीय क्षुद्रता विवशता भरी यहा के जग मे
 गह गृह मे है बलह, खेत मे बलह, कलह है मग मे ?
 यह रवि शशि का लाक,—जहाँ हँसते समूह मे उडुगण,
 जहा चहकते विहग, बदलते क्षण क्षण विद्युत प्रभ घन ।
 यहाँ वनस्पति रहते, रहती खेतो की हरियाली,
 यहाँ फूल हैं, यहाँ ओस, कोकिला, ग्राम की डाली ।
 ये रहते है यहाँ,—और नीला नभ, बोयी घरती
 सूरज का चौडा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती ।
 प्रकृतिधाम यह तृण तृण, कण कण जहा प्रफुल्लित जीवित,
 यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विपण्ण जीवन मत ।।
 (दिसम्बर '३६)

ग्राम युवती

उमद यौवन से उभर
 घटा - सी नव असाढ की सुदर
 अति श्याम वरण,
 श्लथ, मन्द चरण,
 इठलाती आती ग्राम युवति
 वह गजगति
 सप डगर पर ।
 सरकाती पट,
 खिसकाती लट,—
 शरमाती भट
 नव नमित द्रष्टि से देख उरोजो के युग घट ।
 हँसती खलखल
 अबला चंचल
 ज्यो फूट पडा हो स्रोत सरल
 भर फेनोज्ज्वल दशनी से अघरो के तट ।
 वह मग मे रुक
 मानो कुछ भुक,

घाँचल सँभालती, फेर नयन मुल,
 पा प्रिय पद की घ्राहट !
 आ ग्राम युवक,
 प्रेमी याचक
 जब उसे ताबता है इकटक,
 उलसित,
 चकित,
 वह लेती मूद पलक पट !

पनघट पर
 मोहित नारी नर ! —

जब जल से भर
 भारी गागर
 सीचती उबहनी वह, बरबस
 चौली से उभर - उभर कसमस
 विचते सग युग रस भरे बलश, —
 जल छलकाती,
 रस बरमाती,
 बल खाती वह घर को जाती,
 सिर पर घट
 उर पर घर घट !

कानो मे गुडहल
 लोस, — धवल

या कुँई कनेर, लोध पाटल,
 वह हरसिगार से बच सँवार,
 महु मौलसिरी के गूष हार,
 गउओ संग करती वन विहार,
 पिक चातक के सँग दे पुकार, —
 वह कुँद, काँस से,
 अमलतास से,

घाम्र मोर, सहजन, पलाश से,
 निजन मे सज ऋतु सिगार !
 तन पर यौवन सुपमाशाली
 मुख पर श्रमवण, रवि की लाली,
 सिर पर घर स्वण शस्य डाली,
 वह मेडो पर आती जाती,
 उर मटकाती,
 कटि लचकाती
 चिर वर्षातप हिम की पाली !
 धनि श्याम वरण,
 धति सिप्र चरण,
 अघरो स घर पकी बाली !

रे दो दिन का
 उसका यौवन ।
 सपना छिन का
 रहता न स्मरण ।
 दुखो से पिस,
 दुदिन मे घिस,
 जजर हो जाता उसका तन ।
 ढह जाता असमय यौवन घन ।
 बह जाता तट का तिनका
 जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण ।।

(दिसम्बर '३६)

ग्राम नारी

स्वाभाविक नारी जन की लज्जा से वेष्टित,
 नित कम निष्ठ, भ्रमों की हृष्ट पुष्ट सुन्दर,
 भ्रम से हैं जिसके क्षुधा काम चिर मर्यादित,
 वह स्वस्थ ग्राम नारी, नर की जीवन सहचर ।
 वह शोभा पात्र नहीं कुसुमादपि मृदुल गात्र,
 वह नैसर्गिक जीवन सस्कारों से चालित,
 सत्याभासों में पली न छाया मूर्ति माध
 जीवन रण में सक्षम, सघर्षों से शिक्षित ।
 वह वग नारियो - सी न सुज्ञ, सस्कृत, कृत्रिम,
 रजित कपोल भ्रू, भ्रमर, भ्रम सुरभित वासित,
 छाया प्रकाश की सृष्टि, — उसे सम ऊष्मा हिम,
 वह नहीं कुलो की काम वदिनी अभिशापित ।
 स्थिर, स्नेह स्निग्ध है उसका उज्ज्वल दृष्टिपात,
 वह दृढ़ ग्रथि से मुक्त मानवी है प्रवृत्त
 नागरियों का नट रग प्रणय उसको न ज्ञात,
 सम्मोहन, विभ्रम, भ्रम भगिमा म अपठित ।
 उसम यत्नो से रक्षित, वैभव से पोषित
 सौन्दर्य मधुरिमा नहीं, न शोभा सौकुमाय,
 वह नहीं स्वप्नशायिनी प्रेयसी ही परिचित
 वह नर की सहघमिणी, सदा प्रिय जिस काय ।
 पिक चातक की मादक पुकार से उसका मन
 हो उठता नहीं प्रणय स्मृतियों से आदोलित,
 चिर क्षुधा शीत की चीत्कारों, दुख का क्रन्दन
 जीवन के पथ से उस नहीं करत विचलित ।
 मधु मास पेशियों में उसके दृढ कामलता,
 सयोग भवयवों में उसके उरोज,
 कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
 उदीप्त न बरता उसे भाव कल्पित मनोज ।

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
यद्यपि चिर दैत्य, अविद्या के तम से पीड़ित,
वर रही मानवी के अभाव की आज पूति,
अग्रजा नागरी की,—यह ग्राम वधू निश्चित !
(दिसम्बर '३६)

कठपुतले

ये जीवित हैं या जीव-मृत ! या किसी काल विष से मूर्छित ?
ये मनुजाकृति ग्रामिक अगणित ! स्थावर, विषण्ण, जडवत स्तम्भित !
किस महारात्रि तम मे निद्रित ये प्रेत ?—स्वप्नवत संचालित
किम मोह मात्र से रे कौलित ये दैव दग्ध, जग के पीड़ित !
बाम्हन, ठाकुर, लाला, बहार, कुर्मी, अहीर, बारी, कुम्हार,
नाइ, कोरी, पासी, चमार, शोषित किसान या 'जमींदार,—
ये हैं खाते पीते, रहते, चलते फिरते, रोते हँसते,
लडते मिलते, सोते जगते, आनन्द, नृत्य, उरसव करते,—
पर जैसे कठपुतले निमित्त, छल प्रतिमाएँ भूषित सज्जित !
युग युग की प्रेतात्मा अविदित, इनकी गतिविधि बरती यत्रित !
ये छाया तन, ये माया जन, विश्वास मूढ नर नारी गण,
चिर हडि रीतियो के गोपन सूत्रो मे बंध करते नतन !
पा गत संस्कारो के इगित ये क्रियाचार करते निश्चित,
कल्पित स्वर मे मुखरित, स्पन्दित क्षण भर को ज्यो लगते जीवित !
ये मनुज नहीं हैं रे जागत जिनका उर भावो से दोलित,
जिसमे महदाकाशाएँ नित होती समुद्र - सी आलोडित !
जो बुद्धिप्राण, करते चित्तन, तत्त्वावेपण, सत्यालोचन
जो जीवन शिल्पी चिर शोभन संचारित करते भव जीवन !
ये दाह मूर्तिया है चित्रित, जो धार अविद्या मे मोहित,
ये मानव नहीं, जीव शापित, चेतना विहीन, आत्म विस्मृत !
(दिसम्बर '३६)

वे आँखें

अधकार की गुहा सरीखी
उन आँखो से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमे दारुण
दैत्य दुख का नीरव । रोदन !
अह, अथाह नैराश्य, विवशता का
उनमे भीषण । सूनापन,
मानव के पाशव पीडन का
देती वे निमम विज्ञापन ।।
फूट रहा उनमे गहरा आतक,
क्षोभ, शोषण, सशय, अम,

डूब वालिमा मे उनकी
 प्रस लेती कौपता मन, उनमे मरघट का तम ।
 मूल रहा उस दुर्जेय दया की भूखी चितवन,
 वह स्वाधीन युग-युग का जजर जन जीवन ।
 छोड उसे किसान रहा,
 तहराते वे अभिमान भरा आखो म इसका,
 हंसती थी उसके मझधार आज
 आखो ही मे धूमा करता
 कारकुनो की वह उसकी आखो का तारा,
 बिका दिया गया जवानी ही म मारा ।
 रह - रह आखो मे पर द्वार,
 उजरी उसके सिवा कुक हुई बरधो की जोडी ।
 ग्रह, आखो पास दुडाने आने देती ?
 बिना दवा दपन के उजड गयी जो सुख की खेती ।
 देख - रेख के स्वरग चली,—आखें आती भर,
 घर मे विधवा बिटिया दो दिन बाद गयी मर ।
 पकड मंगाया लछमी थी यद्यपि पति घातिन,
 खैर, पर डूब बुएँ म मरी एक दिन ।
 पर जवान लडके की सुध कर न सही एक, दूसरी आती,
 पिछले सुख साँप लोटते, फटती छाती ।
 तुरत शून्य मे क्षण भर एक चमक है लाती,
 तीखी नोक सदृश बन जाती ।

वह स्नेह, शील, सेवा, ममता की मधुर मूर्ति,
 यद्यपि चिर दैत्य, भविद्या के तम से पीडित,
 बर रही मानवी के प्रभाव की आज पूर्ति,
 अग्रजा नागरी की,—यह ग्राम वयु निश्चित !
 (दिसम्बर '३६)

कठपुतले

ये जीवित हैं या जीवमृत ! या किसी काल विय मे मूर्छित ?
 ये मनुजाकृति ग्रामिक भगणित ! स्थावर, विपण्ण, जडवत् स्तम्भित !
 किस महारात्रि तम मे निद्रित ये प्रेत ?—स्वप्नवत सचालित
 किस मोह मंत्र से रीलित ये दैव दग्ध, जग के पीडित ! !
 बाम्हन, ठापुर, लाला, बहार कुर्मी, अहीर, बारी, कुम्हार,
 नाई, कोरी, पासी, चमार, शोपित किसान या 'जमींदार,—
 ये हैं खाते पीते, रहते, चलते फिरते, रीत हँसते,
 लडत मिलते, सोते जगते, भानद, नृत्य, उत्सव बरत,—
 पर जैसे कठपुतले निमित्त, छल प्रतिमाणें भूपित सज्जित !
 युग युग की प्रेतात्मा भविदित, इनकी गतिविधि बरती यथित !
 ये छाया तन, ये माया जन, विद्वास मूढ नर नारी गण,
 चिर रुढि रीनियो के गोपन सूत्रो मे बंध करते नतन !
 पा गत सस्वारो के इगित ये त्रियाचार बरते निश्चित,
 कल्पित स्वर मे मुखरित, स्पन्दित क्षण-भर को ज्यो लगते जीवित !
 ये मनुज नहीं हैं रे जागत जिनका उर भावो से दोलित,
 जिसमे महदाकाक्षाएँ नित होती समुद्र - सी भालाडित !
 जो बुद्धिप्राण, बरते चित्तन, सत्त्वावेपण, सत्यालोचन,
 जो जीवन शिल्पी चिर शोभन सचारित करते भव जीवत !
 ये दाह मूर्तिया है चित्रित, जो धीर भविद्या मे मोहित,
 ये मानव नहीं, जीव शापित, चेतना विहीन, घात्म विस्मृत !
 (दिसम्बर '३६)

वे आँखें

अधकार की गुहा सरीखी
 उन आँखो से डरता है मन,
 भरा दूर तक उनमे दारुण
 दैत्य दुख का नीरव रोदन !
 अह, अघाह नैराश्य, विवशता का
 उनमें भीषण । सूनापन,
 मानव के पाशव पीडन का
 देती वे निमम विज्ञापन ! !
 फूट रहा उनसे गहरा आतक,
 क्षोभ, गोपण, सशय, भ्रम,

हूँ बालिमा मे उनकी
 कँपता मन, उनमे मरघट का तम ।
 प्रस लेती दशक को वह
 दुर्गोप दया की भूखी चितवन,
 भूल रहा उस छाया पट मे
 युग-युग का जजर जन जीवन ।
 वह स्वाधीन किसान रहा,
 अभिमान भरा आँखो म इसका,
 छाड उस मङ्गधार आज
 ससार बगार सदृश वह खिसका ।
 लहराते वे खेत दगो म
 हुँसा वेदखल वह भव जिनसे,
 हँसती थी उसके जीवन की
 हरियानी जिनके तन - तून से ।
 आँखो ही मे घूमा करता
 वह उसकी आँखो का तारा,
 कारकुनो की लाठी से जो
 गया जगानी ही मे मारा ।
 बिना दिया घर द्वार,
 महाजन ने न ब्याज की बोडी छोडी,
 रह - रह आँखो मे चुभती वह
 कुक हुई बरघो की जोडी ।
 उजरी उसके सिवा किसे कब
 पास दुःखान भ्रान देती ?
 अह, आँखो मे नाचा करती
 उजड गयी जो सुख की खेती ।
 बिना दवा दपन के घरनी
 स्वरग चली,—आखें आती भर,
 देख - देख के बिना दुधमुही
 बिटिया दो तिन बाद गयी मर ।
 घर मे विधवा रही पत्नीहू,
 लछमी थी, यद्यपि पति घातिन,
 पकड मँगाया कोतवाल ने,
 हूँ बुरें मे मरी एक दिन ।
 खैर, पर की जूती, जोरू
 न सही एक दूसरी आती
 पर जवान लडके की सुध कर
 साँप लोटते फटती छाती ।
 पिछले सुख की स्मति आँखा म
 क्षण - भर एक चमक है लाती,
 तुरत शून्य मे गड वह चितवन
 तीखी नोक सदश बन जाती ।

बैठ, टेव धरती पर माया, वह सलाम करता है झुककर,
 उस धरती से पाव उठा लेने को जी करता है क्षण भर ।
 घुटनो से मुड उसकी लम्बी टाँगें जाधें सटी परस्पर,
 झुका बीच में शीश, झुरियों का झामर मुख निकला बाहर ।
 हाथ जोड, चौडे पजो की गुधी घ्रेंगुलियों को कर सम्मुख,
 मौन त्रस्त चितवन म, कातर वाणी से वह बहता निज दुख ।
 गर्मी के दिन, धरे उपरनी सिर पर, लुगी स ढाँपे तन,—
 नगी देह भरी वालो से,—वन मानुस सा लगता वह जन ।
 मूखा है पैस पा, कुछ गुनमुना, खडा हो, जाता वह धर
 पिछले पैरो के बल उठ जैसे कोई चल रहा जानवर ।
 काली नारकीय छाया निज छोड गया वह मेरे भीतर,
 पशाचिक-सा कुछ दुखा से मनुज गया शायद उसम मर ।
 (जनवरी '४०)

धोबियों का नृत्य

लो, छन छन, छन छन,
 छन छन, छन छन,
 नाच गुजरिया हरती मन ।
 धनि के पैरो म घुघरू बल,
 नट की कटि म घण्टियाँ तरल
 वह फिरकी सी फिरती चचल,
 नट की कटि खाती सी सी बल ।
 लो, छन छन छन छन
 छन छन, छन छन
 ठुमुक गुजरिया हरती मन ।
 उड रहा ढोल धाधिन, धातिन,
 श्री हुडुक घुडुकता ढिम ढिम दिन,
 मजीर खनकते खिन खिन खिन,
 मद मस्त रजक, होली का दिन ।
 लो, छन छन, छन छन,
 छन छन छन छन
 धिरक गुजरिया हरती मन ।
 वह काम शिखा सी रही सिहर,
 नट की कटि में लालसा मँवर,
 कँप कँप नितम्ब उसके धर धर
 भर रह घण्टियों में रति स्वर,
 लो छन छन, छन छन,
 छन छन छन छन,
 मत्त गुजरिया हरती मन ।
 फहराता लेंहगा लहर लहर,
 उड रही मोढनी पर पर फर,

घोली के बन्दुब रहे उपर,
(स्त्री नहीं गुजरिया, वह है नर !)

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
हुनस गुजरिया हरती मन !

उर की भ्रतुप्त यासना उभर
इस ढोल मंजीरे के स्वर पर
नाचती, गान के फंला पर,
प्रिय जन गण को उरसव भ्रवसर,—

लो, छन छन, छन छन,
छन छन, छन छन,
चतुर गुजरिया हरती मन !

(जनवरी '४०)

ग्राम वधू

जाती ग्राम वधू पति के घर !
मा से मिल, गोदी पर सिर धर,
गा गा बिटिया रोती जी भर,
जन जन का मन बरुणा कातर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
भीड लग गयी लो स्टेशन पर,
सुन यात्री ऊंचा रोदन स्वर
झाँक रहे खिडकी से बाहर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
चितानुर सब, बौन गया मर
पहियो से दब, कट पटरी पर,
पुलिस कर रही कही पकड धर !
जाती ग्राम वधू पति के घर !
मिलती ताई से गा रोककर,
मौसी से वह घापा खोकर,
बारी बारी रो, चुप होकर,
जाती ग्राम वधू पति के घर !
बिदा फुफ्फा से ले हा हाकर,
सखियो से रो घो बतियाकर,
पडोसिनो पर टूट, रंभाकर
जाती ग्राम वधू पति के घर !
मा बहती,—रखना सँभाल धर,
मौसी,—धनि, लाना गोदी भर,
सखियाँ—जाना हमे मत बिसर
जाती ग्राम वधू पति के घर !

भर रह ढाक, पीपल के दल,
 हो उठी कोकिला मतवाली !
 महके बटहल, मुकुलित जामुन,
 जगल मे भरबेरी भूली,
 फूले घ्राडू, नीबू, दाडिम,
 घ्रालू, गोभी, बैंगन, मूली !

पीले मीठे भ्रमरूदो मे

भ्रव लाल लाल चित्तरियाँ पडी,

पक गये सुनहले मधुर बेर,

भ्रवली से तरु की डाल जडी !

लहलह पालक, महमह धनिया,

लौकी घ्राँ' सेम फली फँली,

मखमली टमाटर हुए लाल,

भिरचो की बडी हरी धँली !

गजी को मार गया पाला,

भ्ररहर के फूलो को भुलसा,

हाका करती दिन - भर बदर

भ्रव मालिन की लडकी तुलसा !

बालाएँ गजरा काट काट,

कुछ वह गुपचुप हँसती किन किन,

चाँदी की - सी घण्टियाँ तरल

बजती रहती रह रह खिन खिन् !

छायातप के हिलकोरो मे

घोडी हरीतिमा लहराती,

ईला के खेतो पर सफेद

कासो की भण्डी फहराती !

ऊँची भ्ररहर मे लुका छिपी

खेलती युवतरियाँ मदमाती,

चुम्बन पा प्रेमी युवको के

भ्रम से श्लथ जीवन बहलाती !

बगिया के छोटे पेडो पर

सुदर लगते छोटे छाजन,

सुदर गेहूँ की बालों पर

मोती के दानो - से हिमकन !

प्रात भ्रोभल हो जाता जग,

मू पर आता ज्यो उतर गगन,

सुदर लगते फिर कुहरे से

उठते - से खेत, बाग, गह बन !

बालू के सापो से भ्रक्ति

गगा की सतरगी रैती

सुदर लगती सरपत छापी

तट पर तरबूजो की खेती !

अंगुली की कधी से बगुले
 कलेंगी सँवारते हैं कोई
 तिरते जल में सुरखाब, पुलिन पर
 मगरौठी रहती सोयी ।
 डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक,
 घोती पीली चोर्चे घोबिन,
 उड अवाबील, टिटिहरी, बया,
 चाहा चंगते कदम, कृमि, तन ।
 नीले नभ में पीलो के दल
 भातप में धीरे मँडराते,
 रह रह काले, मूरे, सुफेद
 चल पखो के रँग भलकाते ।

लटके तरुओ पर विहग नीड
 वनचर लडको को हुए ज्ञात,
 रेखा - छवि विरल टहनियो की
 ठूठे तरुओ के नग्न गात ।

भागन में दौड रहे पत्ते
 धूमती भँवर - सी शिशिर वात,
 बदली छँटेने पर लगती प्रिय
 ऋतुमती धरित्री सद्य स्नात ।

हँसमुख हरियाली हिम - भातप
 सुख से अलसाये - से सोये,
 भीगी अधियाली में निशि की
 तारक स्वप्नो में - से खोये,—
 मरकत डिब्बे - सा खुला ग्राम—
 जिस पर नीलम नभ आच्छादन,—
 निरुपम हिमात में स्निग्ध शात
 निज शोभा से हरता जन मन ।
 (फरवरी '४०)

नहान

जन पव मकर सक्रांति आज
 उमडा नहान को जन समाज
 गगा तट पर सब छोड काज ।

नारी नर कई दोस पैदल
 आ रहे चले लो, दल के दल
 गगा दशन को पुण्योज्वल ।

लडके, बच्चे, बूडे, जवान,
 रोगी, भोगी, छोटे, महान,
 क्षेत्रपति, महाजन ओ किसान ।

दादा, नानी, चाचा, ताई,
 मौसा, फूफी, मामा, माई,
 मिल समुर, बहू, भायज, भाई !
 गा रही स्त्रियाँ मगल योतन,
 भर रहे तान नवयुवक मगन
 हँसते, बतलाते बालक गण ।

भ्रतलस, सिंगी, बेला घो' सन
 गोटे गोलूरू टंगे,—स्त्री जन
 पहनी छोटें, फुलवर, साटन ।
 बहु वाले लाल, हरे, नीले,
 बेगनी, गुलाबी, पट पीले,
 रंग-रंग के हलके, चटकीले ।

सिर पर है चंदवा दीदाफूल,
 कानो म भुमके रहे भून,
 बिरिया, गलचुमनी, वणफूल ।
 माधे के टीबे पर जन मन,
 नासा मे नपिया फुलिया, बन,
 बेसर, बुलाक, भूननी, लटकन ।

गल मे कटवा, बण्ठा, हंसली,
 उर मे हुमेल कल चम्पकली,
 जुगनी, चौकी, मूगे नक्ली ।
 बाँहो मे बहु बहुटे, जोदान
 बाजूबंद, पट्टी, बाँक सुपम,
 गहने ही गँवारिनो के धन ।

कँगने, पहुँची, मूदु पहुँचो पर,
 पिछला, मंभुवा भगला क्रमतर
 चूडियाँ फूल वी मठियाँ वर ।
 हथफूल पीठ पर वर के घर,
 उँगलियाँ मुंदरियो से सब भर,
 झारसी अँगूठे मे देकर—

वे कटि मे चल करघनी पहन,
 पाँवो मे पायजेब, भीभन,
 बहु छडे, कडे, बिछिया शोभन,—
 यो सोने चाँदी से भकृत,
 जाती वे पीतल गिलट खचित
 बहु भाँति गोदना से चित्रित ।

ये शत, सहस्र नर नारी जन
 लगते प्रहृष्ट सब, मुबत, प्रमन,
 है आज न नित्य कम बघन ।
 विश्वास मूड, नि सशय मन,
 वरने आये ये पुण्याजन,
 युग युग से माग भ्रष्ट जनगण ।

इनमें विश्वास भ्रमाघ, भ्रटल,
इनको चाहिए प्रकाश नवल,
भर सके नया जो इनमें बल ।

ये छोटी बस्ती में कुछ क्षण
भर गये आज जीवन स्पन्दन,—
प्रिय लगता जनगण सम्मेलन ।

(फरवरी '४०)

गगा

अब आधा जल निश्चल, पीला,
आधा जल चंचल औ' नीला,—
गीले तन पर मूढ़ सध्यातप
सिमटा रेशम पट सा ढीला ।
ऐसे सोने के साँझ प्रात
ऐसे चाँदी के दिवस रात,
ले जाती बहा कहीं गगा
जीवन के युग क्षण,—किस ज्ञात ।
विश्रुत हिम पवत से निगत,
किरणोज्वल चल बल ऊर्मि निरत,
यमुना, गोमती आदि से मिल
होती यह सागर में परिणत ।
यह भौगोलिक गगा परिचित,
जिसके तट पर बहु नगर प्रथित,
इस जड गगा से मिली हुई
जन गगा, एक और जीवित ।
वह विष्णुपत्नी, शिव मील स्रुता,
वह भीष्म प्रसू औ' जल सुता,
वह देव निम्नगा, स्वगगा,
वह सगर पुत्र तारिणी श्रुता ।
वह गगा यह केवल छाया,
वह लोक चेतना, यह माया,
वह आत्म वाहिनी ज्योति सरी,
यह भू पतिता, कचुक काया ।
वह गगा जन मन से निसत
जिसमें बहु बुदबुद युग नतित,
वह आज तरंगित ससति के
मत संकत को करने प्लावित ।
दिशि दिशि का जन मत वाहित कर,
वह बनी अकल अतल सागर
भर देगी दिशि पल पुलिनो में

वह नव जीवन की रज उवर !

अब नभ पर रेखा शशि शोभित,
गंगा का जल श्यामल कम्पित

लहरो पर चाँदी की किरणें
करती प्रकाशमय कुछ अकित ! (फरवरी '४०)

चमारो का नाच

अररर

मचा खूब हुल्लड हुडदग,
धमक धमाधम रहा मूदग,
उछल कूद, बकवाद ऋडप मे
खेल रही खुल हृदय उमग
यह चमार चौदस का ढग !

ठनक कसावर रहा ठनाठन,
धिरक चमारिन रही छनाछन,
भूम भूम वासुरी करिगा

बजा रहा, बेसुध सब हरिजन
गीत नृत्य के सग है प्रहसन !

मजलिस का मसखरा करिगा
बना हुग्रा है रग विरगा,
भरे चिरकुटो से वह सारी

देह हँसाता खूब लफगा,
स्वाँग युद्ध का रज बेडगा !

बँधा चाम का तवा पीठ पर
पहुँचे पर बढी का हण्टर,
लिये हाथ मे ढाल, टेडही

दुमुँहा सी बलखाई सुदर—
इतराता वह बन मुरलीधर !

जमीदार पर फबती कसता,
वाम्हन ठाकुर पर है हँसता,
बातो मे बक्रोवित काकु श्री

श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
बल काँटा को कह कलकता !

धमासान ही रहा है समर,
उस बलाने भामे भफसर,
गोला फटकर शूल उडा दे

छिपा हुमा वह उमे यही डर,
खोफ न मरने का रती भर !

'वाफा' उमका है साथी नट,
गदवे उस पर जमा पटापट,

उसे टोकता—'गोली खाकर
 आख जायगी क्यों वे नटखट ?
 भुन न जायगा भुनगे सा भट ?'
 'गोली खायी ही है !' चल हट !
 'कई—भाँग की !' वा, मेरे भट !
 'सच काका !' भगवान राम
 'सीसे की गोली !' 'रामधे ?' 'विकट !'
 गदका उस पर पड़ता चटपट !
 वह भी फौरन बढ़ी कसकर
 काका को देता प्रत्युत्तर,
 खेत रह गये जब सब रण मे
 वह तब निघडक गुस्से मे भर
 लडने को निकला था बाहर !
 लटटू उसके गुन पर हरिजन,
 छेड़ रहा वशी फिर मोहन,
 तिरछी चितवन से जन-मन हर
 इठला रही चमारिन छन छन,
 ठनक कसावर बजता ठन ठन !
 ये समाज के नीच अधम जन,
 नाच कूद कर बहलाते मन,
 वर्णों के पद दलित चरण ये
 मिटा रहे निज कसक औ' कुढन
 कर उच्छृंखलता उद्धतपन !
 अररर
 शार, हंसी, हुल्लड, हुडदग,
 धमक रहा धागडाग मृदग
 मार पीट बकवास भडप मे
 रग दिखाती महुषा मग
 यह चमार चौदस का ढग !

(जनवरी '४०)

कहारी का रुद्र नृत्य

रग-रग के चीरो से भर अग, चीन्वासा से,
 दैय शून्य मे अप्रतिहत जीवन की अभिलापा से,
 जटा घटा सिर पर यौवन की श्मश्रु छटा भ्रान्तन पर,
 छोटी बडी तूबिया, रंग रंग की गुर्तियाँ सज तन पर,
 हुलस नृत्य करते तुम भटपट धर पट्टु पद, उच्छृंखल
 आकाक्षा से समुच्छ्रमिगत जन मन का हिना धरातल !

फडक रहे अथर्व आवेश विवग मुद्राएं प्रवित,
 प्रखर लालसा की ज्वालाप्राप्ति अगुलियाँ कम्पित,
 उगण देग के तुम प्रगाढ जीवनात्लास-से निभर,

बहभार उद्दाम कामना के-से खुले मनोहर !
 एक हाथ में ताम्र डमरु धर, एक शिवा की कटि पर,
 नृत्य तरंगित रत्न पूर-से तुम जन- मन के सुखकर !
 बाघों के उमत्त घोष से, गायन स्वर से कम्पित
 जन इच्छा का गाढ चित्र वर हृदय पटल पर अचित्त,
 खोल गये ससार नया तुम मेरे मन में, क्षण भर
 जन सस्कृति का तिग्म स्फीत सौंदर्य स्वप्न दिखलाकर !
 युग-युग के सत्याभासों से पीडित मेरा अंतर
 जन मानव गौरव पर विम्वित मैं भावी चिंतन पर !
 (फरवरी '४०)

भारतमाता

भारतमाता

ग्रामवासिनी !

सेतो में फैला है श्यामल
 धूल भरा मैला सा अचल
 गंगा यमुना में भ्रांसू जल
 मिट्टी की प्रतिमा
 उदासिनी !

दैन्य जडित अपलक नत चितवन
 अधरो में चिर नीरव रोदन,
 युग युग के तम से विषण्ण मन,
 वह अपने घर में
 प्रवासिनी !

तीस कोटि सतान नग्न तन,
 अध क्षुधित, शोषित निरस्त्र जन,
 मूढ, अरुम्भ्य, अशिक्षित, निधन,
 नत मस्तक
 तरु तल निवासिनी !

स्वर्ण शस्य पर-पद-तल लुण्ठित,
 धरती सा सहिष्णु मन कुण्ठित,
 अर्धन कम्पित अधर मोन रिमत,
 गह्रु प्रसित
 शरदे-दु हासिनी !

चितित्त मकुटि क्षितिज तिमिराकित,
 नमित नयन नभ वाष्पाच्छादित,
 आनन शी छाया शशि उपमित,
 ज्ञान मूढ
 गीता प्रकाशिनी !

सफल आज उसका तप समय,
 पिता प्रहिसा स्तय सुशोपम,
 हरती जन मन भय, भव तम भ्रम,
 जन जननी
 जीवन विकासिनी ।

चरखा गीत

(जनवरी '४०)

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
 घूम घूम भ्रम भ्रम रे चरखा
 कहता मैं जन का परम मला
 जीवन का सीधा सा नुसखा—
 भ्रम, भ्रम, भ्रम ।

कहता 'हे अगणित दरिद्रगण !
 जिनके पास न धन, धन, वसन
 मैं जीवन उ-तुति का साधन—
 क्रम, क्रम क्रम ।

भ्रम, भ्रम, भ्रम,—
 धुन रुई, निधनता दा धुन,
 वात सूत, जीवन पट लो बुन,
 अकमण्य, सिर मत धुन, मत धुन,
 धम, धम, धम ।

नग्न गात यदि भारत मा का,
 तो खादी समद्वि गी रावा,
 हरो दश की दरिद्रता का
 तम, तम, तम ।'

भ्रम, भ्रम, भ्रम—
 कहता चरखा प्रजात त्र स
 मैं कामद हूँ सभी मात्र स ,
 कहता हूँस आधुनिक यत्र से
 नम नम, नम ।'

सेवक पालक शोषित जन का
 रक्षक मैं स्वदेश के धन का,
 बातो है काटो तन मन का
 भ्रम भ्रम, भ्रम ।'

(दिसम्बर '३९)

प्राप्त्या / १४९

महात्माजी के प्रति

निर्वाणो-मुख आदशों के अतिम दीप शिखोदय । —
जिनकी ज्योति छटा के क्षण मे प्लावित आज दिगचल,—
गत आदशों का अभिभव ही मानव आत्मा की जय,
अत पराजय आज तुम्हारी जय स चिर लोकोज्ज्वल ।

मानव आत्मा के प्रतीक । आदशों से तुम ऊपर,
निज उद्देश्यों से महान, निज यश से विशद, चिर तन,
सिद्ध नहीं, तुम लोक सिद्धि के साधन बने महत्तर,
विजित आज तुम नर वरेण्य, गणजन विजयी साधारण ।

युग युग की सस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव सस्कृति का शिलायाम करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगो का वैभव पाहन—
पदाघात स माह मुक्त हो गया आज जन अंतर ।

दलित देश के दुदम नेता, हे ध्रुव, धीर, धुरधर,
आत्मशक्ति से दिया जाति शव को तुमने जीवन बल,
विश्व सम्यता का होना था नखशिक्ष नव रूपांतर ।
रामराज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल ।

विकसित व्यक्तिवाद के मूल्यों का विनाश था निश्चय,
वद्ध विश्व सामंत काल का था केवल जड खडहर
हे भारत के हृदय । तुम्हारे साथ आज निःसशय
चूण हो गया विगत सास्कृतिक हृदय जगत का जजर ।

गत सस्कृतियों का, आदशों का था नियत पराभव,
वग व्यक्ति की आत्मा पर थे सौध' धाम जिनके स्थित,
ताड युगो के स्वण पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव सस्कृति आज हो रही निमित्त ।

किये प्रयोग नीति सत्यो के तुमने जन जीवन पर,
भावादश न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित,
अधोमूल अश्वत्थ विश्व, शाब्बाए सस्कृतियाँ वर
वस्तु विभव पर ही जनगण का भाव विभव अवलम्बित ।

वस्तु सत्य का करते भी तुम जग मे यदि आवाहन,
सबसे पहले विमुख तुम्हारे होता निधन भारत,
मध्य युगो की नैतिकता म पोषित शोषित जनगण
बिना भाव-स्वप्नो को परखे कब ही सकते जाग्रत ?

सफल तुम्हारा सत्यावेपण, मानव सत्यावेपक ।
धर्म नीति के मान अचिर सब, अचिर शास्त्र, दशन मत,
शासन, जनगण तत्र अचिर युग स्थितियाँ जिनकी प्रेरक,
मानव गुण, भव रूप नाम होत परिवर्तित युगपत ।

पूण पुरुष, विकमित मानव तुम जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त हुए तुम मुक्त हुए जन हे जग वद्ध महात्मन ।
देख रहे मानव भविष्य तुम मनश्चक्षु बत अपलक
धय तुम्हारे श्री चरणा स धरा आज चिर पावन ।

(दिसम्बर ३६)

राष्ट्र गान

जन भारत है ।
भारत है ।

स्वर्ग स्तम्भवत् गौरव मस्तक
उन्नत हिमवत् ह,
जन भारत है
जाग्रत भारत है ।

गगन चुम्बि विजयी तिरग ध्वज
इन्द्रचापवत् है,
कोटि कोटि हम श्रमजीवी सुत
सम्भ्रम युत नत है,
सब एक मत, एक ध्येय रत,
सब श्रेय प्रत है
जन भारत है,
जाग्रत भारत है ।

समुच्चरित शत शत कण्ठा से
जन युग स्वागत है,
सिन्धु तरंगित, मलय श्वसित,
गगाजल ऊर्मि निरत है,
शब्द इन्दु स्मित अभिन दन हित,
प्रतिध्वनित पवत है
स्वागत है स्वागत है,
जन भारत है,
जाग्रत भारत है ।

स्वर्ग खण्ड पड ऋतु परिणमित,
आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
कुसुमित फल द्रुम पिक कल कूजित,
उदर, अभिमत है,
दश दिशि हरित शस्य श्री हवित
पुलक राशिवत् है,
जन भारत है,
जाग्रत भारत है ।

जाति घम मत, वग श्रेणि शत,
नीति रीति गत है
मानवता म सबल समागत
जन मन परिणत है,
अहिंसास्त्र जन का मनुजोचित
चिर अप्रतिहत है,

बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत है,
जन भारत है,
जाग्रत भारत ह ।

किरण केलि रत रक्त विजय ध्वज
युग प्रभातवत् है,
कीर्ति स्तम्भवत् उन्नत मस्तक
प्रहरी हिमवत है,
पद तल छु शत फैनिलोर्मि फन
शेषीदधि नत ह,
वग मुक्त हम श्रमिक कृपक जन
चिर शरणागत है,
जन भारत है,
जाग्रत भारत है ।

(जनवरी '४०)

ग्राम देवता

राम राम,

हे ग्राम देवता, भूति ग्राम ।

तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूणकाम,
शिर पर शाभित वर छत्र तडित स्मित धन श्याम
वन पवन ममरित व्यजन, अन फल श्री लताम ।

तुम कोटि बाहु, वर हलधर, वप वाहन बलिष्ठ,
मित अशन, निर्वसन, क्षीणादर, चिर सौम्य शिष्ट,
शिर स्वण शस्य मजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्बुद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कमनिष्ठ ।

पिक वयनी मधुश्रुतु से प्रति वत्सर अभिनदित,
नव प्राञ्ज मजरी मलय तुम्हें करता अपित,
प्रावृट म तव प्रागण धन गजन से ह्वित,
मरकत कल्पित नव हरित प्रगोहो मे पुस्तकित ।

शशि मुखी शन्द करती परित्रमा कुद स्मित,
वणी मे लोमे कास कान म कुई लसित,
हिम तुमको करता तुहिन मोतिया से मृपित,
बहु सोन वाक युग्मो स तव सरिसर कूजित ।

प्रभिराम तुम्हारा बाह्य रूप मोहित कवि मन,
नभ के नीलम सम्पुट म तुम भरवत शोभन ।
पर, ताल प्राज निज अन्तपुर के पट गावन
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव ! तुमने यह जन ।

राम राम

हे ग्राम देवता, रुढ़ि धाम ।

तुम स्थिर, परिवर्तन रहित, कल्पवत एक याम,
जीवन सधपण विरत, प्रगति पथ के विराम,
शिक्षक तुम, दस वर्षों स मैं सेवक, प्रणाम ।
कवि अल्प, उड़प मति, भव तित्तीर्ण,—दुस्तर अपार,
कल्पना पुत्र मैं, भावी द्रष्टा निराधार,
सौंदर्य स्वप्नचर,—नीति दण्डधर तुम उदार,
चिर परम्परा के रक्षक, जन हित मुक्त द्वार ।

दिवलाया तुमने भारतीयता का स्वरूप,
जन मर्यादा का स्रोत शूय चिर अघ कूप,
जग स अबोध, जानता न था मैं छाह धूप,
तुम युग - युग के जन विश्वासो का जीण स्तूप,
यह वही अवध । तुलसी की सस्कृति का निवास ।
श्री राम यही करते जन मानस मे विलास ।
अह, सतयुग के खंडहर का यह दयनीय ह्लास ।
वह अकथनीय मानसिक दैय का बना ग्रास । ।

ये श्रीमानो के भवन आज साकेत धाम ।
सयत तप के आदश बन गये भोग काम ।
आराधित सत्त्व यहाँ, पूजित धन, वश नाम ।
यह विकसित व्यक्तिवाद की सस्कृति । राम राम । ।

श्री राम रहे सामंत काल के ध्रुव प्रकाश,
पशुजीवी युग में नव कृपि सस्कृति के विकास,
कर सका मध्य युग नहीं जनो का तम विनाश,
वे रहे सनातनता के तब मे नीत दास ।

पशु युग मे थे गणदेवो के पूजित पशुपति,
थी रुद्रचरो से कुण्डित कृपि युग की उन्नति ।
श्री राम रुद्र की शिव मे कर जन हित परिणति,
जीवित कर गय अहत्या को, थे सीतापति ।

वाल्मीकि बाद आये श्री व्यास जगत वदित,
वह कृपि सस्कृति का चरमोन्नत युग था निश्चित,
बन गये राम तब कृष्ण, भेद, माना का मित,
वभव युग की वशी स कर जन मन मोहित ।

तब से युग युग के हुए चित्रपट परिवर्तित
तुलसी ने कृपि मन युग अनुरूप किया निर्मित,
खो गया सत्य का रूप, रह गया नामामत,
जन समाचरित वह सगुण बन गया आराधित ।

गत सन्निय गुण बन रुढ़ि रीति के जाल गहन
कृपि प्रमुख देश के लिए हो गये जड बंधन,
जन नहीं यत्र जीवनोपाय के अब वाहन,
सस्कृति के केन्द्र न वग अधिप, जन साधारण ।

बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत ह,
जन भारत ह,
जाग्रत भारत ह ।

किरण केलि रत रपत विजय ध्वज
युग प्रभातवत ह,
कीर्ति स्तम्भवत जनत मस्तक
प्रहरी हिमवत् ह,
पद तल छ शत फेनिलोमि फन
शेपोदधि नत ह,
वग मुक्त हम श्रमिक वृषक जन
चिर शरणागत ह,
जन भारत ह,
जाग्रत भारत हे ।

(जनवरी '४०)

ग्राम देवता

राम राम,
हे ग्राम देवता, भूति ग्राम ।
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूणवाम,
शिर पर शोभित वर छत्र तडित स्मित घन श्याम
वन पवन ममरित व्यजन, अत फल श्री ललाम ।

तुम काटि बाहु, वर हलधर, वृष बाहन बलिष्ठ,
मित अशन, निवसन, क्षीणादर, चिर सौम्य क्षिष्ट,
शिर स्वण गस्य मजरी मुकुट, गणपति वरिष्ठ,
वाग्युद्ध वीर, क्षण क्रुद्ध धीर, नित कमनिष्ठ ।

पिब वयनी मधुश्रुतु स प्रति वत्सर अभिनदित,
नव आम्र मजरी मलय तुम्ह करता अपित,
प्रावट मे तव प्रागण घन गजन से हृषित,
मरकत कल्पित नव हरित प्ररोहो मे पुलकित ।

शशि मुखी शरद करती परि
वणी म खोसे कांस वान
हिम तुमका करता तुहिन
बहु सोन काक युग्मा से

अभिराम तुम्हारा बाह्य रूप, मो
नभ के नीलम सम्पुट मे पुन
पर, खाल आज निज अत पुर
चिर मोह मुक्त कर दिया, देव

राम राम,
 हे प्राग दव, सा हृदय धाम,
 ध्रुव जन स्वातन्त्र्य युद्ध की जग म धूम धाम ।
 उद्यत जनगण युग प्राप्ति के लिए वीर लाम
 तुम रुढ़ि रीति की सा भ्रमीम सो चिर विराम ।
 यह जन स्वातन्त्र्य नहीं, जनक्य का वाहक रण
 यह भ्रम राजनीतिक न, सांस्कृतिक सघपण ।
 युग-युग की लण्ड मनुजता, दिग्गि दिशि ध जनगण
 मानवता म मिल रह — ऐतिहासिक यह क्षण ।
 नव मानवता म जाति वग हाग सब क्षय,
 राष्ट्रा ध युग वत्तों परिधि म जग की लय ।
 जन ध्राज अहिंसक होंगे बल स्नही सहृदय
 हिंदू ईसाई मुगलमान,—मानव निश्चय ।
 मानवता ध्रुव तब दस काल के थी प्राश्रित,
 ससृष्टियाँ सबल परिस्थितिया स थी पीडित
 गत दस काल मानव के बल न ध्राज विजित
 सब ध्रुव विगत नैतिकता मनुष्यता विकसित ।
 छायाएँ हैं ससृष्टियाँ मानव की निश्चित
 यह केन्द्र परिस्थितिया के गुण उमम विम्बित,
 मानवी चेतना खान युगा के गुण कवलित
 ध्रुव नव ससृष्टि के वसनो स हागी भूपित ।
 विश्वास, धम ससृष्टियाँ, नीति रीतियाँ गत
 जन सघपण म होगी ध्वस लीन, परिणत,
 वधन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहन
 नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत ।

राम राम

हे प्राग दवता, रुढ़िधाम ।
 तुम पुरुष पुरातन, दव सनातन पूण काम
 जडवत, परिवतन शूय, कल्प शत एक धाम,
 शिक्षक हा तुम, मैं शिष्य, तुम्ह शत शत प्रणाम ।
 (जनवरी '४०)

सन्ध्या के बाद

सिमटा पल साँझ की लाली
 जा बठी ध्रुव तर शिल्लरो पर
 ताम्रपण पीपल स, शतमुख
 भरते चंचल स्वर्णिम निभर ।
 ज्योति स्तम्भ सा धँस सरिता मे
 सूय क्षितिज पर होता धोभल
 बहद जिहा विश्लथ कँचुल सा
 लगता चितकबरा गगाजल ।

उच्छिष्ट गुणों का आज सनातनवत् प्रचलित,
 बन गयी चिरन्तन रीति नीतियों, स्थितियों मृत !
 गत ससृष्टियों की विकसित बग व्यक्ति आश्रित,
 तब बग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित !
 प्रति मानवीय का निश्चित विनमित व्यक्तिवाद
 मनुजा में जिसने भरा दय पगु का प्रमाद,
 जन जीवा बना न विशद, रहा यह निराह्लाद,
 विकसित नर पर भ्रमवाद नहीं, जन गुण विनाद !
 तब या न वाप्य विद्युत का जग में हुमा उदय,
 ये मनुज यत्र, युग पुरुष सदृश हस्त बलमय,
 अब यत्र मनुज के पर पद बल, सबक समुदय,
 सामत मान अब व्यय, समद्वि विदव प्रतिशय !
 अब मनुष्यता का नैतिकता पर पानी जय,
 गत बग गुणा को जा ससृष्टि में होना लय,
 देशा राष्ट्रा को मानव जग बनना निश्चय,
 अंतर जग को फिर लेना बहिजगत आश्रय !

राम राम,

है ग्राम्य देवता यथा नाम !

शिशुन हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम !
 विजया, महामा, ताडी, गाँजा पी सुबह काम
 तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग स न काम !
 पण्डित, पण्डे, घोभा, मुखिया घौ' साधु सन्त
 दिखलात रहते तुम्हें स्वर्ग अपवर्ग पथ,
 जो था, जो है, जो होगा,—सब लिख गये ग्रथ,
 विज्ञान ज्ञान से बडे तुम्हारे मन्त्र तत्र !
 युग युग स जनगण, देव ! तुम्हारे पराधीन,
 दारिद्र्य दुख के बदम भ कृमि सदश लीन !
 बहु रोग शोक पीडित, विद्या बल बुद्धि हीन,
 तुम रामराज्य के स्वप्न देखते उदासीन !
 जन अमानुषी आदर्शों के तम स कबलित,
 माया उनको जग, मिथ्या जीवन देह अनित,
 वे चिर निवृत्ति के भोगी,—त्याग विराग विहित,
 निज आचरणों में नरक जीवियों तुल्य पतित !
 वे देव भाव के प्रेमी,—पशुमा से कुत्सित,
 नैतिकता के पोषक—मनुष्यता से वंचित
 बहु नारी सेवी,—पतिव्रता ध्येयी निज हित,
 वैषम्य विधायक—बहु विवाह वादी निश्चित !
 सामाजिक जीवन के अयोग्य, ममता प्रधान,
 सघषण विमुख, अटल उनको विधि का विधान,
 जग से गलित वे, पुनजम का उह ध्यान,
 मानव स्वभाव के झोही, श्वारों के समान !

राम राम,

हे ग्राम देव, लो हृदय धाम,
अब जन स्वातंत्र्य युद्ध की जग मे धूम धाम ।
उद्यत जनगण युग श्रांति के लिए बाध लाम,
तुम रुद्धि रीति की खा अफीम लो चिर विराम ।
यह जन स्वातंत्र्य नहीं, जनैक्य का वाहक रण,
यह अथ राजनीतिक न, सांस्कृतिक सघपण ।
युग युग की खण्ड मनुजता, दिशि दिशि के जनगण
मानवता मे मिल रहे,—ऐतिहासिक यह क्षण ।
नव मानवता मे जाति बग होंगे सब क्षय,
राष्ट्रो के युग वृत्ताश परिधि मे जग की लय ।
जन आज अहिंसक, होंगे कल स्नेही सहृदय,
हिंदू, ईसाई, मुसलमान,—मानव निश्चय ।
मानवता अब तक देश काल के थी आश्रित,
संस्कृतियाँ सकल परिस्थितियों से थी पीडित,
गत देश काल मानव के बल से आज विजित,
सब खव विगत नतिकता मनुष्यता विकसित ।
छायाएँ हैं संस्कृतिया मानव की निश्चित
बह केन्द्र, परिस्थितिया के गुण उसमे बिम्बित,
मानवी चेतना खोल युगो के गुण बवलित
अब नव संस्कृति के वसनो स होगी भूषित ।
विश्वास, धर्म, संस्कृतिया, नीति रीतियाँ गत
जन सघपण मे होगी ध्वस, लीन, परिणत,
बचन विमुक्त हो मानव आत्मा अप्रतिहत
नव मानवता का सद्य करेगी युग स्वागत ।

राम राम

ह ग्राम देवता, रुद्धिधाम ।
तुम पुरुष पुरातन, देव सनातन पूण काम,
जडवत्, परिवर्तन शून्य, कल्प शत एक याम,
शिक्षक हा तुम, मैं शिष्य, तुम्ह शत शत प्रणाम ।
(जनवरी '४०)

सन्ध्या के बाद

सिमटा पल साँझ की लाली
जा बैठी अब तर शिखरो पर
ताम्रपण पीपल से, शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निम्बर ।
ज्योति स्तम्भ सा घँस सरिता मे
सूय क्षितिज पर होता ओभल
बहद जिहा विश्लथ कंचुल - सा
लगता चिनकबरा गगाजल ।

धूपछाँह के रंग की रेतो
 अनिल ऊमियो म सर्पाकित,
 नील नहरियो मे लोहित
 पीला जल रजत जलद मे बिम्बित ।
 सिक्ता, सलिल, समीर सदा स
 स्नेह पाग मे बँधे समुज्ज्वल,
 अनिन पिघलकर सलिल, मलिन
 ज्यो गति द्रव हो बन गया लवापन !

शस घण्ट बजते मंदिर मे
 लहरो म होता लय बम्पन,
 दीप गिला सा ज्वलित पलदा
 नभ मे उठकर करता नीराजन !
 तट पर बगुलो - सी बूझाएँ
 विघवाएँ जप ध्यान मे मगन,
 म घर घाग म बहता

जिनवा अदृश्य गति अंतर रोदन ।
 दूर तमस रेखाओ - सी,
 उठते पखा की गति सी चित्रित
 सोन खगो की पाति
 आद्र ध्वनि म नीरव नभ करती मुखरित ।
 स्वण चूण - सी उडती गोरज
 विरणो की बादल - सी जलकर,
 सनन् तीर सा जाता नभ मे
 ज्योतिर पखो कण्ठो का स्वर ।

लोटे खग, गायेँ घर लौटी,
 लोटे कृपक श्रात दलय डग घर
 छिपे गृहो मे म्लान चराचर
 छाया भी हो गयी अगोचर,
 लोट पठ से व्यापारी भी
 जाते घर, उस पार नाव पर,
 ऊँटो, घोडो के सँग बैठे
 खाली बोरो पर, हुक्का भर ।
 जाडो की सूनी द्वाभा मे
 झूल रही निशि छाया गहरी,
 डूब रहे निष्प्रभ विषाद मे
 खेत बाग, गह तट, तट, लहरी ।
 बिरहा गात गाडी वाले,
 भूक - भूक कर लडते कूकर,
 हुआ करते सिपार
 देते विपणन निशि बेला को स्वर ।
 माली की मंडई स उठ,
 नभ के नीचे नभ सी घूमाली

म द पवन मे तिरती
 नीली रशम की सी हलकी जाली ।
 बत्ती जला दुकानो मे
 बैठे सब वस्त्रे के व्यापारी,
 मोन मद भाभा म
 हिम की ऊँघ रही लम्बी अंधियारी ।
 पुभा अधिक देती है
 टिन की ढबरी, कम करती उजियाला,
 मन स षड भवसाद थाति
 आलो के आगे बुनती जाला ।
 छोटी - सी बस्ती के भीतर
 लेन देन के घोथे सपने
 दीपक के मण्डल मे मिलकर
 मँडराते घिर सुख दुख अपन ।

कँप कँप उठते लो के सँग
 कातर उर श्रदन, मूक निराशा,
 क्षीण ज्योति ने चुपके ज्यो
 गोपन मन को दे दी हो भाषा ।
 लीन हो गयी क्षण मे बस्ती,
 मिट्टी खपरे के घर आगन,
 भूल गये लाला अपनी सुधि,
 भूल गया सब ब्याज, मूलधन ।
 सकुची सी परचून किराने की ढेरी
 लग रहा तुच्छतर,
 इस नीरव प्रदोष मे आकुल
 -उमड रहा अंतर जग बाहर ।
 अनुभव करता लाला का मन,
 छोटी हस्ती का सस्तापन
 जाग उठा उसमे मानव,
 श्री' असफल जीवन का उत्पीडन ।

दैय दुख अपमान ग्लानि
 घिर क्षुधित पिपासा, मृत अभिलाषा,
 बिना आय की क्लान्ति बन रही
 उसके जीवन की परिभाषा ।
 जड अनाज के ढेर सदश ही
 वह दिन - भर बैठा गद्दी पर
 बात बातपर झूठ बोलता
 कौडी की स्पर्धा मे मर मर ।
 फिर भी क्या कुटुम्ब पलता है ?
 रहते स्वच्छ सुघर सब परिजन ?
 बना पा रहा वह पक्का घर ?
 मन मे सुख है ? जुटता है धन ?

खिसक गयी कंधो से कंधी
 ठिठुर रहा अब सर्दी में तन,
 सोच रहा बस्ती का बनिया
 धार विधशता का निज कारण ।
 शहरी बनियो सा वह भी उठ
 क्यों बन जाता नहीं महाजन ?
 रोक दिये हैं किसने उसकी
 जीवन उन्नति के सब साधन ?
 यह क्या सम्भव नहीं
 व्यवस्था में जग की कुछ हो परिवर्तन ?
 कम और गुण के समान ही
 सकल आय व्यय का हो वितरण ?
 घुसे धरौंदो में मिट्टी के
 अपनी अपनी सोच रहे जन,
 क्या ऐसा कुछ नहीं,
 फूँक दे जो सबसे सामूहिक जीवन ?
 मिलकर जन निर्माण करें जग,
 मिलकर भोग करें जीवन का,
 जन विमुक्त हो जन शोषण से,
 हो समाज अधिकारी धन का ?
 दरिद्रता पापो की जननी,
 मिटें जना के पाप, ताप, भय,
 सुंदर हो अधिवास, वसन, तन
 पशु पर फिर मानव की हो जय ?
 व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
 दोषी जन के दुख कनेश की,
 जन का श्रम जन में बँट जाये,
 प्रजा सुखी हो देश दश की ।
 टूट गया वह स्वप्न वणिक का,
 आयी जब बुढ़िया बेचारी,
 आध पाव आटा लेने,—
 लो, लाला ने फिर डण्डी मारी ।
 चीख उठा घुघू डालो में
 लोगो ने पट दिये द्वार पर,
 निगल रहा बस्ती को धीरे,
 गाढ अलस निद्रा का अजगर !
 (दिसम्बर '३६)

खिडकी से

पूस निगा का प्रथम प्रहर खिडकी से बाहर
 दूर क्षितिज तक स्तब्ध आँसु बन सोया क्षणभर

दिन का भ्रम होता पूना न तण तराग्नो पर
चांदी मढ दी है, भू को स्वप्नो स जडकर ।
चार चद्रिवातप से पुलकित निखिल धरातन
चमक रहा है, ज्यो जल म विम्बित जग उज्ज्वल ।

स्पष्ट देखते,—खिडकी की जाली मे विजडित
बटहल, लीची, आम,—धून गेंदुर से कम्पित,
फाटव 'श्री' हाते के खम्भे, बगिया के पथ,
भाधी जगत बुए की, कुरिया की छाजन श्लय,
अस्पताल का भाग, मेहराबे, दरवाजे,
स्फटिक सदश जो चमक रहे चूने से ताजे ।
'श्री' टेढी मेढी दिगत रेखा के ऊपर
पास पास दो पेड ताड के खडे मनाहर ।

भाधी खिडकी पर अगणित ताराग्नो से स्मित
हरित धरा के ऊपर नीलाम्बर छायाकित ।
कचपचिया (डुत्तिका) सामने शोभित सुन्दर
मोती के गुच्छे सी भरणी ज्यो त्रिकोण वर ।
पास रोहिणी, प्रिय मिलनातुर बाँह खोलकर,
सेंदुर की बँदी दे, जुडवो का गोदी भर ।
लुब्ध दृष्टि लुब्धक, समीप ही, छोड रहा शर
आदि काल से मृग पर मृगशिर सहज मनोहर ।

उधर जडे पुखराज लाल स गुरु श्री मंगल
साथ साथ, जिनमे अवश्य गुरु सबसे उज्ज्वल ।
हस्ता है प्रत्यक्ष कठिन वशिष्क का मिलना,
वह शायद आर्द्रा, कहता हिमजल सा हिलना ।
ज्योति फेन सी स्वगगा नभ बीच तरंगित,
परियो की माया सरसी सी छायालोकित,
ज्वलित पुज ताराग्नो के वाष्पो से सस्मित
नीलम के नभ मे रत्नप्रभ पुल सी निर्मित ।
खोज रहा हू कहाँ उदित सप्तपि गगन मे
अरुघती को लिये साथ विस्मित-से मन मे ।
प्रश्न चिह्न से जो अनादि से नभ मे अकित,
उत्तर मे स्थिर ध्रुव की ओर किय चिर इगित—
पूछ रहे हो ससति का रहस्य ज्यो अविदित,
'क्या है वह ध्रुव सत्य ? गहन नभ जिससे ज्योतित ।'

ज्योत्सना मे विकसित सहस्रदल मू पर अम्बर
शाभित ज्यो लावण्य स्वप्न अपलक नयनो पर ।
यह प्रतिदिन का दश्य नही छल से वातायन
आज खुल गया अप्सरिया के जग मे मोहन ।
चिर परिचित माया बल से बन गये अपरिचित
निखिल वास्तविक जगत कल्पना से ज्यो चित्रित ।
आज असुन्दरता, बुरूपता मू से ओम्बर—,
सब कुछ सुन्दर ही सुन्दर, उज्ज्वल ही उज्ज्वल ।

एक शक्ति से, कहते, जग प्रपञ्च यह विकसित,
 एक ज्योति कर से ममस्त जड चेतन निमित्त,
 सच है यह आलोक पाश में बंधे चराचर
 आज आदि कारण की ओर खींचते अंतर !
 क्षुद्र आत्म पर भूल, भूत सब हुए समवित्त,
 तूण, तह से तारालि—सत्य है एक अखण्डित !
 मानव ही क्यों इस असीम समता से वंचित ?
 ज्योति भीत, युग युग से तमस विमूढ, विभाजित !

(दिसम्बर '३६)

रेखाचित्र

चाँदी की चौड़ी रेती, फिर स्वर्णिम गंगा धारा,
 जिसके निश्चल उर पर विजडित रत्न छाये नभ सारा !

फिर बालू का नासा लम्बा ग्राह तुण्ड-सा फला,
 छितरी जल रेखा—कछार फिर गया दूर तक मैला !
 जिस पर मछुप्रो की मँडई, औ' तरबूजो के ऊपर,
 बीच बीच में, सरपत के मूठे खग - से खोले पर !

पीछे, चित्रित विटप पाँति लहरायो साध्य क्षितिज पर
 जिससे सटकर नील धूम्र रेखा ज्यो विंची समातर !
 वह पुच्छ से जलद पख अम्बर में बिखरे सुदर
 रग रग की हलकी गहरी छायाएँ छिटकाकर !

सबसे ऊपर निजन नभ में अपलक सध्या तारा,
 नीरव औ' नि सग, खोजता-सा कुछ, चिर पयहारा !
 साँभ,—नदी का मुँदा तट, मिलता है नहीं किनारा,
 रोज रहा एकाकी जीवन साथी, स्नेह सहारा !

(जनवरी '४०)

दिवा स्वप्न

दिन की इस विस्तृत आभा में, खुली नाव पर
 आर पार के दृश्य लग रहे साधारणतर !
 केवल नील फलक सा नभ, सँकत रजतोज्ज्वल,
 और तरल बिल्वीर वेशमतल मा गंगा जल—

चपल पवन के पदाचार से अहरह स्पदिन—
 पा त हास्य से अंतर को करते आह्लादित !
 मुक्त स्निग्ध उल्लास उमड जल हिलकीरो पर
 नृत्य कर रहा, टकरा पुलकित तट छोरो पर !

यह संकन तट पिपल पिपल यदि बन जाता जल
 यह सक्ती यदि घरा दिग्व
 यदि न डुबाता जल, रह तर
 तो मैं नाव छोड, गंगा पर

भ्राज लोटता, ज्योति जडित सहरो संग जी भर ।
 किरणो स खेलता मिचौनी में लुक छिपकर,
 सहरो के झल मे फेन पिरोता सुंदर,
 हँसता कल-कल मत्त नाचता, भूल पग भर ।

कसा सुंदर होता बदन न होता गीला
 लिपटा रहता सलिल रेशमी पट सा ढीला ।

यह जल गीला नहीं, गलित नभ केवल चचल
 गीला लगता हमे न भीगा हुआ स्वयं जल ।

हाँ चित्रित से लगते तण - तण मू पर बिम्बित
 मेरे चल पद चूम घरणि हो उठती कम्पित ।

एक सूर्य होता नभ में, सौ मू पर विजडित
 सिहर सिहर क्षिति मास्त को करती आलिंगित ।

निशि मे ताराग्रो से होती घरा जब खचित
 स्वप्न देखता स्वर्ग लोक म में ज्योत्स्ना स्मित ।

गुन के बल चल रही प्रतनु नौका चढाव पर
 बदल रहे तट दृश्य चित्रपट पर ज्यो सुंदर ।

वह जल से सटकर उडते हैं चटुल पनेवा
 इन पक्षो की परियो को चाहिए न खेवा ।

दमक रही उजियारी छाती करछौंह पर
 श्याम घनो से झलक रही बिजली क्षण क्षण पर ।

उधर कगारे पर अटका है पीपल तख्वर
 लम्बी, टेनी जडें जटा सी छितरी बाहर ।

लोट रहा सामने सूस रनडुब्बी सा तिर,
 पूछ मार जल म चमकीली करवट खा फिर ।

सोन कोक के जोडे बालू की चादो पर
 चाचो से सहला पर क्रीडा करते सुखकर ।

बँठ न पाती, चक्कर देनी देव दिलाई
 तिरती सहरो पर सफेद काली परछाई ।

लो मछरगा उतर तीर-सा नीचे क्षण म
 पकड तडपती मछली को उड गया गगन मे ।

नरकुल की चोचें ले चाहा फिरते फर फर,
 मँडराते सुरखाब व्योम मे आत नाद कर,—

काले, पीले खँरे, बहुरंगे चित्रित पर
 चमक रहे बारी-बारी स्मित आभा म भर ।

वह, टीले के ऊपर तूबी सा बबूल पर,
 सरपत का घासला बया का लटका सुंदर ।

दूर उधर, जगल मे भीटा एक मनोहर
 दिखलायी देता है वन देवो का सा घर,

जहाँ खेलते छायातप मारत तर ममर
 स्वप्न देखती विजन शक्ति म मौन दोपहर ।

वन की परियाँ धूपछाह की साडी पहने
 जहाँ विचरती चुनने ऋतु कुसुमो के गहने ।

वहाँ मत्त करती मन नव मुकुली की सौरभ,
गुजित रहता सतत द्रुमो का हरित श्वसित नभ ।
वहाँ गिलहरी दौडा करती तर डाला पर
चंचल लहरी सी, भुदु रोमिल पूछ उठाकर
घोर वय विहँगो-कौटो के सीसो प्रिय स्वर
गीत वाद्य से बहलाते शोकाकुल अंतर ।

वही कही जी करता, मैं जाकर छिप जाऊँ
मानव जग के श्रदन से छुटकारा पाऊँ
प्रकृति नीड में व्योम खगो के गाने गाऊँ
अपने चिर स्नेहातुर उर की व्यथा मुलाऊँ ।

(जनवरी '४०)

सौन्दर्य कला

नव वसन्त की रूप राशि का ऋतु उत्सव यह उपवन,
सोच रहा हूँ, जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन ।
या यह बेचल प्रतित्रिया, जो वर्गों के सस्कृत जन
मन में जागृत करते, कुसुमित भ्रग, कण्ठवावृत मन ।

रग रग के खिले फ्लॉक्स करवीना, छपे डियाघस,
नत दूध ऐटिह्लिनम तितली सी पर्जी पाँपी सालस,
हूसमुख कण्डीटपट रेशमी चटकीले नैस्टरशम,
खिली स्वीट पी,—एबडस, फिल्लवास्केट, श्री' ब्लू बेटम ।

दुहरे कानेशस, स्वीट सुलतान सहज रोमाचित,
ऊँचे हॉली हॉक, लाकस्पर पुष्प स्तम्भ के शोभित,
फूले बहु मखमली, रेशमी, मृदुल गुलाबो के दल,
घबल मिसैज एडू कानेशो, ब्रिटिश क्वीन हिम उज्ज्वल ।

जोसेफ हिल, सनबस्ट पीत, स्वर्णिम लेडी हेल्डन,
ग्रैंड मुगल, रिचमण्ड, विकच ब्लैक प्रिंस नील लोहित तन,
फेअरी क्वीन, मारगेरेट मृदु वीलिमम शीन चिर पाटल
बटन रोज बहु लाल, ताअ्र माखनी रग के कोमल ।

विविध आयताकार, बग घटकोण क्यारिया सुपमित,
वतुल, अण्डावृत्ति नव रुचि से कटी छटी, दूर्वावृत,
त्रिभित्त से उपवन में शत रगो में आतप छाया,
सुरभि श्वसित मास्त, पुलकित कुसुमो की कम्पित काया ।

नव वसन्त की श्री शोभा का दपण सा यह उपवन,
सोच रहा हूँ, क्या विवर्ण जन जग से लगता शोभन ।
इस मटमली पृथ्वी ने सतरंगी रवि किरणो से
खीच लिये किस भाषा ब्रत से सब रँग आभरणो-से ?

गुग गुग से विन सूक्ष्म बीज कोषो स विकसित होकर
राशि राशि ये रूप रग मू पर हो रहे निछावर ।
जीवन ये भर सके नहीं मण्मय तन में धरती के,
सुदरता के सब प्रयोग सग रहे प्रकृति के फीके ।

जग विकास त्रम मे सुदरता कब की हुई पराजित,
 तितली पक्षी, पुष्प वग इसके प्रमाण हैं जीवित !
 हृदय नहीं इस सुदरता के, भावोन्मेष न मन मे
 अगो का उल्लास न चिर रहता, कुम्हलाना क्षण मे !
 हुआ सृष्टि मे बुद्ध हृदय जीवो का तभी पदापण,
 जड सुदरता को निसंग कर सका न अन्तम समपण !
 मानव उर मे भर ममत्व जीवो के जीवन के प्रति
 चिर विकास प्रिय प्रकृति देखती तब से मानव परिणति !

आज मानवी सस्कृतिया हैं वग धयन से पीडित,
 पुष्प पक्षियो - सी वे अपने ही विकास मे सीमित !
 इस विशाल जन जीवन के जग से हो जाति विभाजित
 व्यापक मनुष्यत्व से वे सब आज हो रही वचित !
 हृदय हीन, अस्तित्व मुग्ध ये वर्गों के जन निश्चित,
 वेश वसन भूपित बहु पुष्प वनस्पतियो-से शोभित !
 हुआ कभी सौदय कला युग अत प्रकृति जीवन मे,
 मानव जग से जाने को वह अब युग परिवर्तन मे !

हृदय, प्रेम के पूण हृदय से निखिल प्रकृति जग शासित,
 जीव प्रेम के सम्मुख रे जीवन सौदय पराजित !
 नव वसत की वग कला का दशन गृह यह उपवन,
 सोच रहा है विश्वी जन जग से लगता क्या शोभन !

(फरवरी '४०)

स्वीट पी के प्रति

कुल वधुओ सी अयि सलज्ज, सुकुमार !
 शयन कक्ष, दशन गृह की शृंगार !

उपवन के यरनो स पापित,
 पुष्प पात्र मे शोभित रक्षित,
 कुम्हलाती जाती हो तुम निज शोभा ही के भार !
 कुल वधुओ सी अयि सलज्ज सुकुमार !

सुभग रेशमी वसन तुम्हारे
 सुरंग, सुरुचिमय,—

अपलक रहते लीचन !

फूट फूट अगो स सारे
 सौरभ प्रतिशय

पुलकित कर देती मन !

ऊनत वग वन पर निभर,

तुम सस्कृत हो सहज सुपर,

धौ निश्चय वानस्पत्य धयन म

दोनों निर्विषय हो सुदर !

निबल शिराओ मे, मधु तन मे

बहती-युग युग से जीवन के सूदम रुधिर की धार ।
कुल वधुश्री सी भ्रिय सलज्ज, सुकुमार ।

मृदुल मलय के स्नेह स्पदा से
होता तन मे कम्पन,
जीवन के ऐश्वय हृष से
करता उर नित नतन—
केवल हास विलास मयी तुम
शोभा ही मे शोभन,
प्रणय कुज मे सकि प्रात
करती हो गोपन कूजन ।
जग मे चिर भ्रजात,
तुम्हे बांधे निकुज गह द्वार ।
कुल वधुश्री सी भ्रिय सलज्ज सुकुमार ।

हाम, न क्या आदोलित होता
हृदय तुम्हारा

सुन जगती का क्रदन ?
क्षुधित व्यथित मानव रोता
जीवन पथ हारा
सह दुसह उत्पीडन ।
छोड स्वण पिंजर
न निक्ल आश्रीणी बाहर
खोल वक्ष अवगुण्ठन ।
युग - युग से दुख कातर
द्वार खडे नारी नर
देते तुम्हें निमंत्रण ।

जग प्रागण मे क्या न करोगी तुम जन हित अभिसार ?

कुल वधुश्री सी भ्रिय सलज्ज, सुकुमार ।

क्या न बिछाश्रीणी जन पथ पर
स्नेह सुरभि मय
पलक पेंखडियो के दल ।
स्निग्ध दृष्टि से जन मन हर
भांचल से ठेक दोगी न झूल चय ?
जजर मानव पदतल ।
क्या न करोगी जन स्वागत
सस्मित मुख से ?
होने को । आज युगान्तर ?
शोपित दमित हो रहे जाग्रत,
उनके मुख से

समुच्छ्वसित क्या नही तुम्हारा अन्तर ?
क्या न, विजय से फूल बनोगी तुम जन उर का हार ?
कुल वधुश्री सी भ्रिय सलज्ज सुकुमार ।

हाय, नही करुणा ममता है मन मे वही तुम्हारे !

तुम्हें बुलाते
रोते गाते

युग युग से जन हारे !
ऊँची डाली से तुम दण भर
नही उतर सकती जन भू पर !

फली रहती
भूली रहती

शोभा ही के मारे !
बेवस हास हुलास मयी तुम !
बेवस मनोविलास मयी तुम !
विभव भोग उल्लास मयी तुम !
तुमको अपनाते के सारे
व्यय प्रयत्न हमारे !

वधिरा तुम निष्ठुरा,—जना की विफल सबल मनुहार !

कुल बधुमा सी प्रिय सलज्ज सुकुमार !

(फरवरी '४०)

कला के प्रति

तुम भाव प्रवण हो !

जीवन प्रिय हो, सहनशील, सहृदय हो, कोमल मन हो !
ग्राम तुम्हारा वास रूढियों का गढ़ है चिर जजर,
उच्च वस मर्यादा बेवस स्वर्ण - रत्नप्रभ पिजर !
जीण परिस्थितियाँ ये तुममे आज हो रही बिम्बित,
सीमित होती जाती हो तुम, अपने ही मे अवसित !
तुम्हें तुम्हारा मधुर शील कर रहा अज्ञान पराजित,
बृद्ध हो रही हो तुम प्रतिदिन, नही हो रही विकसित !

नारी की सुंदरता पर मैं हाता नही विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनन्दित !
विशद स्त्रीत्व का ही मैं मन मे करता हूँ नित पूजन,
जब आभा दही नारी आह्लाद प्रेम कर वषण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन !

तुममे सब गुण हैं तोडो अपने भय कल्पित बाधन
जड़ समाज के कदम स उठकर सरोज सी ऊपर
अपने अंतर के विकास स जीवन के दल दो भर !
सत्य नही बाहर नारी का सत्य तुम्हारे भीतर,
भीतर ही से करो नियंत्रित जीवन की, छोडो डर !

(दिसम्बर '३६)

स्त्री

यदि स्वयं बही है पथवी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दन पर दल मोत हृदय के स्तर
जब बिटनाती प्रणय हाकर
वह अमर प्रणय के सादस पर !

मादकता जग में बही अमर, वह नारी अमरों में सुगन्ध,
क्षण में प्राणों की पीढा हर
नव जीवन का दे सकती कर
वह अमरों पर घर मदिराघर !

यदि बही नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अन्दर,
वासनावत में डाल प्रसार
वह अघ गन में फिर दुस्तर
नर का दमेन सकती गरवर !

(जनवरी '४०)

प्राधुनिका

पशुओं से मृदु अम, पक्षियों में ल प्रिय रोमित पर,
श्वेतु बुसुमो से सुरग मुष्मिमय चित्र यस्त्र से सु दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, क्रीस्टिक, पीडर से कर मुल रजित,
अगराग, अयूटेक्स अलवतक से बन नल गिअ घोमित,
'सागर तल से मुक्ताफल, खानो से मणि उज्ज्वल'—
रजत स्वण में अचित तुम फिरती अक्सरि-सी चंचल !

सिद्धित तुम ससृष्ट युग के सत्याभासों में पोषित,
समवक्षिणी नरो की तुम, निज इन्द्र मूल्य पर गवित,
नारी की सौंदर्य मधुरिमा श्री महिमा से मण्डित,
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वचित !
प्रेम, दया, सहृदयता, नील, क्षमा, पर दुःख कातरता,
तुममें तप, सयम, सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता !

लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नतित,
तितली सी तुम फूल फूल पर मंडगती मधुमण हित !

माजारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म समपण,
तुम्हें सुहाता रग प्रणय, धन पद मद आत्म प्रदशन !

तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, माजारी,
प्राधुनिके, तुम नहीं अमर कुछ नहीं मिफ तुम नारी !
(फरवरी '४०)

मजदूरों के प्रति

नारी की सजा भुला, नरो के सग बैठ,
चिर जम सुहृद भी जन हृदयों में सहज पैठ,

जो बँटा रही तुम जग जीवन का काम काज
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज ।

सर से आचल खिसका है,—धूल भरा जूड़ा,—
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा,
हँसती बतलाती सहोदरा सी जन जन मे,
यौवन का स्वास्थ्य भलकता आतप-सा तन से ।

कुल वधू सुलभ सरक्षण से तुम हो वचित,
निज बधन खो, तुमने स्वतंत्रता की अर्जित ।
स्त्री नहीं, आज मानवी बन गयी तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अगो को छू अनिलातप पुलकित ।

निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल जनो के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम काज मे मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कचुकी को उतार
जग के हित खोल दिये नारी के हृदय द्वार ।

(फरवरी '४०)

नारी

हाथ, मानवी रही न नारी लज्जा से अवगुण्ठित,
वह नर की लालस प्रतिमा, शोभा सज्जा से निर्मित ।
युग-युग की वदिनी, देह की कारा मे निज सीमित,
वह अदृश्य अस्पश्य विश्व से, गृह पशु सी ही जीवित ।

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह मूल्य चम पर केवल उसका अर्कित,
अग अग उसका नर के वासना चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इगित सचालित, चिर पद लुण्ठित ।

वह समाज की नहीं इकाई,—शून्य समान अनिश्चित,
उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलम्बित ।
मुक्त हृदय वह स्नेह प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श सजा से वह हो जाती सहज क्लृप्तित ।

योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ।
द्वन्द्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हो विकसित ।

आज मनुज जग से मिट जाये कुत्सित, लिंग विभाजित
नारी नर की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानो पर स्थित ।
सामूहिक-जन भाव स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो सस्कृत ।

(दिसम्बर '३६)

द्वन्द्व प्रणय

धिक रे मनुष्य, तुम स्वच्छ, स्वस्थ, निश्चल चुम्बन
शक्ति कर सकते नहीं प्रिया के प्रधरो पर ?
मन मे लज्जित, जन से शक्ति, चुपके गोपन
तुम प्रेम प्रकट करते हो नारी से, कायर !

क्या गुह्य, क्षुद्र ही बना रहेगा, बुद्धिमान !
नर नारी का स्वाभाविक, स्वर्गिक आश्रयण ?
क्या मिल न सकेंगे प्राणो से प्रेमात प्राण
ज्यो मिलते सुरभि समीर, कुसुम अलि, लहर किरण ?

क्या क्षुधा तपा श्री स्वप्न जागरण सा सुन्दर
है नहीं काम भी नैसर्गिक जीवन द्योतक ?
वन जाता अमृत न देह-गरल छ् प्रेम अघर ?
उज्ज्वल करता न प्रणय सुवण, तन का पावक ?

पशु पक्षी से फिर सीखो प्रणय कला, मानव !
जो आदि जीव जीवन सत्कारो से प्रेरित,
लग युग्म गान गा करत मधुर प्रणय अनुभव,
मृग मिथुन शृङ्ग से अगो को कर महु प्रदित !

मत कहो मास की दुबलता, हे जीव प्रवर !
है पुण्य तीथ नर नारी जन का हृदय मिलन,
आनन्दित हीम्रो, गवित, यह जीवन का वर,
गौरव दा द्वन्द्व प्रणय को, पृथ्वी हा पावन !

(दिसम्बर '३६)

१९४०

समर भूमि पर मानव शानित से रजित निर्भीक चरण धर
अभिनन्दित हा दिग घोषित तोपा के गजन से प्रलयकर,
शुभागमन नव वष कर रहा, हालाडोला पर चढ दुधर,
वहद विमानो के पखो से बरसाकर विष वह्नि निरन्तर !
इधर अडा माम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रूढ़ शक्तियाँ क्रुद्ध दे रही युद्ध निमन्त्रण !
सत्य 'याय के बाने पहने सत्व लुब्ध लड रहे राष्ट्रगण,
सिंघु तरगा पर उठ गिर त्रय वित्रय स्पर्धा करती नतन !
धू धू करती वाष्प शक्ति, विद्युत ध्वनि करती क्षीण दिगन्तर
ध्वंस भ्रग करते विस्फोटक धनिव सम्पत्ता के गढ जजर !
तुमुल वर्ग सधर्म म निहित जनगण का भविष्य लोकोत्तर,
इन्द्रचाप पुल सा नव वरसर शोभित प्रलय प्रभ मेघा पर !
आओ हे दुषय वष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विग शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन !

(जनवरी '४०)

सूत्रधार

तुम घब, वस्त्र व्यवसाय कला के सूत्रधार,
बबर जन के तन स हर बल्लल चम भार,
तुमने आदिम मानव की हर नव द्वन्द्व लाज,
बन शीत ताप हित बवच, बचाया जन समाज !
तबली, चरखे, करघे से अब आधुनिक यत्र
तुम बने यत्र बल पर ही मानव लोक तत्र
स्थापित करने को अब मानवता का विकास
यत्रो के सग हुआ, सिखलाता न इतिहास !

जड नही यत्र वे भाव रूप सस्कृति द्योतक
वे विश्व शिराएँ, नितिल सम्भ्यता के पोषक !
रेडियो, तार औ' फोन,—वाष्प, जल वायु यान,
मिट गया दिशाबधि का जिनसे व्यवधान मान,—
घावित जिनमे दिशि दिशि का मन,—वार्ता, विचार,
मस्कृति, संगीत गगन मे भकृत निराकार !

जीवन सौदय प्रतीक यत्र जन के शिक्षक,
युग क्रांति प्रवक्तक औ भावी के पय दशक !
वे कृत्रिम, निर्मित नही, जगत क्रम मे विकसित,
मानव भी यत्र, विविध युग स्थितियो मे घषित !
दाशनिक सत्य यह नही—यत्र जड, मानवकृत,
वे हैं अमृत जीवन विकास की कृति निश्चित !

(फरवरी '४०)

सस्कृति का प्रश्न

राजनीति का प्रश्न नही रे आज जगत के सम्मुख,
अथ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख !
व्यथ सकल इतिहासो, विज्ञानो का सागर मथन
वहाँ नही युग लक्ष्मी, जीवन सुधा, इ-दु जन मोहन !

आज बहुत सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड मनुजता को युग युग की होना है नव निर्मित,
विविध जाति, वर्गों, घमों को होना सहज समचित,
मध्य युगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित !

जग जीवन के गतमुख नियमो मे स्वय प्रवर्तित,
मानव का अबचेतन मन हो गया आज परिवर्तित !
बाह्य चेतनाओ मे उसके क्षोभ क्रांति उत्पीडन,
विगत सम्भ्यता दत्त शून्य फणि-सी करती युग नतन !

व्यथ आज राष्टो का विग्रह औ तोपो का गजन,
रोक न सकते जीवन की गति शत विनाश आयोजन,
नव प्रकाश मे तमस युगो का होगा स्वय निमज्जित
प्रतिक्रियाएँ विगत गुणो की होगी शन पराजित !

(जनवरी '४०)

सांस्कृतिक हृदय

कृपि युग से वाहित मानव का सांस्कृतिक हृदय
 जो गत समाज की रीति नीतियों का समुदय,
 आचार विचारों में जो बहू देता परिचय,
 उपजाता मन में सुख दुख, आशा, भय, सशय,
 जो भले बुरे का ज्ञान हम देता निश्चित
 सामाजिक जगत में हुआ मनुज के वह निमित्त !
 उन युग स्थितियों का आज दृश्य पट परिवर्तित,
 प्रस्तर युग की सम्यता ही रही अब भवसित !
 जो अंतर जग था बाह्य जगत पर अबलम्बित
 वह बदल रहा युगपत युग स्थितियों से प्रेरित !
 बहु जाति धर्म श्री नीति कम में पा विकास
 गत सगुण आज लय होने की श्री नव प्रकाश
 नव स्थितियों के सजन से ही अब धर्म उदय
 बन रहा मनुज की नव आत्मा, सांस्कृतिक हृदय !
 (फरवरी '४०)

भारत ग्राम

सारा भारत है आज एक रे महा ग्राम !
 है मान चित्र ग्रामों के, उसके प्रथित नगर
 ग्रामीण हृदय में उनके शिक्षित संस्कृत नर,
 जीवन पर जिनका दृष्टिकोण प्राकृत, बबर
 वे सामाजिक जन नहीं, व्यक्ति हैं अहंकार !
 है वही क्षुद्र चेतना, व्यक्तिगत राग द्वेष,
 लघु स्वार्थ और अधिकार सत्त्व लक्षणा अशेष,
 आदश, अधविश्वास वही,—हा सम्यवेश,
 संचालित करते जीवन जन का क्षुधा काम !
 वे परम्परा प्रेमी, परिव्रतन से विभीत,
 ईश्वर परोक्ष से प्रस्त भाग्य के दास क्रीत,
 बून जाति श्रीति प्रिय उन्हें, नहीं मनुजत्व प्रीत,
 भव प्रगति माग में उनके पूण धरा विराम !
 लौकिक से नहीं अलौकिक स है उन्हें प्रीति,
 वे पाप पुण्य सत्रस्त, कम गति पर प्रतीति,
 उपचेतन मन से पीडित, जीवत उन्हें ईति,
 है स्वर्ग मुक्ति कामना, मृत्यु से नहीं काम !
 आदिम मानव करता अब भी जन में निवास
 सामूहिक सना का जिसकी न हुआ विकास,
 जन जीवी जन दारिद्र्य दुख के बने ग्राम,
 परवशा यहाँ की धर्म सती ललना ललाम !

जन द्विपद कर सके देश काल को नहीं विजित,
 वे वाष्प वायु यानो से हुए नहीं विकसित,
 वे वग जीव, जिनसे जीवन साधन अधिवृत्त,
 लालायित करते उन्हें वही घन, धरणि धाम ।

ललकार रहा जग को भौतिक विज्ञान आज
 मानव को निर्मित करना होगा नव समाज,
 विद्युत श्री' वाष्प करेंगे जन निर्माण काज,
 सामूहिक मगल ही समान समदृष्टि राम ।
 (दिसम्बर '३६)

स्वप्न और सत्य

आज भी सुन्दरता के स्वप्न हृदय में भरते मधु गुञ्जार,
 वग कवियों ने जिनको गूथ रचा भू स्वग, स्वर्ण ससार ।
 आज भी आदर्शों के सौध मुग्ध करते जन-मन अनजान,
 देश देशा के कालिदाम गा चुके जिनके गौरव गान ।
 मुहम्मद, ईसा, मूसा, बुद्ध के-द्र सस्कृतियों के, श्री राम,
 हृदय में श्रद्धा, सम्भ्रम, भक्ति जगाते विकसित व्यक्ति ललाम ।
 धर्म, बहु दशन नीति, चरित्र सूक्ष्म चिर का गाते इतिहास,
 व्यवस्थाएँ, सस्थाएँ, तत्र बाँधते मन वन स्वर्णिम पाश ।
 आज रे, जग जीवन का चक्र दिशा गति बदल चुका अनिवार,
 सिन्धु में जन युग के उद्दाम उठ रहा नव्य शक्ति का ज्वार ।
 आज मानव जीवन का सत्य घर रहा नये रूप आकार,
 आज युग का गुण है—जन रूप रूप जन सस्कृति के आधार ।
 स्थूल, जन आदर्शों की सृष्टि कर रही नव सस्कृति निर्माण,
 स्थूल—युग का शिव, सुन्दर, सत्य स्थूल ही सूक्ष्म आज, जन प्राण ।
 (दिसम्बर '३६)

वापू !

चरमोन्नत जग में जब कि आज विमान ज्ञान,
 बहु भौतिक साधन यत्र यान, वैभव महान,
 सेवक हैं विद्युत वाष्प शक्ति धन बल नितात,
 फिर क्यों जग में उत्पीडन ? जीवन यो अशान्त ?
 मानव ने पायी देश काल पर जय निश्चय,
 मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय ।
 चरित उसका विज्ञान ज्ञान वह नहीं पचित
 भौतिक मद से मानव आत्मा हो गयी विजित ।
 है श्लाघ्य मनुज का भौतिक सचय का प्रयास,
 मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास ?

चाहिए विश्व को आज भाव का नवोन्मेष,
मानव उर में फिर मानवता का ही प्रवेश ।

बापू ! तुम पर हैं आज लगे जग के साधन,
तुम खोल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?

(दिसम्बर '३६)

अहिंसा

बंधन बन रही अहिंसा आज जना के हित,
वह मनुजोचित निश्चित, कब ? जब जन हो विकसित ।
भावात्मक आज नहीं वह, वह अभाव वाचक
उसका भावात्मक रूप प्रेम केवल साधक ।

हिंसा विनाश यदि, नहीं अहिंसा मात्र सृजन,
वह लक्ष्य सूप अब भर न सकी जन में जीवन,
निष्क्रिय उपचेतन ग्रस्त एक देशीय परक,
सांस्कृतिक प्रगति से रहित आज जन हित दुग्म ।

हैं सजन विनाश सृष्टि के आवश्यक साधन
यह प्राणि शास्त्र का सत्य नहीं, जीवन दशन ।
इस द्वन्द्व जगत में द्वन्द्वानुत्त निहित सगति,
है जीव जीव का जीवन,—राक न सका प्रगति ।

भव तत्त्व प्रेम साधन हैं उभय विनाश सृजन,
साधन बन सकते नहीं सृष्टि गति में बध्न ।

(फरवरी '४०)

पतझर

झरो, झरो, झरो !

जगम जन प्रागण में,
जीवन मधपण म
नव युग परिवतन म
मन के पीले पत्तो ।
झरो, झरो, झरो !

सन् सन् शिशिर समीरण
दना क्रांति निमंत्रण ।
यही जीवन विस्मृति क्षण—
जीण जगत के पत्तो ।
टरो, टरो, टरो !

कैपकर, उडकर, गिरकर,
दबकर, पिसकर, चर मर,
मिटटी म मिल निमर
झमर बीज के पत्तो !
मरो, मरो, मरो !

तुम पतझर, तुम मधु—जय !
 पीले दल, नव किसलय,
 तुम्ही, सृजन, वधन, लय,
 आवागमनी पत्तो !
 सरो, सरो, सरो !

जाने से लगता भय ?
 जग मे रहना सुखमय ?
 फिर आघोरे निश्चय !
 निज चिरत्व से पत्तो !
 डरो, डरो, डरो !

ज-म मरण से होकर,
 ज-म मरण को खीकर,
 स्वप्नो मे जग सोकर,
 मधु पतझर के पत्तो !
 तरो, तरो, तरो !

(फरवरी '४०)

उद्बोधन

खोलो वासना के वसन,
 नारी नर !

वाणी के बहु रूप, बहु वेश, बहु विभूषण
 खोलो सब, बोलो सब
 एक वाणी,—एक प्राण, एक स्वर !
 वाणी केवल भावा—विचारो की वाहन,
 खोलो भेद भावना के मनोवसन
 नारी नर !

खोलो जीण विश्वासों, सस्कारो के शीण वसन,
 रूढियो रीतियो, आचारो के भ्रवगुण्ठन,
 छिन करो पुराचीन सस्कृतियो के जड बंधन,—
 जाति वण, श्रेणि वग से विमुक्त जन नूतन
 विश्व सम्यता का शिला-यास करे भव शोभन,
 देश राष्ट्र मुक्त धरणि पुण्य तीथ हो पावन !
 मोह पुरातन का वासना है, वासना दुस्तर,
 खोलो सनाननता के शुष्क वसन
 नारी नर !

समरागण बना आज मानव उपचेतन मन,
 नाच रहे युग युग के प्रेत जहा छाया तन,
 धम वहाँ, कम वहाँ, नीति रीति, रूढि चलन,
 तक वाद, सत्य-याय शास्त्र वहाँ पड दशन,
 खण्ड - खण्ड मे विभक्त विश्व चेतना प्रागण,

भित्तिवा खड़ी हैं वहाँ देश काल की दुधर ।
 ध्वस करो, भ्रंश करो, खँडहर हैं ये खँडहर,
 खोलो विगत सम्पत्ता के क्षुद्र वसन
 नारी नर ।

नव चेतन मनुज आज करें धरणि पर विचरण,
 मुक्त गगन में समूह शोभन ज्यो तारागण,
 प्राणो प्राणो में रहे ध्वनित प्रेम का स्पन्दन,
 जन से जन में रहे बहे, मन से मन में जीवन,
 मानव ही मानव—हो मानव में मानवपन
 अन वस्त्र से प्रसन्न, शिक्षित ही सब जन,
 सुन्दर ही देश, सबके निवास ही सुन्दर,
 खोलो परम्परा के कुरूप वसन,
 नारी नर ।

(दिसम्बर '४०)

नव इन्द्रिय

नव जीवन की इन्द्रिय दो हे, मानव को,
 नव जीवन की नव इन्द्रिय,
 नव मानवता का अनुभव कर सके मनुज
 नव चेतनता से सक्रिय ।

स्वर्ग खण्ड इस पुण्य भूमि पर
 प्रेत युगों के करते ताण्डव,
 भव मानव का मिलन तीर्थ
 बन रहा रक्त चण्डी का रौरव ।

अनिर्वाप्य साम्राज्य लालसा
 अगणित नर आहुति देती नव,
 जाति वग भी' देश राष्ट्र में
 आज छिटा प्रलयकर विप्लव ।

नव युग की नव आत्मा दो पशु मानव को,
 नव जीवन की नव इन्द्रिय,
 नव मानवता का साम्राज्य बने मू पर
 दस दिशि के जनगण को प्रिय ।

(दिसम्बर '३६)

कवि किसान

जोती है कवि, निज प्रतिभा के
 फल से निष्ठुर मानव धरतर
 चिर जीण विगत की खाद डाल,
 जन भूमि बनाओ सम सुन्दर !
 बीघो, फिर जन - मन में बीघो
 तुम ज्योति पर नव बीज धरतर,

जग जीवन प्रकुर हैस हस
 भू को हरोतिमा से दें भर ।
 पथ्वी से खोद निकालो, कवि,
 मिथ्या विश्वासो के तृण खर,
 सीचो भ्रमूतोपम वाणी की
 धारा से मन, भव हो उर्वर ।
 नव मानवता का स्वर्ण शस्य-
 सौंदर्य लुनाओ जन सुखकर,
 तुम जग गृहिणी, जीवन किसान
 जन हित भण्डार भरो निभर ।
 (जनवरी '४०)

वाणी !

तुम वहन कर सको जन मां मे मेरे विचार,
 वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या झलकार !
 भव कम भ्राज युग की स्थितियों से है पीडित,
 जग का रूपान्तर भी जनैक्य पर अवलम्बित,
 तुम रूप कम से मुक्त, शब्द के पल्ल मार,
 कर सको सुदूर मनोमभ मे जन के विहार,
 वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या झलकार !

चित् धूय,—भ्राज जग नव निनाद से हो गुजित,
 मन जड —उसमे नव स्थितियों के गुण हो जागृत,
 तुम जड चेतन की सीमाओ के धार पार
 भ्रुकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार,
 वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या झलकार !

युग कम शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,
 शब्दित कर भावी के सहस्र शत मूक शब्द,
 ज्योतित कर जन मन के जीवन का प्रधकार,
 तुम खोल सको मानव उर से निशब्द द्वार,
 वाणी मेरी, चाहिए तुम्हे क्या झलकार !
 (फरवरी '४०)

नक्षत्र

[अपनी कोठेज के प्रति]

मेरे निकुज, नक्षत्र घास !
 इस छाया ममर के वन मे
 तू स्वप्न नीड सा निजन मे
 है बना प्राण पिक का विलास !

लहरी पर दीपित ग्रह समान
 इस भू उभार पर भासमान,

तू बना मूक चेतनावान
पा मेरे सुख दुःख, भाव' च्छवास ।

आती जग की छवि स्वण प्रात,
स्वप्नो की नभ सी रजत रात,
भरती दश दिशि की चारवात
तुझमे वन - वन की सुरभि साँस ।

वितनी आशाएँ मनोल्लास,
सबल्प महत उच्चाभिलाष,
तुझमे प्रतिक्षण करते निवास,—
हे मौन श्रेय साधन प्रयास ।

तू मुझे छिपाये रह भ्रजान
निज स्वण मम मे लग समान
हागा भ्रग जग का कण्ठ गान
तेरे इन प्राणो का प्रकाश ।
मेर निकुज, नक्षत्र वास ।
(१६३२)

आँगन से

रोमाचित हो उठे आज नव वर्षा के स्पर्शों से ।
छोटे से आँगन मेरे, तुम रीते थे वर्षों से ।
नव दूर्वा के हरे प्ररोहों से भ्रव भरे मनोहर
मरकत के टुकड़े से लगते तुम विजडित भू उर पर ।

जन निवास से दूर, नीड में वन तरुणा के छिपकर
मू उरोज-से उभरे इस एवान मौन भीटे पर
कीमल शाद्वल अन्तल पर लेटा मैं स्मित, चिन्तन पर,
जीवन की हँसमुख हरीतिमा को देखू भाँखें भर ।

एक ओर गहरी खाई में सीया तरुणों का तम
केका रव स चकित, बखेर सुख स्वप्नो का सम्भ्रम ।
ओर दूसरी ओर मजरित आम्ब विपिन कर मुखरित
मधु में पिक, पावस में पी-खग करे हृदय को हर्षित ।

हरित भरित वन नीम उच्छ्वसित शाखाओं का विह्वल
वक्षभार, हाँ, रहे झुकाये मेरे ऊपर कीमल ।
(अगस्त '३६)

याद

बिदा हो गयी साँभ, विनत मुख पर भीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतिया भर ।
वह केसरी दुबूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर
नव अस्ताढ के मैघों में घिर रहा वरावर अम्बर ।

मैं बरामदे में लेटा, शय्या पर, पीड़ित भ्रवयव,
 मन का साथी बना बादला का विपाद है नीरव ।
 सत्रिय यह सवरुण विपाद,—मेघो से उमड उमडकर
 भायी के बहु स्वप्न, भाव बहु व्यथित कर रहे अंतर ।
 मुखर विरह दादुर पुकारता उत्पण्डित भेकी को,
 बहमार से मोर लुभाता मेघ-मुग्ध केकी को,
 झालोक्ति हो उठता सुग से मेघो का नभ चचल,
 अंतरतम में एक मधुर स्मृति जग जग उठती प्रतिपल ।

वम्पित करता बस धरा का धन गभीर गजन स्वर,
 मू पर ही आ गया उतर शत धाराओं में अम्बर ।
 भीनी भीनी भाप सहज ही सांसो में घुलमिल कर
 एक और भी मधुर गंध से हृदय दे रही है भर ।
 नव असाढ़ की शय्या में, मेघो के तम में कोमल,
 पीड़ित एकाकी शय्या पर, शत भावों में विह्वल,
 एक मधुरतम स्मृति पल भर विद्युत-सी जलकर उज्ज्वल
 याद दिलाती मुझे हृदय में रहती जो तुम निश्चल ।

(जुलाई '३६)

गुलदावदी

शय्या अस्त रहा मैं दो दिन, फूलदान में हँसमुख
 चंद्र मल्लिका के फूलों की रहा देखता सम्मुख ।
 गुलदावदी कहूँ,—कोमलता की सीमा ये कोमल ।
 शैशव स्मृति इनमें जीवन की भरी स्वच्छ, सद्योज्वल ।

पुज पुज उल्लास, तीन लावण्य राशि में अपने,
 मधु पल्लवियों के पलकों पर देख रहा हो सपने ।
 उज्ज्वल सूरज का प्रकाश, ज्योत्स्ना भी उज्ज्वल, शीतल,
 उज्ज्वल सौरभ अनिल, और उज्ज्वल निमल सरसी जल,
 इन फूलों की उज्ज्वलता छू लेती अंतर के स्तर,
 मधुर भ्रवयवों में बंध वह ज्यो ही आ गयी निकटतर ।
 मधुल दलों के अगजाल से फूट त्वचा कोमल सुख
 सहृदय मानवीय स्पर्शों से हर लेता मन का दुख ।

तण-तण में औ' निखिल प्रकृति में जीवन की है क्षमता,
 पर मानव का हृदय लुभाती मानव करुणा ममता ।

(दिसम्बर '३६)

विनय

विपान ज्ञान बहु सुलभ, सुलभ बहु नीति धम
 सकल्प कर सकें जन, इच्छा अनुरूप कम ।
 उपचेतन मन पर विजय पा सके चेतन मन,
 मानव को दो यह शक्ति पूण जग के कारण ।

मनुजी की लघु चेतना मिटे, लघु ग्रहकार,
 नव युग के गुण से विगत गुणों का झणकार !
 हो शान्त जाति विद्वेष, वग गत रक्त समर,
 हा शान्त युगों के प्रेत, मुक्त मानव घत्तर !

ससृष्ट हो सब जन, स्नेही हो, सहृदय, सुंदर,
 सयुक्त बर्म पर हो सयुक्त शिव निर्मर !
 राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशों से देश प्राज,
 मानव से मानव,—हो जीवन निर्माण काज !

हो धरणि जनो की, जगत् स्वग,—जीवन का घर,
 नव मानव को दो, प्रभु ! भव-मानवता का घर !

(फरवरी '४०)

स्वर्ण किरण

[प्रथम प्रकाशन-वर्ष १९४७]

स्वर्गीय
डॉक्टर एन सी जोशी
को

विज्ञापन

अपनी दीर्घ अस्वस्थता के बाद स्नेही पाठकों को 'स्वर्ण किरण' से अभिनन्दन करने में मुझे हर्ष हो रहा है। उनके वातापनों में यदि 'स्वर्ण किरण' प्रवेश पा सकी तो मैं अपना श्रम सफल समझूंगा।

सुमित्रानन्दन पंत

द्वितीय सस्करण

इस सस्करण में मैंने 'स्वर्ण किरण' की अनेक रचनाओं में इधर उधर छोटे मोटे परिवर्तन कर दिये हैं, आशा है कि वे पाठकों को रुचिकर प्रतीत होंगे।

१८/७ बी स्टेनले रोड

इलाहाबाद
मार्च १९५६

सुमित्रानन्दन पंत

अभिवादन

हँसी, लो, स्वर्ण किरण,
 शिखर भालोक् वरण !
 विचरती स्वर्ण किरण
 घरा पर ज्योति चरण !
 जगे तर नीड सबल
 खगो की भीड विकल,
 पवन मे गीत नवल
 गगन मे पक्ष चपल !
 अघखिले स्वप्न नयन
 चूमती स्वर्ण किरण !

सरो मे हँसी लहर
 ज्योति का जगा प्रहर,
 चेतना उठी सिहर
 स्पश यह दिव्य अमर !
 तुहिन के स्वर्णम क्षण
 वितरती स्वर्ण किरण !

विजय से दीप्त गगन
 ह्वजा - सी मुक्त पवन,
 घरा रज नव चेतन
 खिला मन का लोचन !
 युगो का तमस हरण
 करे यह स्वर्ण किरण !

खुला भव ज्योति द्वार
 उठा नव प्रीति ज्वार,
 सजन शोभा अपार !
 कौन करता अभिसार ?
 घरा पर ज्योति भरण,
 हँसी, लो, स्वर्ण किरण !

सम्मोहन

जादू बिछा दिया जन भू पर !
 तुमने सोने की किरणो की
 जीवन हरियाली वो वोकर !

फूलों से उठ फूल, रँगों से
 निम्बर सूक्ष्म रँग उर के भीतर
 बुनते स्वप्न मधुर सम्मोहन,
 स्वर्ण शंघर में अन्तर धरु धरु ।
 स्पन्दित भ्राज हृदय पण पण में,
 भाषा बनी द्रुमों की मर्मर,
 लहरों उर पर देती भाँचल,
 वमल मुग्धों से जीवित-से सर ।
 प्रणय दृष्टि दी मुग्ध दुगा को,
 प्राणों में सगीत दिया भर,
 स्वर्ण वामना का नव घूषट
 डाल घरा के मुख पर सुन्दर ।
 निज जीवन का वटु सघर्षण
 भूल गया ध्रुव मानव अन्तर
 जग जीवन के नव स्वप्नों की
 ज्योति वृष्टि में अमर स्नान कर ।
 स्वर्ण ज्वाल में तुमने जीवन
 लिपटा लिया, हृदय में हैसकर,
 मम प्रीति का करता ध्रुविरल
 इन प्राणों में स्वर्णम निभर ।
 स्वर्ण घरा को बाँध पाश में
 स्वर्ण चेतना के चिर मुखकर
 स्वप्नों को तुमने जीवन की
 देही दे दी, मरय शोक हर ।

रजतातप

[आत्म निर्माण]

भ्राज चेतना के प्लावन - सा
 निखर रहा रजतातप सुन्दर,
 ऊषा सन्ध्या के स्वप्ना के
 स्वर्णम पुलिनो को मज्जित कर ।
 चन्द्रातप - सी स्निग्ध नीलिमा
 यज्ञ धूम सी छापी ऊपर,
 किरणों के स्पर्शों से गुम्फित
 ज्योति वत्त सा खिचा दिगन्तर ।

किन स्वर्गिक शिखरों को छूकर
 बहता रजत समीरण मन्थर ।
 गन्ध हीन, निज सूक्ष्म गन्ध से
 सहसा प्राणोज्वल कर अन्तर ।

निमलता ही जल धारा-सी
 बह-बह धोती मू के रज कण,
 मूतो की चिर पावनता मे
 हृदय सहज करता भ्रवगाहन !
 लोट मुग्ध विस्मित लोचन मन
 अतर्मुख करते भ्रवलोकन,
 निमत स्पश पाकर निसर्ग का
 आत्मा गोपन करती चितन ।
 श्रान्त इन्द्रियाँ अनुप्राणित हो
 दवो का करती आवाहन,
 अतनभ के दुग्धामृत से
 भरें पुन वे इनमे जीवन !

दीप शिखा - सी जगे चेतना
 मिट्टी के दीपक से उठकर,
 तैल धारवत मम स्नेह पा
 स्वर्ग विभा स मूतल दे भर ।
 अतरतम की नीरवता मे
 जाग्रत हो सुर मादन गुजन,
 खण्डित भव विश्रुखलता को
 बाँध अमर गति लय मे चेतन ।

फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम स
 मानव अतर हो अतस्मित,
 सयम तप की सुदरता से
 जग जीवन शतदल दिक प्रहसित !
 व्यक्ति विश्व मे व्यापक समता
 हो जन के भीतर से स्थापित,
 मानव के देवत्व से अर्पित
 जन समाज जीवन हो निर्मित !

करें आत्म निर्माण लोकगण
 आत्मोज्वल, मू मगल के हित,
 बहिरतर जडे चेतन वैभव
 सस्कृति मे कर निखिल समवित !
 सहृदयता का सागर हो मन
 हृदय शिला हो प्रेरणा सरित
 मू जीवन के प्रति रुचि जन मे
 मानव के प्रति मानव प्रेरित !

प्राणो के स्तर म पुलकित
 अमर भावनाएँ हो विकसित,
 प्रीति पाश मे बँध सुदरता
 काम भीति से हो अकलकित !
 देव वृत्तियो के सगम म
 डूबें मू विप्लव, सधर्षण,

जीवन के सगीत में धमिल
परिणत हो धरती का प्रन्दन ।

ऊष्यग शृगा के समीर को
प्राप्तो, सौसा से उर में भर
इस पवित्रता से हम तन का
मन का पोषण करें निरन्तर ।
मुक्त चेतना के प्लावन - सा
उमड़ रहा रजतातप निरुदर,
भाज सत्य की बेला बहती
स्वप्नो के पुलिना के ऊपर ।

हिमाद्रि

मानदण्ड मू के अखण्ड है,
पुण्य धरा के स्वर्गारोहण,
प्रिय हिमाद्रि, तुमको हिमकण-स
घरे मेरे जीवन के क्षण ।
मुझ अचलवासी को तुमने
शशव म आशी दी पावन,
नम म नयनो को खो, तब से
स्वप्नो का अभिलाषी जीवन ।

कब स शब्दों के शिक्षरो मे
तुम्हे चाहता करना चित्रित
शुभ शान्ति में समाधिस्थ है
शाश्वत सुन्दरता के भूमत ।
वाल्य चेतना मरी तुमम
जडीमूत ध्यानद तरंगित,
तुम्हे देख सौदय साधना
महाश्चय से मेरी विस्मित ।

जिन शिक्षरो को स्वर्ण किरण नित
ज्योति मुकुट स करती मण्डित,
जिन पर सहसा स्वलित तडित
हो उठती निज आलोक से चकित ।
जिन शिक्षरो पर रजत पूर्णिमा
सिंधु ज्वार सी लगती स्तम्भित
जिनकी नीरवता मे मेरे
गीत स्वप्न रहते थे भङ्गित ।
जिनकी शीतल ज्वाला मे जल
बनी चेतना मेरी निमल,
प्राण हुए आलोकित जिनके
स्वर्गोन्नत सौदय से सु

हृदय चाहता काव्य कल्पना को
किरीट पहनाना उज्ज्वल
स्मृति में ज्योति तरंगित स्वर्गिक
शृंगो के आलोक का तरल ?

वसुधा की महदाकाशा-से
स्वर्ग क्षितिज से भी उठ ऊपर
अंतर आलोकित से स्थित तुम
अमरो का उल्लास पान कर !
उरोभार-से गौर, धरणि के,
सोया स्वर्ग शीश घर जिस पर
तुम भारत के शाश्वत गौरव
प्रहरी सी जागरित निरंतर ?
रवि की विरणों जिसे स्पश कर
हो उठती आलोक निनादित,
जिस पर ऊषा सध्या की छवि
आदि सृष्टि सी ही स्वर्णांकित !
इंद्र ज्वलित तुम स्फटिक धवलिमा
के क्षीरोदधि से हिल्लोलित
ज्योत्स्ना में थे स्वप्न मौन
अप्सरा लोक स लगते मोहित !

सुरग प्रवालो की रत्नश्री
अहरह रहती जहाँ ममरित,
देवदारु की चार सूचि स
मरकत तलहटिया रोमांचित !
मौन स्वर्ग मुख पर अकित तुम
शुचि दिगत स्मित से चिरशोभित,
आदि तत्त्व-से, अपनी ही शोभा
विलोक रहत अनिमेपित !
नीली छायाएँ थी तन पर
लगती आभा की-सी सिकुडन,
इंद्र धनुष मण्डल से दीपित
उडते थे शत हंसमुख हिमक्वण !
स्वर्दूतो के पखों से स्मित
तडित् चकित हिम के रोमिल धन
रगो से वेष्टित रखते थे
तुमको हे आलोक निरजग !

प्रति वत्सर आती थी मधुमृतु
सद्य स्पुट देही ले कुसुमित
चीर रश्मियो को, फूलों के
अगो पर निज कर शत रजित !
सुलती पल्लवियों की कचुक
सौरभ श्वासो स थी स्पन्दित

मेरे दीर्घ को नित उतकी
गीत कोविता रगती कृत्रिम !

बसरय, स्वप्नालय, गुरपनु पट,
दासि मुस, हिम स्मित, गण स स्वगित,
पटश्रुगु करती थी परिश्रमा
प्रपारिया - सी गुरपति प्रेषित !
घरद घट्टिका है जाति थी
स्वप्नों के शृंगों पर विनडित,
हिम की परिषा का प्रपत उद
भू को कर सता था परिवृत !

रग रग के चित्रित पानी
उदत नभ म गीत तरंगित,
नीस पीत मुगों का गुजन
मोन धाणा को रगता मुगरित !
ऊरमा का मूर्धानप तुमम
सगता दीतलता-ता मूर्तिन,
दृष्टपाप पुस पर, यपा म,
गुरबासाएँ धा जातीं नित !
जग प्रच्छाय गुहाधों म, नव
वाप्यो के गज भरते गजन,
षषल विष्टुत् सेषाएँ थी
निपट दुगा स जातीं तरंगण !
ताराधो क साप सहज
दीर्घ स्वप्ना स भर जाता मन,
उठत से तुम अन्तर म
सौदय स्वप्न शृंगो पर मोहन !

मेघो की छाया के सग सँग
हरित घाटियाँ चलतीं प्रतिक्षण,
वन के भीनर उठता षषल
चित्र तितलियो का कुमुमित वन !
रंग रंग के उपलो पर रणमण
उछल उरस करते कल गायन
झरनो के स्वर जम-स जाते
रजत हिमानी सूत्रो म घन !

भीम विशाल शिलाधो का वह
मोन हृदय मे अब तक अकित
फेनो के जल स्तम्भो-से वे
निभर रभस वेग से मुखरित !
चीडो के तरु वन का तम
साँसें भरता मन मे धा-दोलित
दरियो की गहरी छायाएँ
ज्योतिरिगणा से थी गुम्फित !

गाते उर मे क्षिप्र स्रोत,
 लहराते सर तुषार के निमल,
 सौरभ की गुजित झलको से
 छू समीर उर करता शीतल ।
 नीला पीला हरा लाल नभ
 चपलाग्रो का जगता चचल,
 रजत कुहासे मे, क्षण मे,
 माया प्रातर हो जाता शोभल ।

सम्भव, पुरा तुम्हारी द्रोणी
 किनर मिथुनो से हो कूजित,
 छाया निमत गुहाएँ उमद
 रति सौरभ से सतत उच्छ्वसित ।
 प्रीपधियाँ जल-जल दरियो के
 स्वप्न कक्ष करती हो दीपित,
 प्रोसो के वन मे मिलते हो
 स्तन हारो के मुक्ताफल स्मित ।

मदन दहन की भस्म अनिल मे
 उड अब तक तन करती पुलकित,
 सती अपर्णा के तप से
 वनश्री भवाक सी लगती विस्मित ।
 अब भी ऊषा वहाँ दीखती
 वधू उमा के मुख सी लज्जित,
 बढती चन्द्र कला भी गिरिजा-सी
 ही गिरि के क्रोड मे उदित ।

अब भी वही वसत विचरता
 पुष्प शरो से भर दिगत स्मित,
 गघोहाम घरा वह ही, पायाण
 शिलाएँ पुलक पल्लवित ।
 अब भी प्रिय गौरा का शंशव
 वर्णन करते स्रग पिक मुखरित,
 देवदारु के ऊध्व शिखर
 वसे ही शकर-से समाधि स्थित ।

अभी उतरता कूम सागु पर
 वप्र क्रीडा परिणत गज घन
 वातायन से मद स्वतित कर
 देता कवि सदेश भाद्र स्वन ।
 अब भी झलकें उठा देखती
 ग्राम वधू उसको सरल नयन,
 शुभ्र बलाको के दल नभ मे
 कल ध्वनि भर करते अभिवादन ।

× × × ×

धाज जीवादाधि के तट पर
 लड़ा घबोली, दृश्य, उपेक्षित
 देग रहा मैं क्षुद्र घट्टम् की
 शिगर सहस्रियों का रण कृत्तित !
 सोप रहा, निमके गौरव मे
 मेरा यह घत्तर जग निमित्त,
 सगता तव, हे प्रिय हिमाद्रि,
 तुम मेरे शिशाक रहे अपरिचित !

घौर, पूरणा मैं मन ग, क्या
 यह परती रा सजती जीवित
 जो तुम स्वगिब गरिमा भू पर
 बरसाते रहा न अपरिमित !
 गियर गिगरकार उठ तुमने
 मानव धारमा कर दी ज्योतित,
 हे घसीम धारमाभूमि म
 सीत ज्योति शृंगो के भूमत् !

घनीभूत घभ्यारम तस्व-मे,
 त्रिसमे ज्योति सरित नत निभूत
 प्राणा की हरियाली में स्मित
 पथ्वी तुमने महिमा मण्डित !
 स्पटिक सोप-मे श्री सोमा के
 रश्मि रेता शृंगों स बल्पित,
 स्वर्ग दण्ड तुम दस वसुधा पर,
 पुण्य तीर्थ हे देव प्रतिष्ठित !

इन्द्रधनुष

[जीवन निर्माण]

स्वग घरा के मध्य रश्मि वभव स चित्रित
 स्वप्नो के रत्नस्मित सम्मोहन से ज्योतित,
 इन्द्रधनुष स, देखो, विश्व क्षितिज घालिगित,
 विजय केतु-सा यह प्रकाश का तम पर घोभित !

असतो मा सद् गमय,
 तमसो मा ज्योतिर्गमय,
 मृत्योर्मांशुत गमय !

धाप मन्त्र के ज्योति तरंगित ये उदात्त स्वर
 ध्वनित धाज भी अतनभ मे दिव्य स्फुरण भर,
 असत तमस के मृत्यु सलिल मे हूमे पार कर
 सत्य, ज्योति, अमृतत्व धाम दो, जीवन ईश्वर !
 अप्रकेत लो, सलिल धाज लहराया दुस्तर,
 ज्योति केतु फहराओ फिर से, मर्य हो अमर !

भाषो हे, इस इन्द्रधनुष को धरती की बेणी पर
जीवन के तम की कवरी हो स्वर्ग विभा से भास्वर ।
किरणों की सतरंग स्मित से हो भू के रज-वर्ण रजित,
अधकार हो पुन दिशाओं का प्रकाश में कुसुमित ।

जब-जब घिरते विश्व क्षितिज पर युग परिवर्तन के घन,
मेघों के क्षण रध्रजाल से कोई धुंध किरण छन
ज्योति सेतु-सी सजित हो द्रुत इन्द्रचाप में मोहन,
स्वर्गिक स्वप्नों में लेती लिपटा वसुधा के दिशि-क्षण,
बरस धरा पर गजन मथित नभ से शतमुख जीवन
प्राणों की हरियाली से रोमांचित करता जन - मन ।

आज उदधि के नीलाचल में बंधे निखिल देशान्तर,
वायु बत्तम से, पक्ष खोल, आने को नव्य युगान्तर ।
आज तडित् के पद नूपुर में ध्वनित विश्व सम्भाषण,
लो, सम्भव विद्युत् कटाक्ष से अब दूरागत दशन ।

आज वाष्प ओ' विद्युत विश्व किरण मानव के वाहन,
भूत शक्ति का मूल स्रोत भी अणु ने किया समपण,
मातृ प्रकृति ने सौंप दिया मानव को विभव अपरिमित,
हरित नील जब भी भविष्य में कर लेगा वह संचित ।
आज वनस्पति पशु जग को कर सकता मानव वधित,
गर्भाशय में जीवन अणु को ऊजित, विद्युत गर्भित ।
भूत रसायन प्राणि वनस्पति शास्त्र विविध अब विकसित ।
दिशा काल का परिणय का रे मानव आज पुरोहित ।

आओ, सोचें द्विपद जीव कैसे बन सकता मानव,
शक्ति - मत्त भूदेव कही बन जाय नहीं भू - दानव ।
मानव संस्कृति का क्या स्वर्ग बसायेगा वह भू पर,
भीषण अणु का भू प्रकम्प या छोड़ेगा प्रलयकर ।
नव मनुष्यता होगी भू प्रतिनिधि या राष्ट्र विभाजित,
अतर्देवों से प्रेरित या भूत दैत्य से शासित ।
धरा बनेगी शांति घाम या रक्त क्षेत्र रण जजर,
ममत् व्योम से बरसेगा ? विष वह्नि विनाश भयकर ।
लोक समस्याओं पर आओ मिलकर करें विवेचन,
विश्व सम्यता के मुख पर से हटा मृत्यु अवनुष्ठन ।
सबप्रथम, हम जठर वह्नि को हवि दें श्रम की पावन,
शत सहस्र कर पद ही, यन्त्रों से कर सद्योत्पादन ।

नग्न क्षुधातुर जीवमत्त भू के असह्य शोषित जन,
मानव तन को शोभाऽवृत कर नव युग करे पदापण ।
आज यत्र कौशल से अजित विश्व योजना कल्पित,
जीव नियति मनुजों पशुओं की भी कृताय हो निश्चित ।
युग्म प्रीति हित फिर प्राणों की आहूति करें निरूपित
अजित पंचशर के हित मोहक ज्योति व्यूह रच विस्तृत ।

फूलों के बाणों से जीवन का मधु हो घिर सञ्चित,
 यौवन के शोभा तोरण में युवति - युवक विचरें स्मित ।
 शोभा का मुख काम लाज के पट से कर तमसावृत
 उञ्जित मानव देह मोह भ्रौ' देह द्रोह से कवलित ।
 स्वस्थ हृदय तारुण्य प्रणय को करें युग्म निज भ्रूपित,
 भावी सतति को दें जीवन हृदय प्रीति का दीपित ।
 मातृ द्वार श्रद्धा प्रतीत के पुष्पो से हो पूजित,
 प्राणों के स्वप्नों से जीवन की डाली हो मुकुलित ।
 सर्वाधिक रे जन शिक्षा का प्रश्न महत्, आवश्यक,
 मानव के भ्रतर्जीवन का गत इतिहास भयानक ।
 जनता के उर भ्रघकार की कथा करुण भर्मान्तक,
 शिक्षा ही बहिरतर जनमगल की मात्र विधायक ।
 भ्रघ जगत भ्रवगुण्डित, तमसावृत रे लोक भ्रसख्यक,
 भ्रघ सम्य, लव विद्य शेष, जो जाति वण के पोषक ।
 तर्कों वादो सिद्धांतों से बुद्धिप्राण जन पीडित,
 नीति रीति शाखा पथों में धमप्राण भ्रति सीमित,
 द्रव्य मान पद के भ्रजन में रत स्त्री - प्रिय नव शिक्षित,
 महामृत्यु के पूजन में वैज्ञानिक, राज्य नियोजित ।
 शिलायास मानव शिक्षा का करना हमको नूतन,
 भ्रात्म ऐश्वर्य भ्रौ' व्यक्ति मुक्ति का स्वर्ग सौध रच शोभन ।
 वाग् यत्रो से, वाक् चिन्तो से वाहित कर सञ्चित मन
 जनगण में भर सकते हम चेतना रधिर का प्लावन ।
 ललित कलाओं से घरती का रूप बने मनुजोचित,
 शोभा के स्रष्टा हो जन, जीवन के शिल्पी जीवित ।
 भावी स्वप्न दृगो में, उर में हो सौंदर्य भ्रपरिमित,
 काव्य चित्र संगीत नृत्य से जन जीवन मुख स्पन्दित ।
 हमें विश्व सस्कृति घरती पर करनी भ्राज प्रतिष्ठित,
 मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानव उर कर निमित्त,
 मानवीय रे ऐश्वर्य ज्ञातिगत मन में करना स्थापित,
 मन स्वर्ग की किरणों से मानव मुख श्री कर मण्डित ।
 बहिर्चेतना जाग्रत जग में भ्रतर्मानव निद्रित,
 बाह्य परिस्थितियों जीवित, भ्रतर्जीवन मूर्छित मत ।
 भौतिक वैभव भ्रौ भ्रात्मिक ऐश्वर्य नहीं सयोजित,
 दशन भ्रौ' विज्ञान विश्व जीवन में नहीं समन्वित ।
 खोयी - सी है मानवता, खोयी वसुधा प्रनिर्बधित,
 जाति पाति हैं, रुद्धि रीति हैं देश प्रदेश विभाजित ।
 एकत्रित कर मन शक्ति चेतन मानव को निश्चय
 ग्लानि पराभव मृत्यु भ्रमगल पर पानी ग्राश्वत जय ।
 भेद - भाव, दुर्मति भ्रसफलता युग गति में हो मञ्जित,
 जीवन रथ चक्रों पर हो घण्टी लीक - सूजन में योजित ।

ऊर्ध्व चरण मे रहा व्यविन रे जन समाज का नायक,
 समदिग् गति मे सामाजिकता जनगण भाग्य विधायक,
 ऊर्ध्व चेतना को भ्रू पर चलना घर जीवन के पग,
 समदिक् मन को पक्ष गोल चिह्न नभ मे उठना व्यापक ।
 प्राणि शास्त्र को मानवीय बनना पीकर आत्माऽमत,
 मन शास्त्र को ऊर्ध्व तथा नव भौतिक दिशि मे विस्तृत,
 भादसों को रुद्रि रीति पासो स हाना विरहित,
 सदाचार श्री' नैतिकता को युग आवृत्ति मे विकसित ।
 अन्तर्जीवन के वैभव से आज अपरिचित भू - जन
 अघम वृत्तियो मे रे कल्पित उनका मध्यम जीवन,
 सत्य ज्योति स वचित भेदो स पुण्डित मानव मन,
 अन्तर्मुख प्रेरित हो उसकी पाना जीवन दशन ।
 पशुघो से भी हीन रेंगता कृमियो - सा भव मानव
 भूल गया वह अन्तर्गरिमा, ढोता आत्म पराभव ।
 प्राणि वग का ईश्वर नर दिडम्ब, क्षुधात, निरावृत,
 भव वैभव न धोन - प्रोत मानव गौरव भू लुण्ठित ।
 निज आत्मिक ऐश्वर्य उसे धम तप से करना जागत,
 दैय विदोर्ण मनुज को फिर से बनना रे महिमाचित ।
 देखो हे ऐश्वर्य प्रकृति का उसका प्रति अणु जीवित,
 उसका श्री सौंदर्य अमित वह मृजन हृष से दोलित ।
 नाच रही भू हरित योवना ज्योति ग्रहा स वेष्टित
 बाहू पास में बाँध घरा को वारिधि चिर उद्वेनित ।
 साय प्रात गाकर सग करत जीवन अभिनन्दन,
 सुख से सपित मुखर श्रोन नित, प्रीति श्रवित पिक कूजन
 कृपा साध्या स्वर्णिम जीवन वैभव से चिर शोभन,
 ज्योत्स्ना मे सोयी भू को नभ तक्ता अपलव लाचन ।
 हिमशिखरो का स्वर्गिक आरोहण विस्मय से स्तम्भित
 पड श्रुतुघो का छायातप शत ध्वनि वणों स विरचित,
 रग प्राण रे रग जगत् यह श्री सुपमा का जीवित,
 रूप स्पश रस गंध दाम्ब तमात्राघों से भ्रूत ।
 नील गगन सुरधनु धन, धन उर मे चपला कम्पित
 तरुघो पर कलि कुसुम, कुसुम मे मधु मधु पर अलि गुजित,
 सरसी मे जल जल मे लहर, लहर किरणा से चूर्म्बित
 कवल मानव उर अतर - सौरभ मे आज न सुरभित ।
 ज्योति चू लहरें उठ-उठ नित करती गोपन इगित
 निखिल प्रकृति रे कहनी उसमे अमत सत्य अन्तर्हित ।
 यह प्रकाश सौंदर्य, प्रेम, उत्साह रग सम्मोहन
 मानव उर मे इन्द्रजाल कुनत रहते हैं माहन ।
 बहिरतर का वर नैतिक वैभव मचित प्रतिक्षण
 भाषो, हम जन लोक रचें, देवा को दें आभरण

महाप्राण रे विश्व चेतना हमे चाहिए केवल,
 भू मगल के साथ आज परिणीत व्यक्ति का मगल !
 नव चेतन मनुजो मे हो जग जीवन का संचालन,
 आत्मोन्नति के लिए मिले अवसर, श्रम प्रिय हो भू-जन !
 मानव हो सयुक्त प्रकृति से, स्वयं बने भू पावन,
 बहिरंतर के ऐश्वर्यों से हो वृत्ताथ भव जीवन !
 शशि मगल लोको को छूत आज कल्पना के पर,
 शशि दे जन को स्वप्न, भौम मन मे साहस बल दे भर !
 शशिप्रभ स्वप्नो मे मगलमय स्वर्ग रचें हम सुंदर,
 मानव जीवन मे अवतरित पुन हो मानव ईश्वर !

× × × ×

मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय,
 सत्य ज्योति अमरत्व ओर वह बड़े अनागम निभय !
 वैदिक ऋषि के अमृत नित्य वचनों की जग मे हो जय !
 ये उपनिषत, समीप बैठ रे, ग्रहण करें हम आशय !

अथ तम प्रविशति येष्विद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रता ।

विद्याचाविद्या च यस्तद्वेदोभय सह ।

अविद्यया मृत्यु तीर्त्वाविद्यायाऽमृतमश्नुते ॥

अथ तमस मे गिरते वे जो मात्र अविद्या मे रत,
 मूरि तमस मे पडत वे जो विद्या मे रत सतत !
 विद्या ऽ विद्या उभय एक म, भेद जि-हें यह अवगत,
 विद्याऽमृत पी, मृत्यु अविद्या से वे तरते अविरत !

ब्रह्मज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व, समन्वय,
 भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय !
 आज जगत म उभय रूप तम मे गिरनेवाले जन,
 ज्योति केतु ऋषि दष्टि करे उन दोनों का संचालन !
 बहिरंतर के सत्यो का जग जीवन मे कर परिणय,
 ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मगल हो निमशय !

× × × ×

रजत अनिल मे रश्मि तूलि से सत जल चित्रित
 जीवन ऐश्वर्यों के सम्मोहन से रजित
 इन्द्र - धनुष से, देखो, स्वयं धरा प्रालिगित,
 विजय - ध्वजा मानव भावी की, तम पर अंकित !

चिन्तन

दुख म मन करता ज्यो चिन्तन,
 सुख मे जीवन दान !

आज प्रौढ़ जीवन स घ्यातप,
सागर की लहरो मे छप छप
यीवन स्मृतियाँ उठती कॅप कॅप ।
गजन करते घुमड घुमड घन,
प्रस्त क्षितिज पर, विद्युत द्युति से
चकित दष्टि जाती है भॅप भॅप ।
जो प्रकाश का प्रागण था मन
वह छाया का आँगन ।

क्या यह सामाजिक सघषण
केवल रे मानव का जीवन ?
सुन्दरता आनन्द प्रेम के स्वप्न चिरतन
क्या केवल प्रभात के उडगण ?
रिक्त शरद घन ?

क्या यह उचित
कि यह सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्ति का करे नियन्त्रित ?
जगम जीवन ज्वर की जडता
करे मनुज आत्मा मर्यादित ?

मानव जीवन नहीं उदधि - सा
केवल कम फेन कल्लोलित,
लहरो की गति क्षण लहरो पर
उठ गिर होती अवसित ।
मानव जीवन नहीं अकल
अतलता ही मे सीमित
वहाँ बूद का मान उदधि स
वही अधिक है निश्चित ।

विदु सि धु ? बूदो का वारिधि
बूदो पर अवलम्बित,
व्यक्ति समाज ? व्यक्ति मे रहता
अखिल उदधि अतर्हित ।
सागर की असीम जड है,
जन समाज की जीवित,
सजन शक्ति का दूत व्यक्ति
परता समाज को विवसित ।

आज अभाव शक्तियाँ जग म
काँटे बोती हैं पग पग मे,
सामाजिक समता का कटु विप
दौड रहा जग की रग - रग मे,
आज भाव की सजन शक्तिया
उतर नहीं पाती हैं म पर,

त्रिं द्योतयन्तः शोभन्ते
 तद्वत् त्रीं देवैः त्रीन् वरः ।
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः ।

धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः ।

धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः
 धाम्ना त्रिं देवैः त्रिं वरः ।

मत्स्य गन्धार्णव

स्वप्नं पश्यन् माण्डव्यं प्रहृष्टः
 ज्योतिरुत्पद्यते गाण्डवः
 मानसि चित्रं - सा मुन्दरः ।
 सहरों से निपट सहर
 सोर रही सहरों पर,
 स्नायु हर्षं रक्षा निहर ।
 पुत्रिन स्वप्न वेदम जडित
 सास हस्ततप्त चीजित
 यदा सोर - सा चित्रित ।
 वाण्य प्रपित मेघ मुभग
 द्वाभा पद्या भ रंग
 उदते ज्यो हृत विहग ।

सी - सी ये लोल लहर
परियो के रत्न विवर
सौघो की स्वण शिखर ।
तट पर मैं रहा विचर
ये परियाँ, सतरंग पर,
कहती आकर बाहर,—

'हम जीवन घात्री वर !'

मुनता मैं फेन मुखर
विगलित मोती के स्वर ।

'जीवन के अणु उवर
पाल पोस पृथ्वी पर
लायी हम, मू नभचर ?'

ज्योति प्रीति प्राण सुघर

सिंधु प्रजा, जन सुलकर
रचे घरा स्वग अमर',—

'देख रही उठ - उठकर

हम मूतट छू दुस्तर
मा की ममता से भर ?'

अरुण ज्वाल

[नवचेतना]

ओ अरुण ज्वाल, चिर तरुण ज्वाल ।

चेतना रुधिर ली सी - कम्पित

जीवन जादू से पद रजित,

ऊपा पावक से खिला क्षितिज

दीपित करती तुम स्वग भाल ।

मेघा मे भर स्वर्णिम मरुद,

रंग रश्मि तूलि से रज अमरुद,

जग की डाली - डाली मे तुम

सुलगाती नव जीवन प्रवाल ।

तुम रक्त सुरा - सी सुर मादन,

जड तुमको पी बनते चेतन,

गुजरित मृग, कूजित कीकिल

मद से मजरित कनक रसाल ।

स्वर्णोदय - सी अतमन मे,

मदिराभा भरती तुम क्षण मे,

नीरव रहस्य के शिखरी पर

बुन श्री सुपमा सुख स्वप्न जाल ।

नभ अनिल सलिल र आज लाल

प्रज्वलित अवनि औ' देश काल,

तुम डुबा रही भव सिंधु पुलिन

आलोक ज्वार सी उठ विशाल ।

स्वर्ण निभर

[सौन्दर्य चेतना]

स्वर्ण रजत के पत्रा की रत्नच्छाया में मुदर
 रजत पण्डित्या सा भरता स्वर्णम किरणो का निभर ।
 सिंहर इन्द्रधनुषी लहरो में इन्द्रनीलिमा का सर
 गलित मोतिया के पीतोज्ज्वल फेनो से जाता भर ।
 वहाँ सूक्ष्म छामाभा के तन तैर अमृत में मादन
 वण विभा से भरी अगमनी से हर लेते मन ।
 वह शोभा की दामा का नीहार लोच चिर मोहन
 सहज स्फुरित हो उठता नीरव अन्तस्तल में गोपन ।
 ऊपा की लाली से कल्पित नव वसत के वापल,
 सौरभ वाष्पा पर पुष्पा के शत रंग किसते प्रतिपल ।
 शशि किरणो के नभ के नीचे, उर के मुख से बचल,
 तुहिनो का छाया बन कंपता रहता नित तारोज्ज्वल ।
 वहाँ एक अम्मरी स्वर्ण तन धद्रातप में निर्मित
 नवल प्रवयवो की जलतल की जाल व्रतति सी शाभित ।
 फूल देह को उसकी घेर स्वर्ण सातसा गुञ्जित,
 एकाकी प्रिय अगो पर कीमल लावण्य अनावृत ।
 मुप्त स्वर्ण के चनागो से सुधर उरोजा पर स्थित
 सुभ्र सुधा के मेघा की जाली उठती गिगती नित ।
 उठे कामना शिखरो से श्वासों से स्वर्णक स्पन्दित,
 रजत प्रीति के उन कलशो पर स्वर्ण शिराएँ वेष्टित ।
 ज्योति भवर-सी सुधर नाभि प्रिय रजत फुहार उदर में
 स्वर्ण वाष्प का धन लटका जघना के माणिक सर में ।
 रजत शक्ति आत्मा के नभ की, भ्रूत उसके स्वर में
 मुक्ता घट में स्वर्ण प्रीति की सुरा लिय वह कर में ।
 मृदुल कामना लतिकामों - सी बाहि प्रीति प्रलम्बित
 आलिंगन भरने को अति कीमल पुलको से कल्पित ।
 अरुण सुरा प्यालो से करतल, प्रणय छिदर से रजित,
 दीप शिखा मी अगुलिया पर हीरक छवि नख ज्योतित ।
 भौरो की गुञ्जारों में दलध कुतल ममण तरंगित,
 जिनके कीमल सुरभित तम में स्वप्न काम के निद्रित ।
 वाणी के उद्गीव हृष सी घीवा की शोभा सित
 भाल भृकुटि श्रुति चिबुक नासिका उसके सतत निरूपमित ।
 स्वर्णम निभर - सी रति सुख की जघामो पर पेशल,
 लिपटी जीवन की ज्वाला उद्दीपन करती शीतल ।
 नव प्रभान किरणो से चुम्बित रक्त कमल में पदतल,
 लहरा उठती पग पग पर स्वर्णमा भू पर बचल ।
 खिले कपोला पर सुपमा के पाटल छवि से लज्जित,
 अघरो पर मदिरा प्रवालाकी बनी मयुर अधरामृत ।

इड्डु रश्मि के कुद मुकुल दशनो मे द्रवित सहज स्मित
नील कमल नयनो मे नीरव स्वर्ग प्रीति का विकसित ।

स्निग्ध स्पश बहता प्राणो मे अमर चेतना सा नव
उर को होता चिर प्रतीति की मधुर मुक्ति का अनुभव ।
मन मे भर जाता स्वर्गिक भावो का स्वर्णिम वभव,
हृदय हृदय का मिल, अभिन्न बनना हो जाता सम्भव ।

यह सौंदर्य विभा रे उसके अमर प्रेम की छाया,
दिव्य प्रेम देही, सुंदरता उसकी सतरंग काया ।
प्रेम सत्य, शिव सार, प्रेम मे नित ध्यान द समाया,
दृढ प्रतीति को उसने अपनी चिर पद पीठ बनाया ।

ज्योति भारत

ज्योति भूमि,
जय भारत देश ।
ज्योति चरण धर जहा सम्यता
उतरी तेजोमेप ।

समाधिस्थ सौंदर्य हिमालय,
श्वेत शान्ति आत्मानुभूति लय,
गंगा यमुना जल ज्योतिमय,
हंसता जहाँ अशेष ।
फूटे जहाँ ज्योति के निभर
पान भक्ति गीता वशी स्वर,
पूण काम जिस चेतन रज पर
लोटे हंस लोकेश ।

रक्तस्नात मूर्छित धरती पर
बरसा अमृत ज्योति स्वर्णिम कर,
दिव्य चेतना का प्लावन भर
दो जग को आदेश !

नोआखाली के महात्माजी के प्रति

कौन खडे उन्नत अविचल, दुधर ऊभा के समुल ?
स्वर्ग दूत-से, जाति भेद का हरने धरणी का दुख ।
देह मात्र से मानव तुम, बल मे अदम्य दृढ भूधर,
ऊध्व चरण धर चलते निश्चल, भू से स्वर्ग क्षितिज पर ।
धोने बौने मे प्रकाश से व्यापक, ऋजु गामी नित,
देवो का पावक कर पुट भर भू पर बरते वितरित ।
आज राम षोदण्ड तुम्हारे वर मे नव सधानिन
दीप्त अहिंसा तीरो स बरता भू तमस पराजित ।
यह ससृति का शस्त्र क्षेत्र मे राजनीति के रोपित
भावी मानव जीवन गौरव उर मे करता जागृत ।

युग के धार्मिक नैतिक धार्मिक सधयों से युष्कृत
 मान्यता मे तुमने फिर नव हृदय कर दिया स्पन्दित ।
 इस वसुधा पर जिस गुवण युग का यह अभिनय उपक्रम
 उसका पा आभास, देव, भूक जाता दीश ससम्भ्रम ।

श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रति

जय निनाद करत जन, ह जन - गण के नायक,
 इस विशालतम जन समुद्र के भाग्य विधायक ।
 ज्योति रत्न तुम भारत के, हृदयोज्ज्वल, चेतन
 प्राणो की स्मित रग श्री मे बहुमुख शोभन ।
 फूला के धाणो का रच नव कुसुमित तोरण
 अभिनदन करता नव भारत का नव यौवन ।
 उरक चिर ताक्षण, पाति म युवति युवक गण
 सडे प्रीति सौदय द्वार बन अपलक लोचन ।
 जननि तुम्हारा मुख शिशुमा म करती चुम्बन,
 मानव होंगे व किसके आदश कर ग्रहण ?

उनत आज हिमाद्रि उठाये नभ मे मस्तक,
 वह शाश्वत भारत प्रहरी, तुम गौरव रक्षक ।
 सिंधु तरंगित हृप स्फीत करता जय गजन,
 निखिल घरा मे करन को सदेश ज्यो बहन ।

शत अभिवादन करता मन भारत के नायक,
 तन के मन के भूखो के नव भाग्य विधायक ।

कोटि हस्त पद करा लोक गण का संचालन,
 ज्योतिर हा तम के मन, शोभित नग्न क्षुधित तन ।
 निर्मित करो पुन भारत का वैभव जीवन,
 आप भूमि पर उठे सांस्कृतिक स्वर्गारोहण ।
 वसुधामयी भरत भू मानवता प्रेमी जन,
 आत्मवान्, ऋषियो के तप से अतमुख मन,
 खुले तुम्हारे हाथो युग युग के जड बंधन
 ज्योति ज्वार-सा जग सुप्त भू का उपचेतन ।
 हो भारत स्वातन्त्र्य विश्व हित स्वर्ण जागरण,
 रक्त व्यथित भू पिये शांति सुख का सजीवन ।
 लोह अस्थि पजर मे यात्रिक युग के भीषण
 मनुष्यत्व का हृदय कर उठे फिर से स्पन्दन ।

ऊध्व दण्ड तुम बनो, इन्द्रधनु - सी, सुरमोहन,
 भारत की चेतना ध्वजा फहरे दिक् शोभन,
 जीवन स्वप्न रग स्मित, अंतरश्मि प्रज्वलित,
 प्रीति शिक्षा सी, विश्व व्योम कर ज्योति तरंगित ।

श्रवगुण्ठिता

वह कैंसी थी,
श्रव न बता पाऊँगा
वह जैसी थी ।

प्रथम प्रणय की आँखों ने था उसको देखा,
यौवन उदय,

प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा ।

ऊपा का श्रवगुण्ठन पहने,
बसा जान खग पिक से कहने,
मौन मुकुल सी, मदु अगो मे
मधुऋतु बदी कर लायी थी ।
स्वप्नो का सौंदर्य, कल्पना का माधुर्य
हृदय मे भर, आयी थी ।

वह कसी थी,
वह न कथा गाऊँगा
वह जैसी थी ।

‘क्या है प्रणय ।’ एक दिन बोली, ‘उसका वास कहा है ?

इस समाज मे ? देह मोह का,
देह द्रोह का आस जहा है ?

‘देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की,
यह अनहोनी रीति,

देह वेदी हो प्राणों के परिणय की ।

‘बंधकर हृदय मुक्त होते है,
बंधकर देह यातना सहती,
नारी के प्राणों मे ममता,
बहती रहती, बहती रहती ।

‘नारी का तन मा का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित,
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है,
सुख विलास के हित उरकण्ठित ।

‘तुम हो स्वप्न लोक के वासी,
तुमको केवल प्रेम चाहिए,
प्रम तुम्हे देती मैं अबला,
मुझको घर की क्षेम चाहिए ।

‘हृदय तुम्ह देती हूँ, प्रियतम
देह नहीं दे सकती,
जिसे देह दूगी श्रव निश्चित

स्नेह नहीं दे सकती !

'मृत विदा दा मा के साथी,
तुम नभ के, मैं मू की वासी,
नारी तन है, तन है, तन है,
हे मन प्राणो के अभिलाषी !

'नारी देह शिला है जो
नव दहो के नव दीप सजोती
जीवन कैसे दही होता,
जा नारीमय देह न होती ?

'तुम हो स्वप्नो के द्रष्टा, तुम
प्रेम जान भ्रौ' सत्य प्रभाषी,
नारी है सी दय, प्राण,
नारी है रूप सृजन की प्यासी !

तुम जग की मोचा, मैं घर की,
तुम अपने प्रभु, मैं निज दासी,
लज्जा पर न तुम्हें धाती,
बन सकते नहीं प्रेम सयासी !'

'विदा !' 'विदा !'

'शायद मिल जायें यदा कदा !'

मैं बोला, 'तुम जाग्रो,
प्रसन्न मन जाग्रो, भरा भाषी,'
उसके नयना मे भ्रौंसे थे,
अधरा पर निश्चल हाँसी !

वह क्या समझ सकी थी, उस पर
क्यों रीभा था यह आत्मातुर
स्वप्न लोक का वासी ?

मैं मौन रहा,
फिर स्वत कहा,
'बहती जाग्रो बहती जाग्रो,
बहती जीवन धारा मे,
शायद कभी लौट आग्रो तुम,
प्राण, बन सका अजर सवहारा मैं !'

चिन्मयी

वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी
मेरी बिर सहचरी, मानसी !

शुभ्र हिमानी का तन अचल,
आते जाते शत रँग पल पल,

निश्चल अंतर, चितवन चंचल
 भरते अश्रु, अजल स्थिर हँसी।
 स्वच्छ कुंद की कलियों का तन,
 सुरभि - रहित सौरभ का शुचि मन,
 ज्योत्स्ना से गुण्ठित शशि आनन
 अवनि, अनिल, आकाश में बसी।
 सहज चेतना की प्रकाश वह
 एक किरण, सतरंग विलास वह
 विद्व प्रभ्र पर इद्रहास वह
 पथ्वी के तृण तृण पर विलसी।
 खोल कल्पना के उर में पर
 स्वर्गिक शोभा की उडान भर
 फिर - फिर आती हृदय में उतर
 मात्र हसिनी वह उर सरसी।
 मधु गाती गुण, भर पिक कृजन,
 शरद पद्म सित करती अपण
 हिम उसकी स्मिति करती वपण,
 वर्षा भरती मंगल कलसी।
 वह हिमाद्रि की मुक्त तापसी।
 मेरी चिर प्रेयसी, मानसी।

हिमाद्रि और समुद्र

वह शिखर - शिखर पर स्वर्गोन्नत
 स्तर पर स्तर ज्यो अतविकास
 चढ सूक्ष्म सूक्ष्मतम चिद नभ में
 करता हो शुचि शाश्वत विलास।
 वह मौन गभीर प्रदान्त ऊध्व
 स्थित धी असंग चिर निरभिलाष
 आत्मा की गरिमा का मू पर
 बरसाता हो अकल्प प्रकाश।
 वह निर्विकल्प चेतना शृंग
 उठ स्वर्ग क्षितिज से भी ऊपर
 अन्तगौरव में समाधिस्थ
 अपनी ही सत्ता पर निमर।
 वह ज्यो असीम सौंदर्य अमर
 जो तण तण पर से रहा निखर,
 वह रोमाचित आनंद, नृत्य करता
 विमुग्ध भव जित लय पर।
 यह ज्यो अमृत जीवन वारिधि
 अहरह अशांत प्रौ' उद्वेलित,

जिसके निस्तप्त गहरे रंग में
अगणित भव के युग अर्थात्हित !
जग की अबाध आकांक्षा से
इसका अतस्तल आदालित,
गुण - दुःख घागा - घासवा के
उदयान पता से चिर मणित ।
यह मनश्चेतना ज्या सत्रिय
मू के चरणों पर विग्रर - विखर
दात म्नेहोच्छ्वसित तरगा की
बाँहा मे लेती मू को भग ।
नभ स बन पवा, पवन से जल,
लालायित यह चेतना अमर
सोयी धरती म लिपट, जगान
उमे, युगो की जडता हर ।
वह महानाल सा रे अलघ्य,
जो दादवत स्वग मत्य प्रहरी,
यह महादिशा - सा ही अकल
जिसमे विराट ससृति सहरी ।
हिमगिरि की गहराई ऊँची,
सागर की ऊँचाई गहरी
छाया प्रकाश की ससृति के
जीवन रहस्य मे है छहरी ।

भू प्रेमी

चाँद हस रहा निबिड गगन मे, उमड रहा नीचे सागर,
इन्द्रनील जल लहरो पर मोती की ज्योत्स्ना रही विखर !
महानील से वही सघन मरकत का यह जल तत्त्व गहन,
जिसमे जीवन के जीवो का किया प्रथम आश्चय सृजन ।
जल से भी निष्ठुर धरती का लेकर धीरे अलम्बन
जलज जीव न सजग बढाये क्रम विकास के अथक चरण ।
मू के गहरे अघकार म वही जीव अनिमेष नयन
देख रहा नभ और ज्योति के लिए, जहाँ रवि शशि उडुगण ।
धरती के पुलिनो मे उसकी आकाक्षाएँ उद्वेलित
फिर फिर उठती गिरती ऊपर के प्रकाश से आदोलित ।
अच्छा हो, मू पर ही विचरे यह मू का प्रेमी मानव,
मधुर स्वग आकर्षण स नित होता रहे तरणित भव ।
विस्तृत जो हो जाये मानव अंतर, चेतनता विकसित,
आत्मा के स्पर्शों से मू रज सहज हो उठेगी जीवित ।
अंतर का रूपांतर ही श्री बाह्य विश्व का रूपांतर,
नव चेतना विकास धरा को स्वर्ग बना दे चिर सुन्दर !

जन मन के विकास पर निम्नर सामाजिक जीवन निश्चित
संस्कृति का भू स्वर्ग प्रमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित ।

पूषण

मैं पूषण हूँ, धरती का ज्योतिमय ईश्वर,
स्वर्ण रजत का चिर प्रकाश बरसाता भू पर ।
जब धरती सोती तमिस्र का दे भ्रवगुण्ठन,
मैं सुधांशु बन भरता दिव स्वप्नो स जन मन ।
मरे ही अगणित लोचन अपलक तारक गण
अधवार को प्रहसित करत भू भय छेदन ।
मेरी किरणो से भरता धरती पर जीवन,
प्राणो से तण तरु जीवो का करता पोषण ।
मेरा यह सदेश उठो हे, जागो, भूचर,
तुम हो मेरे असा, ज्योति सतान तुम प्रमर ।
छोडो जडता, छिन करो भव भेदो का तम,
तुम हो मुझसे एक, एक तुम भूतो स, सम ।
करो आत्मबल सचय तोडो मन के बधन,
स्वर्ग बनाओ वसुधा को, भुज श्रम से शोभन ।
अधवार स लडो, यही मनुजोचित जीवन,
देवो के ही मुकुद तुम्हारे श्रम मुक्ता कण ।
एक मात्र से हो सकती मानवता निमित्त,
पूषण मे सयुक्त रहे जो मानव निश्चित ।
आत्म ऐक्य हो नीव मनुष्य समाज का भवन
स्वर्गोन्नत हो, मुक्त व्यक्ति रुचि के वातायन ।

जिज्ञासा

यह ओसो की डाल पियो दी किसने जीवन के प्रांगन मे ?
हास अश्रु की सजल ज्वाल यह किसने फँला दी दिशि क्षण मे ।
ताराग्रो स पुता हुआ नीरव अनत चिर अवनत ऊपर
कौन गहन के भ्रवगुण्ठन से भाक रहा वह हँस हँस भू पर ?
इस धरती के उर मे है उस शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट जीवन वारिधि का उद्वेलन ।
किस अदम्य आकाशा से अतरतम जग का रे आदीलित,
किसकी गति से अमित महा नीलिमा बन गयी कसे ज्योतित ।
यह अगाध निस्तल रहस्य किसका अबूल मे व्याप्त नील घन,
तडक रही जिसमे विद्युत सी विदय कामना भर गुरु गजन ।
कयो प्राणो से हरित धरित्री किस सुख से जीवन अणु स्पन्दित ?
किसकी शुभ किरण यह सहसा सतरंग इन्द्र धनुष में चित्रित ।

लौट लौट आते तट छुकर वाद विवाद शास्त्र यह् दशन,
सतत डूबते उतराते सुख दुख इच्छाएँ जन्म म्रौ मरण ।
श्याम, विश्व धनश्याम, गहन धनश्याम रहस्य धनत चिरन्तन,
चिर भनादि भजेय, पार जा पाते नही चशु वाणी मन ।

स्वर्णिम पराग

[मन]

स्वर्णिम पराग, स्वर्णिम पराग ।

यह उठता सुमनो स मन वे,
जीवन का स्वर्ण हास्य बन वे,
छा जाता भू-नभ पर छन वे,
रँग रँग भावा का मधुर राग ।

पीली लौ - सी भलकें कुचित,
करती तन प्राणो की पुस्तकिन,
सौरभ से भग जग समुच्छ्वसित,
इसके रोमों मे भरी प्राग ।

यह रे हिरण्य का भवगुण्डन,
चेतना हँके जिससे भानन,
दिशि दिशि मे इसकी स्वर्ण विरण
बरसाती श्री सुपमा सुहाग ।

यह स्वर्ण प्रीति मधु से गर्भित,
चिर मम कामना से सुरभित
प्राणो के चल सुख से गुजित,
मद को पी गाते जन विहाग ।

भीतर बाहर इससे रजित,
इसकी रज से जीवन निर्मित,
कुबुम वे म्पशों से मोहित
खेलते चराचर प्रणय फाग ।

ऊषा

[मन स्वर्ण]

(१)

लो, वह आयी विश्वोदय पर
स्वर्ण कलश वक्षोजी पर धर ।
अध विवत कर ज्योति द्वार पट,
ज्वलित रश्मियो की अजलि भर ।

वह पवित्रता सी अभिपेक्षित
सद्य स्फुट शोभा म आवत,

प्रायी अरुणोदय मन्दिर मे
पथ प्रकाश वा करने विस्तृत ।
मानन म लावण्य अगुण्ठित,
प्रीति दष्टि आलोक से स्तिमित,
दिव्य चेतना की ऊपा वह
अधर पल्लवो म प्रभात स्मित ।

ज्योति नीड के विहग जगे, गाते नव जीवन मगल,
रजत घण्टियाँ बजी अनिल म, ताली देते तरुदल ।
चूम विकच नलिनी उर, गुजे गीत पख मधुकर दल,
नृत्य तरंगित बहे स्रोत, ज्यो मुखरित मू पग पायल ।
विहसे हिमकण किरण गम, स्वर्गिक जीवन के-से क्षण,
खोल तणो के पुलक पख उडने को मू के रज कण ।
खिसका वसुधा के उरोज शिखरो से चल मलयाचल,
सरिता वी जाघो स सरका लहरा रेशम सा जल ।
स्वग विभा धरती को छू हो उठी मुरजित
ज्योति तमस मिल हुए विश्व द्वाभा मे विकसित ।
शुभ्र चेतना हँसी हृदय के रागा मे स्मित
जीवन के वैभव से हुई, धरा रज कुसुमित ।

रग चपल पुष्प हास पख खोल भूमि कत
मग गुजरित, पिकी रटित जगा नवल बसत ।
नव प्रवाल प्रज्वलित श्वसित रजत हरित दिगत
गीत गद्य मधु मरद हिम अघित समीर मद ।
अमद रहस गीत नृत्य नाद स दिशा ध्वनित,
अनत नीलिमा सजन तरंग मणिमा गलित ।
अवाध कामना मधित समुद्र वारि उच्छ्वसित,
अलघ्य शैल श्रुग मौन चित्र शांति मजडित ।

कजो के कम्पित मृतल पर
ढँक रजत हरित जाली स तन
छाया वी बाँहो मे आतप
अंगडाता स्वप्नो से उमन ।
इलय कर कचुक की पखडियाँ
कलियो के नव उर कर विवसित
फूली पर कँपता मलयानिल
स्वर्णिम मरद रज से सुरभित ।
लहरो से लिपट रही लहरें
तरुघो से लतिकाए कोमल
मू रज पर लोट रही किरणें
तरुदल को चूम रहे तरुदल ।

स्वण रजत की धूलि, भरा रे निखिल दिगत,र,
मनश्चेतना चूण उड रहा हो ज्या भास्वर ।
दिय उपा के मनोहास्य से दिशि आलोकित,
सूक्ष्म सष्टि नीहार सजन मुख से आदोलित ।

नव प्रवाल लाली मे गुण्ठित
छुईमुई - सी लज्जा कोमल,
मसूण जलद मे शशि छाया - सी
आजा, दिपती छिपती प्रतिपल ।
अधरो पर मरती मधु ममर,
कंपते गालो मे स्वर्णम सर,
स्वग विभा रज तन को छूकर
खिलती सकुचाती क्षण क्षण पर ।

द्रीडा दीडी मू पर आ ऊपा के मुख पर
प्रणय रुधिर से हृदय शिराएँ काँपी धर धर ।
अधर पल्लवो मे जागा मधु स्वर्णम ममर,
मौन मुकुल मुख खिला लालिमा से रग सुंदर ।
क्या था गिरि कुंजो मे, सरित तटो मे गोपन,
लिपटी मम मधुर लज्जा मे जो अमर किरण !
सलज किसलयो का धर धानन पर अमरगुण्ठन
स्वग चेतना बनी लाज मदिरा पी मोहन ।
नवल उरोज सरोज हुए सरसी के दोलित,
लहरो का आंचल दे वह तन करती आवत,
अमिट कामना स्पर्दित पटपट शत स्वर गुंजित
उडते, ईपत् नव कलियो का मुख कर चुम्बित ।

रत्नच्छाया मे ज्यो परिवत
आयी सज्जा चरण धर रणित,
मणि मुवताओ के कर इगित
स्वण रजत सुपमा मे भङ्कित ।
पुष्प पंखडियो के शत रंग पर,
तुहिन तरल नख नव पल्लव कर,
धरती पग कुट नभ कुछ मू पर
इन्द्रधनुष प्रति रजकण मे भर ।

किया तापसी को नव कलियो ने मिल सज्जित,
मधुश्लु के रगो की चोनी से कर वेष्टित ।
लिपटी लता पदा से चल अलियो ने गुंजित,
स्वण मजरित कटि काँची भनकी पिव कूजित ।

मल्लिका बनी हृदय का हार
स्वण गेदा श्रुति भूषण स्फार,
गचो मे मधु अकुल सुकुमार
हंगे कवण बन हरतिगार ।
सूयिका बनी यलय कोमल
बुमुद बदीजो बीच तरल ।
नील का पल गिरीष नवल
पदा पर विल बजुल पायन ।

जलधि से लहरे चचल प्राण,
खिला सरसिज सा जीवन सार,
हृदय के शत-दल खुले अज्ञान
भाव सुपमा मे रँग सुकुमार ।
सलिल पर ज्यो पक्क के पत्र
चेतना पर जीवन का भार
लगा तिरने, स्वप्नो का छत्र
पद्म सा जगा मनस साकार ।
मम मे अमृत प्रीति मधुकोष,
दलो मे ध्वनित स्पहा गुजार,
स्वय ज्यो जीवन का परितोष
बना शोभा विकास विस्तार ।

अमर चरण रँग हृदय राग से, मरण शील बन,
परम अहम, चेतना बुद्धि बन, तपस से सृजन
करने लगे मनो जीवन का स्वप्नो से धन,
आत्मा का ऐश्वर्य बाध भावो मे मोहन ।
तुहिन कणो का मुकुट पहन आनन्द बना सुख,
चटुल लहरियो पर चल, किरणो स डँक स्मित मुख ।
स्रोतो मे मोती, तरुदल मे वाचन ममर
रजत अँगुलियो मे समीर के पुलक स्पश भर ।
हृदय शिराएँ भ्रुकुन, पलक निमिष से चचल,
उतरा वह भू पर पकडे शोभा का अचल ।
रोमो मे विद्युत, श्वासो मे विस्मृति मादन,
मदिर प्रीति की स्वर्ण सुरा का पी सजीवन ।
गात्र कनक चम्पक ज्योत्स्ना का, केसर पुलकित,
रजत हंस उर के नव इन्द्र जलद से सवत,
शोभा थी स्वप्नो की कोमलता से कल्पित
स्वर्ण किङ्किणी स्मित प्रवाल अघरो पर भ्रुकुत ।
सीप छटा सा उदर, नाभि मुक्ताफल सी स्मित,
पुष्प पुलिन जघनो पर चिर लालसा तरंगित,
वह लावण्य अतति थी कटि तनिमा से दोलित,
प्रीति पाश बाँह पुलको से स्पश प्रलम्बित ।
उसे देख, वसुधा के स्वप्नो का जग अपलक
रँग - रँग की पखडियो मे खिल उठा अबाक ।
रगो का हँस उठा इन्द्र सम्मोहन व्यापक,
गूज उठी, कल कूक उठी कामना जग अथक ।
मधुलिह चुम्बि शिरीष वेणि लेखा शशि आनन,
सुरभि वाष्प के वसन हिमानी धौत कुमुम तन,
आयी प्रीति, पकड प्रतीति का रश्मि-स्पश कर
उर स्पन्दन से दोलित, आशा के खोले पर ।

स्वप्नो वा पट बुन उसने, उर रागो से रँग,
जम मरण, सुख दुख, विरह मिलन बाँधे संग संग ।
उदधि उच्छ्वसित, पृथ्वी पुलकित, अपलव उडुगण,
रह भवाक गिरि, किया सभी ने आत्म समपण ।
प्राणो के स्वप्नालिंगन मे बंध वसुधा पर
सृजन - प्राण बन गये स्वय को भूल चराचर ।
रक्त सुरा, सगीत बना उर - उर का स्पदन,
पुलको मे पल्लवित हस उठे जड भ्रौ' चेतन ।
तुहिन वाष्प के सुरँग जलद से छादित
इन्दु रश्मि के इन्द्रजाल से स्पर्शित,
अध विकच कलिका के उर मे जूझित
स्वप्न दिखायी दिया रहस सुख से स्मित ।
स्वर्णिम वेसर की अलकें थी सुरभित,
अध खुले लोचन रहस्य से विस्मित,
ऊर्मिल सरसी सा उर शशि कर गुम्फित,
इन्द्र धनुष छाया पट से तन आवृत ।

सजन प्ररोह हृदय में था चिर गोपन,
मुग्ध कल्पना संग कर उसने प्रजनन
मरा घरा मे अतुल मनोमय जीवन,
उर - उर मे मधु आकाशा वा गुजन ।

हिम कुंदेदु समान कल्पना शोभित
सित सरसिज पर लेटी शशि कर सी स्मित,
धूप छाह रँग तिर अचल मे अगणित
करते थे मानस को रग तरंगित ।
प्राणो की भङ्कृत तन्त्री कर मे घर
बरसाती उर मे रागो के मधु स्वर,
मुघर इगितो से शोभा पडती भर
मम मधुर गीरव स्मित से रस निभर ।
भायी आशा, शशि की रजत तरी पर चढकर,
स्वण हास्य से आलोकित कर मेघो का घर ।
गीत स्वप्न से ग्रथित मनोजव के खोने पर,
चपल तडित भ्रू भगो से पुलकित कर अतर ।
रजत पल्लवो की ज्वाला से वेष्टित प्रिय तन,
उदधि ज्वार पर चढ फेनो पर करती नतन ।
चिर अघखुले उरोजो पर जलते थे उडुगण,
रजस्राव के अन्नक से ज्योतित मू रज कण ।
शरद चन्द्रिका स्नात मल्लिका सी नव निमल
हिम वाष्पो का भीना पट पहने किरणोज्ज्वल,
शैशव की स्मित सी प्रतीति भायी चिर निरछल,
भर धनभ्र नीलिमा मौन नयनो मे निस्तल ।
स्वर्ग सुधा ला इन्दु रश्मि घट मे हिम जल स्मित
पावन उसने किये हृदय भेदो से पीडित,

दशनो की प्राभा स्मिति से अन्तर कर विगलित,
 प्राण किये कोमल मृणाल के तंतु में प्रथित ।
 लहरो के पुलिनो से अचपल
 जागे घंघ शीघ उर सम्बल,
 हिम शिखरो से उन्नत अविचल
 अन्तर पौरुष से अरुणोज्वल ।
 रजत स्वण ज्वाला के सुंदर
 कर में घरे त्रिशूल अभयकर,
 कम्भा लहरो के तुरगो पर
 आये वे तम भ्रम के जित्वर ।
 नभ - से नीरव निस्तल लोचन,
 धरती - सा था धीरज का मन,
 शीघ सपल अद्रि - सा शोभा,
 छू न सका था जिस वृद्धन् ।
 आत्म त्याग,—तप से दीपित तन,
 मृत्यु वण्ट, आपद आभूषण,
 प्रकट हुआ, आक्षितिज थे नयन,
 ममता घन से शूय उर गगन ।
 सेवापगा, विरति शशि मस्तक
 थी विनम्रता उर में नत सक्,
 शांत गहन निशि नभ-सा अपलक,
 अयक कम रत, भव से अपयक ।

सेवा उतरी, ज्यो गगा जल,
 कलुष तपित लहरो से चचल,
 वीतराग तन पर सध्याचल
 नत मुख पर श्रमकण मुक्ताफल ।
 स्तिमिन दष्टि थी, अघर सहज स्मित
 सेवा का वक्षस्थल विस्तत,
 ध्रुव तारा से पय चिर ज्योतित,
 काटो को करती थी वुसुमित ।
 सौं कृतज्ञता थी, सजल नयन,
 भाकुल अन्तर, मूक थे वयन
 सुघर कुई सी स्वप्निल चितवन
 लिपट अतति सी जाती तत्क्षण ।

विनत मुकुल सा सुहृद था विनय,
 अरुण शील चिर निरलस, निभय ।
 वह स्वभाव ही से था सहृदय,
 निज अतर्कभय में तमय ।
 इंदु विभा ज्यो जलदो से छन
 बेला वन में लगती मोहन,
 मोन मधुर गरिमा से शोभन
 घना शील सस्कृत जग जीवन ।

जुगनुग्रो के ज्योति मण्डल से घिरा मुप शात
 तारिकाग्रो की सरसि सा म्यप्न स्मित उर प्रात,
 इन्द्र विगलित दारद धन सा वाप्य का तन कात
 सजल कम्पा था खडी ज्या इन्द्र धूम दिनात ।
 अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार,
 अश्रु फेनों से स्फुटित स्फुटित उरोज उभार,
 आर्द्र सौरभ श्वास, स्मित हिम अस्त हर्षिगार,
 स्खलित होते स्रोत भू से मुन चरण भजार ।

सहचरी थी क्षमा, सौरभ रश्मि चुम्बित भाल,
 युग पयोधर थे सुधास्रुत ज्योति क्लेश विशाल,
 गाय की घर अक में मुख चूमती थी बाल,
 दृष्टि पथ पर पल खोले शुभ्र रजत मराल ।
 दीप ली सी थी अंगुलियाँ बरद कर मे स्फार,
 चूम अघरो को सुरा बनती सुधा की धार,
 स्पर्श पा हँसता पुलक सुख से व्यथा का भार,
 मरय से था स्वग तक दग नीलिमा विस्तार ।

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अतर्लौचन,
 उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय थी तन ।
 बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
 दिव्य रजत नीहार शान्ति से मण्डित भ्रानन ।
 भू प्रदीप की शिला स्वग की ओर ऊर्ध्वचित
 वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणो की शोभित,
 सूक्ष्म चेतना सिंधु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
 शुभ्र उपा सी थी उर नभ मे उदित अगुण्डित ।

साथ भक्ति थी, रोमाचो की सक सी पावन,
 नयनो के अग्रो सं भरते थे प्रकाश कण ।
 अघरो के पुलिनो पर बहुता स्मिति का प्लावन,
 उर कम्पन मे बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण ।
 तप्त कनक द्युति देह, सहज चन्दन सी वासित,
 गैरिक श्रृंगो से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
 मित कर्पूर शिखर सी, दिव्य शिखा से दीपित,
 साध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अपित ।
 रक्त धनो की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित,
 ज्वलित अचियो की प्रतिभा, हो तडित सी स्फुरित,
 दौडी मानम लहरी पर आलोक चमकृत,
 सुरंग खगों से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित ।

वण वण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
 चपल चौकडी भरता शशि मग था प्रिय सहचर !
 तिग्म सुरभि सी - उडती थी मास्त पखों पर,
 दिव्य प्ररणा किरणो की जाली मुख पर धर !

मुक्ति, सत्य श्री' श्रेय भ्रन्त मे हुए अवतरित,
 सष्टि पद्म सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विकसित ।
 बाधन हीन विविध बाधन मे बँधती वह नित,
 सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम स बन वाष्प अपरिमित ।
 मुक्ति पद्म पर घरे, सत्य आलोक के चरण
 हँसता था, भ्रान्त से उठा हिरण्मय गुण्डन,
 निज पर वो ज्या भूल घरा के जड़ श्री चेतन,
 सत्य बन गय, स्वय सत्य था रज का प्रतिक्षण ।
 सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
 सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर ।
 घरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर
 सत्य हृदय मन इन्द्रिय, सत्य समस्त चराचर ।
 अकथनीय था सत्य, ज्योति मे लिपटा शाश्वत,
 अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृंग सी महत् ।
 दृष्टि रश्मि थी ज्योति पथिक श्री' स्वय ज्योति पथ,
 घावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ ।
 किरणो के दूर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
 शुभ्र हस घरे थे उसने पल खोल स्मित ।
 था अकूल भ्रान्त उदधि उर मे उद्वेलित,
 ज्योति चूण भरता अगो से मुक्त अनावृत ।
 तरुण सत्य के अघ विवृत जघनो पर सिर घर
 लेटी थी वह दामिनि सी रुचि गौर कलेवर,
 गगन मग - मे लहराय मृदु कच अगो पर,
 वक्षोजो के खुले घटा पर लसित सत्य कर ।
 समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ निरन्तर,
 घरे अक मे भू का, सुर जल खोत शीप पर,
 ताप गल मे, सुधा शक्ति मस्तक पर भास्वर,
 लिपटा तन से भाव विमूति, अभाव भोगधर ।
 देश काल सदसद् से पर, त्रिक तप शूल धर
 देवो का पोषक था वह, दैत्या का जित्वर,
 काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
 वह स्वर्णम किरणो से मण्डित, पाप तमस हर ।
 इस प्रकार चिर स्वर्ग चेतना हुई प्रतिष्ठित
 जीवन शतदल पर, मन के देवो से भूषित ।
 जड़ धरणी के ताप शाप दुःख दैत्य अपरिमित
 बाको से पर खोल, हुए लय तमस मे अचित् ।

चन्द्रोदय

वह सोते का चाद उगा ज्योतिमय मन मा,
 सुरेण मेघ अवगुण्डन से आभा भ्रान्त मा ।

जुगनुग्रो के ज्योति मण्डल से घिरा - मुख शांत
 तारिकाश्री की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रात,
 इन्दु विगलित शरद घन सा वाष्प का तन कांत
 सजल कण्ठा थी खडी ज्यो इन्द्र धूम दिनात ।
 अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार,
 अश्रु फेनी से स्फुटित स्फुटित उरोज उभार,
 आद्र सौरभ श्वास, स्मित हिम-स्रस्त्र हरसिगार,
 स्वलित होत स्रोत भू से सुन चरण मगार ।

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि घुम्बित भाल,
 युग पयोधर थे सुधासूत ज्योति फलश विशाल,
 'याय को घर अक मे मुख चूमती थी बाल,
 दृष्टि पथ पर पल खोले शुभ्र रजत मराल ।
 दीप लो सी थी अंगुलियाँ वरद कर मे स्फार,
 चूम अघरो को सुरा बनती सुधा की धार,
 स्पश पा हँसता पुलक मुख से व्यथा का भार,
 मत्य से था स्वर्ग तक दृग नीलिमा विस्तार ।

आभा देही अद्वा प्रकटी अतर्लोचन,
 उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय-श्री तन ।
 वरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
 दिव्य रजत नीहार शांति से मण्डित आनन ।
 भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की श्रोर ऊध्वचित
 वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणो की आभित,
 सूक्ष्म चेतना सिधु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
 शुभ्र उपासी थी उर नभ मे उदित अगुण्ठित !

साथ भक्ति थी, रोमाचो की स्रक सी पावन,
 नयनो के अश्रु से भरते थे प्रकाश कण ।
 अघरो के पुलिनो पर बहता स्मिति का प्लावन,
 उर कम्पन मे वजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण !
 तप्त कनक द्युति देह, सहज चदन सी वासित,
 गैरिक शृंगो से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
 सित कर्पूर शिखर-सी, दिव्य शिखा स दीपित,
 साध्य पद्म सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अर्पित ।
 रक्त घनो की दीप गुहा से, दृष्टि वर अर्चित
 ज्वलित अर्चियो की प्रतिभा, हो तडित सी स्फुरित,
 दौडी मानस लहरो पर आलोक चमकृत,
 सुरंग खगा से उडत थे स्वर शब्द बल ध्वनित ।

वण वण की गलित विभा से स्रवित कलेवर,
 चपल चौकडी भरता शशि मग था प्रिय सहचर !
 तिग्म सुरभि सी उडती थी मारत पखो पर
 दिव्य प्ररणा किरणो की जाली मुख पर धर ।

मुक्ति, सत्य श्री' श्रेय अन्त मे हुए अवतरित,
 सष्टि पक्ष सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विवसित ।
 बधन हीन विविध बधन मे बँधती वह नित,
 सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम स बन वाष्प अपरिमित ।
 मुक्ति पक्ष पर धरे, सत्य आलोक के चरण
 हँसता था, आनन से उठा हिरण्मय गुण्डन,
 निज पर वो ज्या भूल घरा के जड श्री चेतन,
 सत्य बन गये, स्वय सत्य था रज का प्रतिवण ।
 सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
 सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर ।
 घरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर,
 सत्य हृदय मन इन्द्रिय, सत्य समस्त चराचर ।
 अकथनीय था सत्य, ज्योति मे लिपटा शाश्वत,
 अणु से भी लघु देह ज्वलित गिरि शृंग सी महत ।
 दष्टि रश्मि थी ज्याति पथिक श्री' स्वय ज्योति पथ,
 धावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ ।
 किरणो के द्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
 शुभ्र हस धरे थे उसने पक्ष खोल स्मित ।
 था अकूल आनन्द उदधि उर मे उद्वेलित
 ज्योति चूण भरता अगा से मुक्त अनावत ।
 तरुण सत्य के अध विवत जघनो पर शिर धर
 लेटी थी वह दामिनि सी रवि गौर कलेवर,
 गगन भग मे सहराये मृदु कच अगो पर,
 वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर ।
 समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरूढ निरन्तर
 धरे अक मे मू का, सुर जल स्रोत शीप पर,
 ताप गल मे, सुधा शान्ति मस्तक पर भास्वर
 लिपटा तन से भाव विमूति, अभाव भोगधर ।
 देश काल सदसद् से पर, त्रिक तप शूल धर
 देवो का पोषक था वह, दैत्यो का जित्वर,
 काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
 वह स्वर्णिम किरणो से मण्डित, पाप तमस हर ।
 इस प्रकार चिर स्वय चेतना हुई प्रतिष्ठित
 जीवन शतदल पर, मन के दबो से भूपित ।
 जड घरणी के ताप शाप दुख दैय अपरिमित
 काको से पर खोल हुए लय तमस मे अचित ।

चन्द्रोदय

वह सोते का चाट उगा ज्यातिमय मन सा,
 सुरेग मेघ अवगुण्डन से आभा आनन मा ।

जुगनुओ के ज्योति मण्डल से घिरा - मुख शांत
 तारिकाओ की सरसि सा स्वप्न स्मित उर प्रात,
 इंदु विगलित शरद धन-सा वाष्प का तन कांत
 सजल करुणा थी खडी ज्यो इन्द्र धूम दिनांत ।
 अतल नील अकूल नयनो का द्रवित नीहार,
 अश्रु फेनो से स्फुटित स्फुटित उरोज उभार,
 आद्र सौरभ श्वास, स्मित हिम अस्त हरसिगार,
 खलित होत स्रोत भू से सुन चरण भवार ।

सहचरी थी क्षमा, गौरव रश्मि चुम्बित भाल,
 युग पयोधर थे सुधासूत ज्योति कलश विशाल,
 पाय को धर अक मे मुख चूमती थी बाल
 दृष्टि पय पर पल खोले शुभ्र रजत मराल ।
 दीप ली सी थी अंगुलियाँ वरद कर मे स्फार,
 चूम अधरो को सुरा वनती सुधा की धार,
 स्पश पा हँसता पुलक मुख से व्यथा का भार,
 मत्य से या स्वर्ग तक दग नीलिमा विस्तार ।

आभा देही श्रद्धा प्रकटी अतलोचन,
 उर की सार सुरभि से कल्पित था प्रिय श्री तन ।
 बरसाती आशीष रश्मि थी स्वर्गिक चितवन,
 दिव्य रजत नीहार शांति से मण्डित आनन ।
 भू प्रदीप की शिखा स्वर्ग की ओर ऊर्ध्वचित
 वह निश्चल निष्कम्प, स्तम्भ किरणो की शोभित,
 सूक्ष्म चेतना सिंधु मथन से स्वत प्रस्फुटित,
 शुभ्र उपा सी थी उर नभ मे उदित अगुण्डित ।

साध भक्ति थी, रोमाचो की सक् सी पावन,
 नयना के अश्रु से भरते थे प्रकाश कण ।
 अधरो के पुलिनो पर बहता स्मित का प्लावन,
 उर कम्पन मे बजते प्रिय पग नूपुर प्रतिक्षण ।
 तप्त कनक द्युति देह, सहज चदन सी वासित,
 गौरव शृंगो से उरोज थे अश्रु माल स्मित,
 सित कपूर गिलहर-सी, दिव्य शिखा से दीपित,
 साध्य पत्र सा ध्यान मग्न उर प्रिय को अपित ।
 रक्त घना की दीप गुहा से, दृष्टि कर चकित
 ज्वलित अक्षियो की प्रतिभा, हो तडित सी स्फुरित,
 दोडी मानस लहरो पर आलोक चमत्कृत,
 सुरंग खगा से उडते थे स्वर शब्द कल ध्वनित ।

वण वण की गलित विभा से सवित कलेवर,
 चपल चौकडी भरता शशि मग या प्रिय सहचर ।
 निम्न सुरभि सी उडती थी मास्त पलो पर,
 दिव्य प्रेरणा किरणो की जाली मुख पर धर ।

मुक्ति, सत्य औ' श्रेय अन्त म हुए अवतरित,
 सृष्टि पक्ष सी मुक्ति हुई दश दिशि मे विकसित ।
 बंधन हीन विविध बंधन मे बँधती वह नित,
 सूक्ष्म वाष्प से हिम, हिम से बन वाष्प अपरिमित ।
 मुक्ति पक्ष पर घरे, सत्य आलाक के चरण
 हँसता- था, आनन से उठा हिरण्मय गुण्डन,
 निज पर का ज्या भूल घरा के जड औ चेतन,
 सत्य बन गय, स्वय सत्य था रज का प्रतिकण ।
 सत्य सुदूर समीप, सत्य था भीतर बाहर,
 सत्य एक बहु, सूक्ष्म स्थूल, केवल, क्षर अक्षर ।
 घरा सत्य थी, सत्य पवन जल पावक अम्बर,
 सत्य हृदय मन इन्द्रिय, सत्य समस्त चराचर ।
 अकथनीय था सत्य, ज्याति मे लिपटा शाश्वत,
 अणु स भी लघु देह ज्वलित गिरि शृंग सी महत् ।
 दृष्टि रश्मि थी ज्याति पथिक औ' स्वय ज्योति पथ,
 धावित स्थिर, जाज्वल्यमान चिर सप्त अश्व रथ ।
 किरणो के दुर्वाप्रभ नभ सी मुक्ति थी अमित
 शुभ्र हस घेरे थे उसकी पल खोल स्मित ।
 था अकूल आनन्द उदधि उर मे उद्वेलित,
 ज्योति चूण करता अगो से मुक्त अनावृत ।
 तरुण सत्य के अध विवृत जघना पर गिर घर
 लेटी थी वह दामिनी सी रचि गौर कलेवर,
 गगन भग से लहराये मूडु कच अगा पर,
 वक्षोजो के खुले घटो पर लसित सत्य कर ।
 समाधिस्थ था श्रेय, सत्य आरुढ निरतर,
 घरे अक मे मू का, सुर जल खात शीप पर,
 ताप गल म, सुधा शांति मस्तक पर भास्वर
 लिपटा तन से भाव विभूति, अभाव भोगधर ।
 देश काल सदसद् से पर, त्रिक् तप शूल घर
 देवो का पापक था वह, दैत्या का जित्वर,
 काम क्रोध मद मत्सर थे उसके पद अनुचर,
 वह स्वर्णम किरणो स मण्डित, पाप तमस हर ।
 इस प्रकार चिर स्वग चेतना हुई प्रतिष्ठित
 जीवन शतदल पर मन के देवो मे भूपित ।
 जड घरणी के ताप नाप दुःख दैय अपरिमित
 कार्को से पर खान, हुए लय तमस म अचित् ।

चन्द्रोदय

वह सोने का चीन् उगा ज्यानिमय मन मा
 सुरेग मेघ अवगुण्डन से आभा आनन मा ।

उज्ज्वल गलित हिरण्य बरसता उससे भर-भर,
भावी के स्वप्नो से धरती को विजडित कर ।

दीपित उससे अन्तरिक्ष पर मेघो का घर,
वह प्रकाश था कब से भीतर नयन अगोचर ।
इन्द्र स्रोत से ही रस खवित निमृत अम्यतर,
प्राणो की आकाशा के वैभव से सुदर ।

वह प्रकाश का बिम्ब मोहता मानव का मन,
स्वप्नो से रजित करता मू का तमिस्र धन ।
आत्मा का पूषण वह, मनसोजात चन्द्रमस
जिसने चिर आदोलित जग जीवन का अम्भस ।

देव लोक मेखला, इन्द्र पूषण का अतर,
सजन शक्तिर्या देव, इन्द्र है जिनका ईश्वर ।
दिग्घ मनम वह निखिल विश्व का करता चालन,
पोषित उससे अन्न प्राण मन का जग जीवन ।

वह सोने का चाँद उठा ज्योतिर अघिमन सा,
मानस के अवगुण्ठन के भीतर पूषण सा ।
दुग्ध धार सी दिग्घ चेतना बरसा भर भर ।
स्वप्न जडित करता वह मू को स्वर्जिवन भर ।

द्वा सुपर्णा

दो पक्षी हैं सहज सखा, समुक्त निरन्तर,
दोनों ही बैठे अनादि से उसी वृक्ष पर ।
एक ले रहा विप्लव फल का स्वाद प्रतिक्षण,
बिना अशन दूसरा देखता अतर्लचिन ।
दा सुहृत्तो से मत्य अमत्य सयोनिज होकर ।
भागेच्छा से ग्रसित भटक्ते नीचे ऊपर,
सदा साथ रह, लोक लोक में करते विचरण
जात मत्य सबको, अज्ञात अमत्य चिरतन ।
कहीं नहीं क्या पक्षी ? जो चखता जीवन फल,
विश्व वृक्ष पर नीड देखता भी है निश्चल ।
परम अहम् औ' द्रष्टा भोक्ता जिसमें सँग सँग,
पक्षो में बहिरतर के सब रजत स्वर्ण रँग ।
ऐसा पक्षी, जिसमें हो सम्पूर्ण सतुलन,
मानव बन सकता है, निमित्त कर तरु जीवन ।
मानवीय संस्कृति रच भू पर नाश्वत शोभन
बहिरतर जीवन विकास की जीवित दपण ।

भीतर बाहर एक सत्य के रे सुषण द्वय,
जीवन सफल उडान, पक्ष सतुलन जो, विजय ।

व्यक्ति और विश्व

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,
इनमें चिर आनन्द भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल !
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रँग-बादल,
मेरी आकाशा की विद्युत्
बहती इनमें प्रतिपल !

मेरी प्राणों की श्यामलता
तुण तब दल में पुलकित,
मेरे उर की प्रणय भावना
बलि कुसुमों में रजित !
मैं इस जग में नहीं अकेला
मुझको तनिक न सशय,
वही चाह है कण-कण में
जो मेरे उर में निश्चय !

मेरे भीतर परिभ्रमित प्रह,
उदित अस्त शशि दिनकर,
मैं हूँ सब से एक, एक रे
मुझसे निखिल चराचर !
कब से ही जग से वियुक्त
मेरा अंतर था पीडित,
आज खडा भाई बहिनो के
संग मैं चिर आनन्दित !

प्रभात का चाँद

नील पक में धँसा अश जिसका
उस श्वेत कमल सा शोभन
नभोनीलिमा में प्रभात का
चाँद उनीदा हरता लोचन !
इसमें वह न निशा की आभा,
दुग्ध फेन सा यह नव कोमल,
मानवीय लगता नयनों को
स्नह पवन सवरुण मुख मण्डल !

तिरते उजले बादल नभ में
बेला बलियों से कुम्हलाये,
उडता सँग सँग नाग दंत सा
चाँद सीप के पर फैलाये !

आभा इसकी हुई अतरित -
 यह शशि मानो मू का वासी,
 यह आलोक मनस है, मुख पर
 जीवन श्रम की भरी उदासी ।
 दिव्य भले लगता हो किरणो
 से मण्डित निशिपति का आनन,
 गौर मास का सा यह शशि मुख
 भाता मुझको ज्योति प्राण मन ।
 उदित हो रहा मू के नभ पर
 स्वण चेतना का नव दिनकर
 आज सुहाते मू जीवन के
 पावन श्रमकण मानव मुख पर ।
 ऐसे ही परिणत आनन गा
 यह विनम्र विधु हरता लोचन,
 मू के श्रम से सिक्त नम्र
 मानव के शारद मुख सा शोभन ।

हरीतिमा

(प्राण)

ओ हरित भरित घन मधकार ।

तण तरुओ मे हँस हँस श्यामल
 दूर्वा से मू को भर कोमल,
 ढँक लेते जीवन को प्रतिफल
 तुम प्राणा का अचल पसार ।

सुन स्पर्शों से घणू घणू पुलकित,
 मादकता से उर उर स्पर्श दत्त,
 गति जब से श्वास अनिल नतित,
 नित रग प्राण करते विहार ।

तुम प्राणोदधि चिर उद्वेलित
 जीवन पुलिनो को कर प्लावित,
 जड चेतन को करते विकसित
 भग जग मे भर नव शक्ति ज्वार ।

तुममे स्वप्न का सम्मोहन
 आकाशा की मदिरा मादन,
 आवेगो का मधु सघषण,
 दुधर प्रवाह गति, रव, प्रसार ।

जग जीवन को कर परिक्षोभित,
 दृच्छाम्रो के स्तर स्तर हृषित,
 रागो द्वेषो से चिर मषित,
 निस्तल अकूल तुम दुनिवार ।
 ओ रामाक्षित हरितापकार ।

छाया पट

मन जलता है,
 अधकार का क्षण जलता है,
 मन जलता है ।

मेरा मन तन बन जाता है,
 तन का मन फिर बटकर,
 छँटकर,
 वन वन ऊपर
 उठ पाता है ।

मेरा मन तन बन जाता है !

तन के मन के श्रवण नयन हैं,
 जीवन से सम्बन्ध गहन हैं,
 कुछ पहचान, कुछ गोपन हैं,
 जो सुख दुख के सवदन हैं ।
 जब यह उड़ जग में छा जाता,
 जीवन की रज लिपटा लाता,
 फिर मेरे चेतना गगन में
 इन्द्रधनुष धन बन मुसवाता ?
 नहीं जानता जब कबे फिर
 यह प्रकाश विरणों बरसाना ।
 बाहर भीतर ऊपर नीचे
 मेरा मन जाता घाता है,
 सब व्यक्ति बनता जाता है ।

तन के मन में कही - अंतरित
 आत्मा का मन है चिर ज्योतिरित,
 इन छाया दश्यों को जो
 निज आभा से कर देता जीवित ।

यह आदान प्रदान मुझे
 जाने कसे क्या सिखलाता है ।
 क्या है ज्ञेय ? कौन ज्ञाता है ?
 मन भीतर बाहर जाता है ।

मन जलता है
 मन में तन में रण चन्ता है,

चेतन अवचेतन नित नव
परिवर्तन मे ढलता है।
मन जलता है।

आवाहन

सजन करो नूतन मन।
खोल सके जो ग्रन्थि 'हृदय की,
उठा सके सशय गुण्डन,
झाँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौंदर्य गहन।
भेद सके जो दैन्य, दुरित, तम,
मृत्यु, अविद्या के भीतर,
जहाँ प्रेम आशा शोभा
अमरत्व प्रतिष्ठित हैं प्रतिक्षण।

युग युग से तप ध्यान साधना
करता मानव, हे ईश्वर,
मुझे स्वर्ग दो, मुझे मुक्ति दो,
बाधव पुत्र पौत्र स्त्री धन।
जाति प्रेम हित, धर्म क्षेम हित,
वध वद्धि के हेतु अमर
युग युग से रोया गया है
पार्थिव मानव देहज मन।

सजन करो नूतन मन।
प्रार्थी आज मनुज आत्मज मन
नय्य चेतना का भू पर,
जिसकी स्वर्णिम आभा मे नव
विकसित हो संस्कृत जीवन।
प्रार्थी आज निखिल मानवता,
उठे मृत्यु से वह ऊपर,
स्वर्ण शान्ति मे ऐक्य मुक्ति का,
भू पर स्वर्ग उठे शोभन।

निवेदन

रंग दो मेरे उर का प्रचल।
युग युग के आसू से गीला
मेरा स्नेही का अतस्तल।
कितनी आशावा भय, आशा
ग्लानि पराभव औ' अभिलाषा,
कितने स्वप्न—मूक है भाषा।
मेरे इन प्राणो मे कीमल।

जीवन का चिर भरा कलपना,
 सुख का तपना, दुख का तपना
 भग करो मत सपना भपना,
 केवल मन को दा द्रदम्य बल ।

सब खोकर भी मैंने पाया,
 तुमको जो उर मे उलझाया,
 ममता की अबगुण्ठन छाया
 रहने दा निज मुख पर उज्ज्वल ।

मैं न थकूंगा हो मनन्त पथ,
 जरा मृत्यु से तन मन लथपथ,
 ज्ञात न हो जीवन का इति मथ,
 चिर प्रतीति का दा पथ सम्बल ।

मू लता

घने कुहासे के भीतर लतिका दी एक दिखायी,
 भाधी थी फूलो मे पुलकित, भाधी वह कुम्हलायी ।
 एक डाल पर गाती थी पिक मधुर प्रणय के गायन,
 मकड़ी के जाले मे बंदी भपर डाल का जीवन ।

उधर हरे पत्ते यात्री को देत ममर छाया,
 उधर खडी ककान मात्र सूनी डालो की काया ।
 विहगों के थे शीत नीड, कुमि कुल का ककश कदन,
 मैं विस्मय से मूढ, सोचता था क्या इसका कारण ।

बोली गुजित हरित डाल, सारों भग सूखी टहनी,
 मैं हूँ भाग्य लता भदष्ट, मैं सगी बाल की बहनी ।
 सुख दुख की मैं धूपछाँह-सी भव कानन म छापी,
 भाधे मुख पर मधुर हँसो, भाधे पर करुण रनायी ।

मूल फूल की बीधी, चलता जिसमे रोना गाना,
 खोज खोज सब हार गये, मुझको न किसी ने जाना ।
 मैंने भी ढूँढा, पर मुझको मूल न दिया दिखायी,
 वह आकाश लता सी जीवन पादप पर थी छापी ।

जन मन के विश्वासी स बडती थी वह हो सिंचित,
 एक दूसरे-से लिपटे थे, जिसस थी वह जीवित ।
 सब मिल उसको छिन भिन कर सकते थे यह निश्चित,
 किन्तु उसी के बल पर रे मानव मानव से क्षोषित ।

नाच रही जो ज्योति ज्योति विण्डो म वैभव भास्वर,
 कहती वह, मह छाया मेरी नहीं, तुम्हारी मू चर ।
 छोडो युग युग का छाया मन, बरो ज्यानि मन भव जन
 प्राक्तन जीवन बना भाग्य, चेतना मुक्त हो नूतन ।

कौवे के प्रति

तरु की नग्न डाल पर बड़े लगते तुम चिर सुंदर,
कोविदार के शकुनि, पार्श्वमुख, साध्य कपिश नभ पट पर ।
कृष्ण कुहू मे जनमे तुम तरु कोटर मे, बन नभचर,
तारो की ज्यो छाँह गले पड गयी नीड से छन कर ।

पल्लो की काली उडान तुम भरते नित ऋजू कुक्षित,
सुभ्र ज्योति का तुम पर कभी प्रभाव न पडता किञ्चित ।
रग नही चढता जिस पर वह यती ब्रती है निश्चित,
समित पाणि मे प्रश्न पूछता तुमको मान विपश्चित ।

तुम भविष्य वक्ता जग विश्रुत, प्रणय दूत कवि कीर्तित,
मदवा चुके चोच सोने से फिर फिर प्रीति पुरस्कृत ।
क्या है जग के दुरित दैय का कारण ? खग, दो उत्तर,
कल्प कालिमा की होगी कालिमा तुम्हारी सहचर ।

मन्त्री वृद्ध तुम्हारे कौशिक दिवाभीत चमगादर,
जाग्रत रहते मृत निशा मे तरु सवी तापस वर ।
गरदन मटका हिला करट, कुछ विस्मित, कुछ चिन्तापर,
एक चक्षु को पलट, दूसरे लोचन पुट मे सत्वर ।

मैंने कहा, मुखर भाषी, क्या तुमको कहने म डर ?
यह महत्त्व का प्रश्न, लोक जीवन है इस पर निर्भर ।
काँव-काव कर कहा वाक ने ग्राम्य भणिति मे निश्चय,
वाम, काम है तापो का कारण, था उसका आशय ।

मैंने पूछा, माह वाम से पीडित जग निःशय,
किंतु कौन पा सकता, बलिभुज् । अमित कामना पर जय ?
पक्षपात कर उडा विहग, बाले प्रकाश से भर मन,
समाधान मेरी शका का उस तम मे था गोपन ।

पक्षपात है नाम कामना का, जो दुल की कारण,
उज्ज्वल सभी प्रकाश नही रे, काला नही सभी तम ।
इस प्रकाश के शिखी पिच्छ से रूप अनेक मनोहर,
जिनमे लिप्त मनुज मन रहता लाभ स्वाध हित तत्पर ।
अघकार के रूप विविध, घनश्याम इद्रधनु जलघर
उवर रखते मू को, माहक काली कोयल के स्वर ।

ज्योति हस श्री' तमस काक इन दाना से जो है पर
उसी सवगत पर जो केद्रित रहे मनुज का अन्तर,
हस रहे जग मे मयूर श्री' वायस रह परस्पर ।
सब के साथ अपाप विद्ध, स्थित प्रज रहे जग मे नर ।

श्वेत कृष्ण मिल, रग पूण नित घरेँ जगत जीवन पथ
पक्षपात से रहित मनुज हो विरत, विश्व मे भी रत ।
किया हृदय ने ज्योति श्याम परमत का मन म स्वागत,
दीप तल के तम के छाया खग, तुम दीप शिखावत् ।

सक्रमरा

खो गया , जीवन रस,
रहस स्पश,
सृजन वा मुक्त रभस
निखिल ह्य ।

रह गया इतिहास, विज्ञान
दशन, सहस्र शास्त्र,
सम्यता के ब्रह्मास्त्र ।
व्याप्त खो गयी एकता,
है अनेकता ।

रह गयी जाति पति,
देश प्रात,
युगो बी रीति नीति,
रुढि भ्रात,
स्वग नरक ईति भीति,
जन अशात ।

खो गयी मानवता,
खो गयी वसु धरा ।
नही सत्य सहृदयता
नही मही विश्वम्भरा ।

आधो है नव नूतन,
स्वण युग करो सृजन ।
एक ही मू के जन
नव्य चेतना के कण ।

देशो से धरा निखरे
जुडे मनुज उर बिखरे ।
दष्टि सौदय जडित
अधर हो हृदय स्मित ।

आत्मा आये सम्मुख,
महिमावित मानव मुख ।
आधो है नव नूतन ।
मानव ही मू के जन ।

नारी पथ

कितने रेखा स्मिति अधर
प्रथम मधु पल्लव के,
प्रणय रुधिर रंगे अधर
करते मधु ममर ।
चपल मौन मुखर नयन
पद्म नील स्नह सर के

मुग्ध नयन प्रीति किरण
करते क्षत वपण !

कितनी वेणियाँ लोल
लोटती पीठी पर,
खुली बँधी फूल गुधी
सुरभित तम निभर !
नवल मुकुल सृष्टि भग,
चकित मृगी ग्रीव भग,
पुष्प शिखर - से उरोज,
चार हस, छवि सरोज,
रूप की प्ररोह बाह
प्राण कामना प्रवाह,

सचमुच,—

एक भगना से सुभग
लगता भगो का जग,
शोभा सरसिज पग !
सौ - सौ उगते शशि मुख
देते प्राँखो को सुख,
मिटा मोह निशा दुख !

ममता अधिकार नहीं,
मोह तिरस्कार नहीं,
चुम्बन या परिरम्भण !
केवल प्रतीति प्राण
हृदयो का प्रीति दान,
युवती युवक समान !

भवयव कुवलपित सृष्टि,—
निर्निमेष मुग्ध दष्टि !—
जिस पर मानव भविष्य
करता नव किरण वष्टि !

नील धार

(विश्व यमुना)

श्री नीलधार, प्रति दुनिवार !
रवि शशि से स्वर्ण रजत चुम्बित,
जीवन के स्वप्नो से स्पन्दित,
तुम गलित नीलिमा सी बहती
भाकाशा का हर भ्रमकार !
प्राणो के सुख से आदोलित,
चिर रभस कामना से मुखरित
युग युग की विश्व चेतना तुम,
उच्छ्वसित उरोर्जो का उभार !

फेनो के क्षण भर स्वप्न प्रथित,
 दिशि के तट जीवन से प्लावित,
 तुम प्रतल प्रकल तरंगित नित
 ज्यो स्वर्ग मर्त्य के प्रार-पार ।
 ऋजु कुचित जग जीवन का मग,
 धर ऊर्ध्व विपम सम नतित पग,
 नभ की हरकान्ति, मरुत का जव,
 मू पर करती प्रणयाभिसार ।
 जीवन के रागो त रजित,
 चिर गूढ़ स्पृहाधो से मथित,
 प्रकथित प्रतर आवेशो का
 उद्वेलित तुम मे मम भार ।
 प्रसफल प्राशाधो से पा बल,
 स्तम्भित प्रभिलापा से चचल,
 तुम हृदय प्रथियो की प्रवाह
 सवेदन शील, द्रवित प्रपार ।
 सद प्रसद तुम्हारे हैं दो तट,
 तुम ज्योति तमस की जीवन पट,
 दुःख-सुख मे रो हँस, सुख दुःख को
 मज्जित करते गति धो' प्रसार ।
 गगा की दुग्ध धार पावन
 तुमसे मिल बनी पूण शोभन
 वह प्रमु के श्रीपद से नि सूत,
 तुम विश्व श्याम उर से उदार ।
 धो नीलधार, चिर निर्विकार ।

युग प्रभात

स्वण किरण, स्वण किरण,
 विचरती धरती पर
 स्वप्नो की तूलि धर
 चेतना रजित कर
 जगती के रजकण ।
 स्वण किरण, स्वण किरण,
 नभ से परियो सी उतर
 स्वप्न नयन कर प्रतर,
 जीवन सौदय के
 बरसाती स्मित निभर ।
 स्वण किरण, स्वण किरण,
 हँसमुख, प्रादित्य वरण,
 धरती धरती पर धरण
 हरती चिर छायावरण

हाउ हाउ, वह स्वर्ण पुरुष,
 वह ज्योति पुरुष मैं हूँ प्रजर अमर !
 भरते सप्त धार सोने के
 सतत मातरिश्वा से निभर !

श्री अरविन्द दर्शन

ज्योति श्री अरविन्द, चेतना के दिव्योत्पल,
 पूण सच्चिदानन्द रूप शोभित स्वर्णोज्वल !
 प्रति मानस मे विकसित तुम आलो हसित दल,
 प्रोतप्रोत जिसमे असीम आनन्द रजत जल !
 स्तर पर स्तर कर पार चेतना के, योगेश्वर,
 स्वर्णारुण-से नव्योदित तुम चिदाकाश पर !
 मानव स ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
 प्राये लौट घरा पर, ले नव जीवन का वर !
 तुम भविष्य की दिव्य ज्योति, अतर्मुख जीवित,
 मानव अंतर तुमस उच्च अतल, अति विस्तत,
 रुद्ध द्वार कर मुक्त हृदय के, भव तमसावत,
 अतर्जीवन सत्य कर दिया तुमने ज्योतित !
 अधिमानस से भी ऊपर विज्ञान भूमि पर,
 हिमगिरि-स अध्यात्म तत्व के स्थित तुम निभर !
 ज्योति मूत चेतना ज्वलित हिम राशि सी निखर
 सत्य स्वर्ग के पार उठाये सत्य के शिखर !
 एक स्तम्भ उपनिषत ब्रह्म विद्या के निरक्षय,
 ज्योति स्तम्भ दूसरा देव का शब्द असशय
 दिव्य चेतना सेतु ऊध्व जिन पर ज्योतिमय
 आर पार भव जीवनाब्धि के अति मानव, जय !
 किया वेद वेदागा का जब तुमने मथन,
 हुए प्रकाशित तत्व, जगा मन्त्रो मे जीवन,
 परम व्योम से तुम्हे ऊध्वचित, ध्यान भग्न मन,
 विद्युत लेखा तुल्य ऋचाप्रो का हुआ स्फुरण !
 स्वर्ण नील के मध्य रजत की अनिल मे सुधर,
 छोड दिव्य स्वप्नी की रत्नचत्राया भास्वर
 स्वर्ग धरा पर लाने प्राये स्वयं तुम उतर
 जन भगल हित पार्थिवता का भार वहन कर !
 स्वर्ग और वसुधा का करने स्वर्णिम परिणय
 इंद्रचाप का सेतु रच रहे तुम ज्योतिमय,
 नत्यशील श्री हरित यौवना भू पर छविमय
 चिर अनन्त की अमर बतियाँ बोककर प्रक्षय !
 अग्नि विहग मे स्वर्ण शुभ्र तुम खोल दिव्य पर,
 विचर रजत नीहार शान्ति मे दिशि पल बे पर,
 प्रसव व्यधित वसुधा हित लाये प्रखिल शोकहर
 रश्मि कलश मे दिव्य प्रीति की स्वर्ण सुरा भर !

नील दाबुनि, तुम गाते देवो स्वर्द्धतो हित,
 चिदानन्द के अग्नि योज मू पर भरत स्मित ।
 दश पाल स परे नोन वह व्योम दुख रहित
 दाश्वत मुस का हय जहाँ म लात तुम नित ।

कैसा वहाँ प्रकाश, पाति, भानन्द चिरतन ?
 जहाँ सच्चिदानन्द स्वय करते सहज सृजन !
 उठा मत्य निज भानन से हिरण्य भ्रवगुण्डन
 जहाँ सूक्ष्म सुदरता का सजता सम्मोहन !

छायाभा से रचित वहाँ क्या सप्तदल भुवन !
 काल दिशा को लिये भ्रव मे करता नतन ?
 जहाँ स्वय प्रभु रहत कैसा वह परम गगन !
 जहाँ अनिवचनीय अमित भानन्द का स्रवण !

गूढ तमस मे, जड मे हो चित शक्ति निरोहित,
 भ्रान प्राण मन मे फिर कमे हुई प्रस्कटित,
 कवि श्रुति, तुमने सूक्ष्म दृष्टि से कर ज्यो चित्रित
 रहस्य शक्ति से निलिल स्रष्टि फिर कर दी विवसित ।

खोल अदोष रहस्य सृजन का तुमने गोपन
 दिया विश्व को नव जीवन विकास का दशन !
 ज्योति घिह्ल जो छोड गये मू पर प्रबुद्ध जन
 सूचित उनसे प्रति मानव का पुण्य प्रागमन !

ऊर्ध्व चेतना का हो समदिक् भूत सचरण
 घरा स्वर्ग के ज्योति छत्र-सा भेद दिव्य मन,
 बहिरतर जीवन का कर तुम, देव, उन्नयन,
 दिव्य जीवन का धरती पर कर रहे भ्रवतरण !

युग युग के पूजन आराधन जप तप साधन
 आज वृत्ताथ अखिल आदश, शास्त्र, नय, दशन,
 मनुज जाति का सफल सकल जीवन सघषण
 पूण आज प्रभु तुममें दिव्य देह धर नूतन !

जल जीवन मे मच्छ, कच्छ तुम कदम में बन,
 मू जडत्व मे शूकर, वनचर मे नृसिंह तन,
 आदि मनुज वामन, शूरो मे राम परगुण,
 मर्यादामय राम, विश्वमय बने कृष्ण घन !

आज लोक सघषों से जब मानव जजर,
 प्रति मानव बन तुम युग सम्भव हुए घरा पर !
 अन्न प्राण मन के त्रिदलो का कर रूपांतर,
 वसुधा पर नव स्वर्ग सँजोने आये सुदर !

छू पाते हैं पख कल्पना के, न पद कमल,
 विवसित जी अंतर जल मे जाज्वल्य ज्योति दल,
 घेरे तुम्हें जननि का ज्योतिष्मत चिमण्डल
 मुग्ध चमत्कृत चक्षु धाक मन पा जाते फल !

दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दशन,
 प्रति मानस का स्पश प्राण मन करता चेतन !

मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पदमासन,
तन मन प्राण हृदय ये तुमको, देव समर्पण ।

स्वर्णोदय

(जीवन सौंदर्य)

जयति, प्रथम जीवन स्वर्णोदय
रक्त स्फीत, लो दिशा का हृदय ।
काल तमस व्यवधान चीर कर
किसने मारा स्वर्ण पल धार ?
जय, भ्रमत्य जीवन यात्री, जय ।
देखो, कोमलात कर ऋदन
किसने जग मे किया भागमन ।
(यह क्या भू का रुदन सनातन ?)
पलको मे जग उठे निमिष क्षण
स्तब्ध हृदय मे दिशि का स्पन्दन ।
गुहा बद्ध चित स्रोत हो स्वलित
जीवन पथ म हुम्ना प्रवाहित ।
मुक्त अरूप रूप घर सीमित
स्वासो से कर गगन तरंगित ।

(शशव)

मगल गायन ।
मगल वादन ।
क्यो न मनायें जमोत्सव जन ।
धय भाज का पुण्य दिवस क्षण,
फिर भ्रमत्य ने धरा मत्य तन ।
स्वागत, स्वागत
प्रयत नवागत

हो प्रशस्त तेरा जीवन पथ
जग के शूल फूल हो अभिमत
प्रिय शिशु तू हो पूण मनोरथ ।
भो मा वह रोता है उसको स्तय विलासो,
वह अशक्त असहाय, उसे निज अक लगासो ।
कस पार करेगा दुगम जगती का मग
वह निबल निर्बोध पथिक, वह पल हीन खग ।
लोरी गासो, लोरी गासो,
फूल दोल मे उसे भुलासो,
निदिया की प्रिय परियो घासो
मुना का मुख चूम मुलासो ।
स्वप्नो के छाया पलो को
न हे के ऊपर सिमटासो ।

चन्द्रलोक की परियो, धामो,
 स्मित से मुधा अघर रंग जाधो,
 मलय सुरभि की चचल परियो,
 साँसो स आचल भर लाधो ।
 जुगनू भमवा, वन की परियो ।
 भिलमिल कर पलकें भपवाधो,
 रिमभिम कर, मेघो की परियो,
 लालन का गा हृदय रिभाधो ।
 अहरह उर कम्पन मे दोलित,
 मम स्पृहा की मूर्ति देख स्मित,
 मुग्ध नव जननि, बलि बलि जाधो,
 लाड लुटाधो, प्यार लुटाधो,
 लोरी गाधो ।

स्निग्ध पूस की धूप, स्वर्ग आशीर्वाद - सी,
 बरस रही भू पर शैशव के मुक्त ह्लाद - सी ।
 स्वच्छ प्रकृति मुग्ध, सौम्य दिशा स्मिति, शांत विहायस
 शीतलोष्ण पखो के सुख मे सिमटा सालस ।

नलिनी उर मे लेटा हिमजल
 वान चेतना सा तारोज्वल,
 हँसमुख, निमल, चचल ।

लो वह नटखट पाँव चलाता,
 कौन उसे बढना सिखलाता ?

अदन या जिसका सम्भाषण,
 वह अस्फुट स्वर मे तुतलाता ।

दुधमुही सरल मधुर मुसकान
 न जाने कहती किन अनजान
 रहस्यो के नीरव आख्यान ।

कौन अप्सरियाँ आ चुपचाप
 कर रही उससे मौनालाप

फूटती स्वप्न सरित स्मिति आप ।
 नाम रूप के जग को, केवल

वह धितवन स्पर्शों से प्रतिपल
 अकित करता उर मे कोमल ।

ताराओ से भरा गगन
 स्वप्नो का सा वन

उपजाता मन मे सवेदन ।

लो, चन्दा ने

चाँदी की नैया मे मोहन
 बिठा लिया अब लालन का मन

पलने मे हिलता डुलता तन ।

दीप शिवा के लिए वह मचल
 नचा रहा निज कोमल करतल ।

चूँ करती चिड़िया सुंदर
 फूल पौखड़ी उड़ती फर फर,
 उह बनान निज सुख सहचर
 पास बुलाता वह इगित कर।
 सोच रहा ज्यो एकटक नयन,
 मो माखी क्या कहती भन भन
 काना म भर गुजन ?

ममर, ममर,
 तरुओ के चल पत्र रहे भर !
 विरल टहनियो की जाती से
 लगता मुक्त प्रशस्त दिगन्तर।
 यह लो, नव शिशु - सा ही सुंदर
 निखिल विश्व बन गया दिगम्बर,
 नवल पल्लवो स वह मासल
 वेष्टित होगा सत्वर।
 कहीं जरा है ? कहीं रे मरण ?
 सृजन क्षील जग का परिवतन।
 कौन कहीं के क्षणिक पा थचर,
 कहीं भरे जा रहे निरंतर
 ये पीने पत्ते उड उड कर।
 धरती इनम क्यो न गयी भर।

कव स भर भर
 चुपके हस कर
 ये किस पर हो रहे निछावर ?
 क्या ये उडते पत्ते केवल ? कौन यहाँ दे उत्तर।

यह भनत यात्रा का रे पथ,
 शिशु भनत का यात्री शाश्वत,
 वह भनादि से नित्य नवागत,
 अपने ही घर का भ्रम्यागत।
 सूर्य चंद्र उसके ही लोचन,
 श्वसन उसी के उर का स्पदन,
 उसका आत्म प्रसार निशा क्षण,
 महाश्चय रे, पुरुष पुरातन,—
 आदि सृष्टि का कारण—

शिशु,—भनत का पाथ चिरतन।
 भ्रम विकास के पथ से निश्चित
 विश्व नीड कर अपना निमित्त
 जननि जनक मे स्वय विभाजित
 वह भ्रवतरित हुआ या विकसित ?
 कोटि योनि, शत काटि जन्म तर
 विविध भ्रूण स्थितियो मे बढकर,

दिव्य भ्रतिधि वह मनुज देह धर
 प्राया फिर से, मर्य बन धरर ।
 दया, देवी धाँखें भर,
 कैसा रहस्यमय ईश्वर ।
 देखो हे धाँखें भर
 कैसा सुंदर ईश्वर ।

(विशोर)

रूप रगो म रही पुवार
 पल्लवित विश्व प्रवृति की डाल,
 पहन नव जीवन ज्वाल ।

विशोरी नव विशोर सुकुमार
 खेलत यह प्रिय क्रीडा बाल ।

न भ्रव वह प्रवृति मुक्न शैशव,
 जगा उर मे स्वभाव वैभव,
 हृदय क्या कहता कुछ गोपन
 परस्पर बढ़ता धाकपण ।

अभी मन बना न नारी नर,
 सखा, भइया बहना दो जन ।

खेल कूद भ्रव इनका जीवन,
 गोद बन गयी जग का भ्रानन,
 कौतूहल से भरा मुकुल मन,
 खोज रहे कुछ उत्सुक लोचन ।

जीवन स्रोत बहा कल कल छल,
 जग मे भर हँसमुख कोलाहल,
 नवल विश्व रे नवल धरातल,
 फुल्ल नवल नभ का नीलोत्पल,
 निखिल पुरातन नवल चिर नवल,
 जीवन स्रोत बहा कल कल छल ।

धा, समीर किस सुख से चंचल,
 उडता क्या यह मा का धाँचल ।
 लोट रही हैं लहरें प्रतिपल
 उछल रहा तमय उर कोमल ।
 छू छू कर कशोर पग चपल
 हस उठता पुलकित दूर्वादल ।

कहाँ गया भ्रव शैशव का घुटनो बल चलना,
 वह चंदा के लिए मचलना ?
 कहाँ छिपा लकड़ी का तू तू,
 कहाँ भगा लाठी का घोडा ?

वह वागज की नाव
 जिसे शिशु ने जीवन सागर मे छोडा ।

उसे याद, जब प्रथम चरण धर
खड़ा रह सता था वह क्षण भर,
विजय गव, नव तडित हृप जो
सहसा मदु उर म था दौडा ?
कब भागा लकडी का तू तू,
कब छूटा लाठी का घोडा !

बाल कल्पना का वह जग न रहा अतिरजित,
गुड्डे बचपन के साथी चिर परिचित
आज धूल म पडे काठ के सब हाथी घोडे मृत !

उडते पत्ते बनते थ तब उडती चिडियाँ,
ओने कोने म छिपकर रहती थी परियाँ,
आस पास के भुरमुट ठूठ सभी थे हीवा,
नित्य ढाकिया वन आता आंगन का कौवा,
जादूगर का खेल जगत था रहस भावना कल्पित,
पलक मारते ही उगता था पेड आम का निश्चित !

चहक रहे अब मुखर बाल खग,
रोक रुकते नहीं चपल पग !
सहज हृप से उमंग रहे अंग,
लडभिड, रो हँस, रहते ये सँग !

इनके हास लास रगो स,
नव अगा से, नव मगा स,
रग प्राण बन जाता क्षण भर क्षण भगुर जग जीवन का मग !

सम्भव अखिल असम्भव मिलकर
कौतुक से भर देते अतर
हास रुदन - सी ही घटनाएँ
आती श्री' जाती टिक क्षण भर !
सुन पडता, लो, दूर कण्ठ स्वर—

डम डम डमक, कल-दर आया !
बदर घुडकी छोडो भइया डमरु जगाया !
सध्या बूढा ने सूरज का गेंद छिपाया,
दादी ने आंगन भर म सेंदुर विवराया !
एँठ दिखाते थ सबको अकडू वधवा जी
गौदड ने अपनी चालो स खूब छकाया !
खेल कूद मे रह छलाँग भरत दिन भर,
कछुए ने खरहा बच्चू को सबक सिखाया !
हँसते थे वन के राजा छोटी चुहिया पर
फंदा उसने काट जाल से उह छुडाया !
बाल न बाँका कर पाय राजा बाबा का
अण्टी मे वह सींग स्यार का था रख लाया !

कभी कबड्डी नहीं खेलते थे सँग रामू,
इम्तहान में तभी फिसट्टी नम्बर पाया।
डम डम डमक, कल-दर आया।

सीख रहे पग पग पर ये जाने अनजाने,
उत्सुक यह विस्तृत जग इनको पाठ सिखाने,
नित्य बढ़ रहे मन में ये निर्बोध सयाने।

हृदय प्रिया थी जिसकी मृदु स्मिति
श्रद्धा ही वाणी थी अथ - इति,
जीवन के उस मास पिण्ड में
कैसे फूटी जग की भाषा ?
साँसों के सूने पिंजर में
कव पंठी आशा, अभिलाषा।

स्पश जगत में था जो जीवित,
स्वाद मात्र से बस कुछ परिचित,
स्वप्न लोक वामी में कैसे
जगी भावना स्मृति जिज्ञासा ?
कौन मिटाये ज्ञान पिपासा।

बोध निहित था क्या उर भीतर,
अथवा व्याप्त विष्व में बाहर ?
छिपा बिंदु में था या सागर ?

गूढ नियति पर क्या विकास नव शिशु का निमर ?
बढ़त या वे बहिर तर के छायाभा पथ से लोकोत्तर
कही नहीं गया सम्यक उत्तर।

देख चुके थे शरद पक्ष दस,
शिशिर वसंत ग्रीष्म हिम पावस,
उदित अस्त अथ होता दिनकर,
घटता बढ़ता रवि प्रभ हिमकर,
स्वप्नों का तारापथ सुंदर
ज्वलित ज्योति पिण्डों से भास्वर।
राहु केतु से चंद्र रवि ग्रसित
होते मू शशि गति स निश्चित।
दिवस पाक्ष बहु मास बदलते
ऋतु सवत्सर।

कथा इद्र की इह सब विदित
इद्र धनुष क्यों सप्न रग स्मित
तडिल्लता क्यों खिलती कुछ क्षण
धन धमण्ड क्या करता घोषण।
वाष्प पक्ष के बादल जलधर
बरस बरस धरती पर उबर
हँसमुख हरियाली देते भर।

परिया हुई अदृश्य, बंद अब दंत कहानी,
 अब वे राजकुमार न अब वे राजा रानी ।
 अब भूगोल गणित इतिहास ग्रथित पष्ठा पर
 चित्र प्रकृति से विस्मित चितवन गडी निरतर ।
 चपल विश्व के रूप रंग बन काले अक्षर
 रंग पाति मे रहे चौटियो से हिल डुल कर ।
 जाने बाहर दष्टि दौड जाती कब चचल
 राजधानियाँ हो जाती भूतल से ओभल ।
 नीले नभ पर गिरि प्रातर पर, लग नीडो पर
 छाया पथ स स्वप्न क्षितिज म उडता अतर ।
 चिडियो के पर, हिम जल के मोती बटोर कर
 भरनो के फेनो संग हँसता कलरव से भर ।
 क्या हैं ये इतिहास, युद्ध, सम्राट, प्रथित जन ।
 विविध शास्त्र, विज्ञान । इ ही का रे गत जीवन ।
 इनके आविष्कार सभी, इनके अवेपण,
 युग-युग की शशव अनुभूति वहन करता मन ।
 फिर स ये करते अतीत का सिहालोकन
 कहाँ आज है विश्व । कहाँ अब मानव जीवन ?
 किन तन्त्रो से मू पर जीव नियति प्रतिपालित ?
 किन मूल्यो स जीवन की इच्छा परिचालित ।
 किन आदर्शो स मानव भावी हो शासित ?
 किस प्रकार हो विश्व सम्यता सस्वृति विकसित ?

रहस स्पश से अब अनजाने
 होता रह-रह हृदय उच्छवसित ।
 किसी रगिणी का चल अचल
 उडता मलयानिल मे पुलकित ।
 रग भावना स अतर की
 हो जाता सहसा जग रजित,
 स्वप्नो की पखडियाँ हस हँस
 नयनो को कर देती विस्मित ।

(यौवन)

स्वण	मजरित	आम्र	कानन,
कोकिला	करती	कल	कूजन ।
सूध	चल	चूम	भानन,
भूम	मधुलिह	भरते	गुजन ।
आज	भव	वारिधि	उडलिन
नभो	नीलिमा	बनी	विम्मत,
डोलता	मारुत		रोमाचित
साँस	पी	फूलो	की
			सुरभित ।

रजत किंकणियो सी कल कल
 लहरिया धिरक रही चचल,
 कँप रही वल्लरिया कोमल
 खोलती कलिया वक्ष नवल ।

रग प्राणो का म्वणिम लोक
 वहाँ था यह अद्भुत चुपचाप,
 हँस उठा इन्द्रधनुष मे आज
 हृदय का छाया वाप्य कलाप ।
 बज उठा जीवन मे मधु छन्द
 विसी की सुन नीरव पद चाप,
 भाव गरिमा से भरा अनन्त
 मुखर स्वर स अब मोनालाप ।

युवक नव युवति विचरते आज,
 मम मे स्पृहा, दुगो मे लाज,
 न अब कशीर भीति का भाव,
 आज उनसे चरिताय समाज ।

बने वे नर - नारी मोहन,
 न अब जीवन रहस्य गोपन,
 न परिया देती शिशु को जन्म,
 सष्टि मे निहित जनन पावन ।

नीलिमा क्यो नीरव निस्तल,
 खवती बहती क्यो कल कल,
 जात अब, खिलत क्यो कुडमल,
 गन्धवह फिरता क्यो चचल ।

न रोके रुकते क्षपल नयन,
 मीन तिरते, उडते खजन,
 अघर से मिलते मधुर अघर,
 मुग्ध कलि अलि करते चुम्बन ।

वाह यदि भरती आलिंगन
 लताओ मे लिपटे तरुण,
 प्रबल रे फूलो का बंधन,
 अमिट प्राणो का आकषण ।

आज भ्रू लतिकाओ मे मग,
 प्रतनु तन - शोभा प्रीति तरंग,
 गढे किस शिल्पी ने ये अग,
 निष्ठावर निखिल प्रकृति के रग ।

स्पर्श मे बहती प्राण तडित
 स्वत तन ही उठता पुलकित,
 हृदय म्वप्नो से जग रजित
 उषा अब इन्द्र धनुष वेष्टित ।

मिलत सहसा मीन नखन, अपलक - स रह जात क्षण,
 नव प्रवाल अपरो म बहती मदिरा ज्ञाना मादन ।
 प्राणो बी चिर तूपा फूट बनती पुलको के बधन,
 कौन भूल सबता है रे नव यौवन का सम्मोहन ।
 मम कामना युगल स्वर्ण बलशो मे मूत गयी भर,
 अपल नयनिमा न पाये मूहु फूलो के मादक धार ।
 यह सज्जा सज्जा सुयमा मधुरिमा वही धी गोपन,
 नव यौवन श्री' प्रथम प्रणय श्री' मुग्धा तक्षी का तन ।
 कौन बाँध सबता अजस्र उद्दाम वेग निम्कर का
 कौन रोक सबता अबाध उद्वेसन रे सागर का ।
 मदीमत्त यौवन का, मेघो का अदम्य आलाडन
 खचित नही कामिनी दामिनी बरती किसके लोचन ।

सरित पुलिन अब लगत गाभन,
 बह जाता धारा के संग मन ।
 मधुर, मीन सन्ध्या का आँगन,
 प्रिय, स्वप्नो मे सजग निशि गगन ।
 वृजन गुजन गंध - समीरण
 सब म मम मधुर सवेदन,
 तरुण भावनाभा से रजित
 मुकुनित नव अगा का उपवन ।

स्वर्ण नील मृङ्गो स भ्रष्ट, कीकिल स्वर से कीर्तित ।
 अपलक रत्न खचित, मधु वैभव मन को करता मोहित ।
 ताराशो से रात लक्षित, ज्योस्ता अचल मे वेष्टित
 उदय हृदय म होता फिर फिर लेखा शशि मुख परिचित ।

धारद निगा आती ससज्ज मुग्धा सी शक्ति,
 भुक्त कुतूहा वर्षा तनु चपला सी कम्पित,
 सुगन्धित उष्मा मधुर भस्मिका स्रक से दालित,
 लिपट मधुर हिम जाती तन स आतप सी स्मित ।

खुल पडता उर का वातायन
 बहती प्राण मलय चिर मादन,
 कही दूर स घाना भीतर
 प्रणयाकुल पंचम पिक गायन ।

आशो हे चिर स्वप्न सखी, आकुल अन्तर में आशो
 फूलो की नव कोमलता मे जीवन का निरटाशो ।
 इन प्रिय स्नेह सरो म अपलक गरद नीनिना जागन,
 चपल हस पलो स चुम्बित मरनित्र श्री बग्गाशो ।
 इस प्रवाल के प्याल की मधुमन्थि नखि, उर मादन,
 तुहिन फेन स्मित प्रीति मुग्धा घट स्वर्णिम मृन्ने पिलाभा ।
 स्नेह सता - मे पुलक पाग में मृन्मूर्तियों के कोमल
 उर मे सुमधुर उर सी तन में स्नेह मी मधुन ममाभा ।

सुरभित साँसों के पलने में मर्म स्पृहा कर दोलित
 फूलों के मधु शिखरों पर प्राणों के स्वप्न सुलाग्रो !
 इन मासल चम्पक भरनों से लिपटी विद्युत लपटें,
 प्रणय उदधि में अंतर की ज्वाला को अतल डुबाग्रो !

लेटा नव धावण्य चाँदनी सा बेला के वन में,
 खिलती कलियाग्रो की शोभा कोमल सज सजाग्रो !
 स्वप्नों की भी सुरा आज यौवन जागे विस्मृति में
 चंचल विद्युत को सलज्ज ज्योत्स्ना के अक् लगाग्रो ?
 आग्रो है प्रिय स्वप्न सगिनी, आगुल उर में आग्रो !

पति पत्नी अथ वने प्रणयिजन,
 नितिल प्रकृति करती अभिनन्दन !
 अह, कैसा निष्ठुर निर्भम जग
 सम्मुख क्यों जीवन सघपण !
 हृष्ट पुष्ट नव युगों का तन,
 रुधिर वेग में भ्रुकृत जीवन !
 आत्म भाव से विस्तृत लोचन,
 शीघ्र वीथ से विकसित नव मन !

नहीं मानता उर दुविधाएँ बाधा बंधन,
 वह निश्क, निर्भीक, सह्य उसको न नियंत्रण !
 चिर अदम्य उत्साह हृदय में स्पन्दित प्रतिक्षण,
 यह यौवन की आशा अभिलाषा का प्लावन !
 अह, क्या करती रही पलित पीढियाँ आज तक,
 रक्त पक जन धरणी का इतिहास भयानक !
 रोग शोक, मिथ्या विश्वास अविद्या व्यापक,
 नगे भूखे लूलों का जग हृदय विदारक !
 कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के सस्थापक,
 यह जन - नरक कलक मनुजता का, भू पातक !
 बदलेंगे हम चिर विपण्य वसुधा का धानन
 विद्युत गति से लावेंगे जग में परिवर्तन !
 क्यों न मजरित युवकों का हो विश्व सगठन,
 नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन !
 क्या करते ये धनकुबेर, पण्डित, वैज्ञानिक,
 दिशाभ्रान्त क्यों हो जाते राष्ट्रों के नाविक !
 ज्ञात नहीं क्या लोक नियति है आज भू पथिक
 वग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक !
 दिवस ज्योति सा सागर सत्य यह गोचर निश्चित,
 मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मों से विस्तृत !
 सस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
 कला कल्पना, जो कुटुम्ब तन नग्न, गह रहित !

आग्रो, मुक्त कण्ठ से सब जन
 भू मगल का गायें गायन,

वन्दे मातरम !
जन धरणी जन भरणी
रत्न प्रसवनी मातरम !

नृत्य हरित, पिक कूजित यौवन,
अनिल तरंगित उदधि जल वसन,
छत्र सूय शशि दीप्त नत गगन,
प्रणयाकाक्षी स्वयं चिरतन,
वन्दे मातरम !

बजे क्रांति तूरी जन मादन,
कुडुम कुडुम हो जय दुःदुभि स्वन,
जीवन हित मानव वरे मरण,
मृत्यु अक् म भी गावें जन,
वन्दे मातरम !

भू मन के टूटें जड बधन,
रूढि रीति से मुक्त बनें मन,
दैन्य दुरित के हटें तमस घन,
स्वण प्रभात जडित हो प्रागण !
वन्दे मातरम !

दिशा लोक धर्म से हो हृषित,
काल विश्व रचना में योजित,
भव सस्कृति में देश हो ग्रथित
जन सम्पन्न, जगत मनुजोचित,
वन्दे मातरम !

स्वण कणो के गौर न अब फूलो की ज्वाला के वन,
कितने चुबें, भरे धरती पर, झुका का भव कानन !
लदी फलों से जीवन डालें, रस में सब रंग गोपन
विश्व प्रवृत्ति का रे अपार अक्षय बभ्रव दिड मोहन !

मू की रज को कर कृताथ बीता निदाथ अब भीषण,
तिग्म करो से खीच सि धु पलनो से वाष्पो के घन !
तप्त श्वास सा ग्रीष्म पवन भी शांत हुआ झुलसा तन,
विकसित वर्धित परिणत कर पुष्पित वसत का यौवन !

वर्षा आयी धूम्र नील नभ में छाया घन घषण,
तीव्र लालसा लडित जगी मोई, कर गजन - तजन !
मधु मरद से रजित म का गम हुआ फिर उवर
नव प्रवाल प्रज्वलित तरु क्षितिज बना गाढ श्यामलतर !

नृत्य तरंगित हुए स्रोत नव गये प्ररोह नवल भर !
सजन शक्ति ने अणु अणु में फिर लगा दिये जीवन पर,
प्रणय गीत, मृदु जनन स्वरो से मुखरित हुआ दिगतर,
जीवन को रिमझिम अजस्र रे ससति की सावन भर !

पथक न अधिक् रहा नारी जग
घरे पुरुष के संग उसने पग,

रग तरंगित जिमकी श्री से
 कुसुमित सुपमित जग का मरु मग।
 गुडिया के संग प्रिय निशोर दण
 बीते, उर मे भर मृदु कम्पन,
 तीक्ष्ण कुसुम धनु तन, यौवन ने
 बिया रूप सम्मोहन वषण ।

घटा श्रोणि ने बड़, षटि ने छंट
 सौष्ठव रेखाएँ की रूपित,
 मुग्ध नयनिमा, सलज लालिमा,
 पद जडिमा ने तरुणी चित्रित ।
 शोभा कंपती सहरी सी उठ
 हुई देह तनिमा मे स्तम्भित,
 देल मुबर - से तन में निज मुख
 रही मधुरिमा छवि से विस्मित ।
 कोमलता बर कल्पलता सी
 भ्रमगि म हुई प्रस्फुरित,
 सुंदरता ही प्रीति तूलि से
 बनी मोहिनी प्रतिमा जीवित ।

हुए रूपसी के नव भ्रमवव
 यौवन के आतप मे विकसित,
 मधुर स्त्रीत्व मे धातु कल्पना
 सजन कला के वर से मूर्तित ।
 जगा सलज चेष्टाप्रो मे भ्रव
 नव लीला लावण्य भ्रकल्पित,
 पलक मकुटि भ्रगुलि चालन म
 छवि की दीप निखाए कम्पित ।

तिमिर ज्वाल सा केश जाल घन
 पृष्ठ देश पर हुआ प्रज्वलित,
 आभा जीवी नयनो को कर
 कोमल शोभा - तम से मोहित ।
 स्वप्नो से गुम्पित यमुना जल
 गाढ नील तम हुआ तरंगित,
 साँस ले रहे फूलो के रंग
 सीरभ की कबरी मे थोलित ।

काचन सी तप ज्वलित कामना
 ढली सघन जघनो मे दीपित,
 बनी कठोर कुसुम कोमलता
 श्रोणि भार मे हो चिर पुजित ।
 बाहु लताएँ फूल पाश बन
 पुलको मे हो उठी पल्लवित,

कोमल करतल, चञ्चल पदतल
जीवन के जावक से रजित ।

रूप शिखा की श्री सुपमा से
हुए गेह आगिन आलोकित,
वातायन मे उदित कला शशि,
गृह गृह के गवाक्ष चिर शोभित ।
कलि कुसुमो ने भूतल को रंग
किया शोभना के हित सज्जित,
उर की साँसो मे बहने को
बना समीर गघवह सुरभित ।

ज्योत्स्ना सकुची, उपा लजायी,
रही तारिकाएँ ज्यो विस्मित,
स्रोत बहे सरसी लहरायी,
निखिल प्रकृति श्री हुई प्रभावित ।
हृदयासन पर बिठा प्रेम ने
किया अमर स्वप्नो से पूजन,
समा स्वर्ग ने स्वर्ण घटो मे
स्वीकृत किया मत्स्य सुख वचन ।

दो टुकडो मे सिमट नीलिमा
रही मौन नयनो मे अपलक,
लजा अघर नव प्रणय वचन से
गये लालिमा से दुहरे रंग ।
खिलती कलियो ने मादव भर
कोकिल ने दे गीत स्रवित स्वर,
मोहक उस किया ज्योत्स्ना ने
गोपन लज्जा मे वेष्टित कर ।

मधु ने फूल ज्वाल से आवत,
किया शरद ने लेखा मुख स्मित
मणि मुक्तामय खनि सागर ने,
मू ने स्वर्ण रजत से ऋतुत ।
जगा हृदय मे प्रीति दप नव
शत शत नयनो से हो लगित,
हाव भाव म मधुर समयन
शोभा तन सज्जा से सवत ।

तद्वित गम, सुरधनु कबरी घन
ज्यो कृताय होता मू पर ऋत
मधुर अप्सरा बनी जनी अद
बुल प्रदीप मे ज्योनित कर घर ।
मातृ स्नेह बरसा नव गिशु पर
मुग्ध प्रणयिनी हुई निछावर,

सहस्रमिणी घाज यह प्रिय की
मुग-दुग की मन्त्री, चिर सहार !

जानि जाव भव बने मुग, जीवन की द गव जीवन,
देग तनुज मुग धारम भाव मे हुषा गूढ़ परिवतन !
जीवन का धमरत्व हुषा प्रत्यक्ष, पुरानन नूतन,
नित्य स्वप्न शीघा का सत्य हुषा, भवचेतन चेतन !
अतरतम म घादोना, भावो मे जागा मघन,
धूम गया हट, मूर्तिमान हो उठे काय घो' वारण !
पेट्र बग गया गिगु ममत्व ने बिया मृत तन धारण,
विस्तृत हुषा अहम्, निजत्व न दुहराया नव जीवन !
'अह, समानता जट जग की, मैं हूँगा निश्चित विलक्षण,
इद्रधनुष स्वप्नो का जीवन नीड रचूंगा मोहन !
हम तुम होंगे प्रिये अगाधारण,' कहता था जो मन,
धारमनिष्ठ यह शीघन सीग रहा भव धारम समपण !
जीवन इच्छा, जीवन स्थितिया म विरोध क्या शाश्वत ?
दोना म ज्यो समाधान भव सोज रहा मन उद्यत !
बडा मुग दायित्व, घाज जीवन घर म अन्त्यागत,
बने उरोज पयोधर, दम्पति जगत बम म अर रत !
धूम - धूम शिगु का मुख पात तपित अमृत मदिराधर
मधुर प्रणय का फुज बना गह अन्दन फलरव से भर !
मलपानिल प्रा नवल मुकुल का मुख बरती अर चुम्बन,
सुधा स्पश शनि की किरणें अभिनव ही का अभिनदन !

मूल गया ज्यो प्रणय कलह मन,
गूज उठे उर के धरसिक' क्षण,
मृत पीठ पा मम स्पहा ने
पुन स्नेह बन बिया अवरण !

रूप रग का रच सम्मोहन
सजन शवित ने बाँधे ये मन,
पलको म क्षर पुलक मे तडित
अधरो मे घर मदिरा मादन !
अर शिशु के अनुपम आनन मे
अतुल स्वग का भर आकषण,
परम्परा मे गूथ, धमर ज्यो
बना दिया उसने भगुर तन !

नहीं गणित से रे परिचालित
मानव जीवन का विकास क्रम
विजय पराभव सधि क्रांति का
स्रवण शील मानव मन सगम !
मरती रहती बाह्य चेतना
आत्मा फिर फिर जगती नूतन

छोड़ जीण केंचुल, नव सर्पित
होता उरग मनुज का जीवन ।

(प्रौढ़ता)

शात रे ज्वलित तद्धित नतन,
शात अब धूम मेघ गजन ।
शात चिर प्राणो वा आवेश
बरस भू पर भर नव जीवन ।
आज शुचि सौम्य शरद आनन
नीलिमा नत निधूलि गगन,
चेतना - सी ज्योत्स्ना स मुक्त
दुग्ध प्लावित जग के दिशि क्षण ।
स्वच्छ आदशों स सरि - सर,
मनोदग - सी स्मित कुई सुधर ।
कृतानलि अब प्रभात के पथ,
प्रौढ़ता का भव रहा निखर ।
रूप रगो का चित्र जगत
सिमट, धुल, हो अनुभव अवगत
विचारो भावो मे परिणत
नियम चालित लगता सतत ।
भि न रुचि प्रकृति नहीं कल्पित,
एकता म व आलिगित,
विकपण आवपण से नित्य
हो रहा जग जीवन विकसित ।
नव कुमार का पक्कड मटुल कर
टहला रही जनी आगिन पर,
विस्मय नव कौतूहल स भर
पूछ रहा वह प्रश्न प्रश्न पर ।
कसी हो शिक्षा किशोर की
हृदय पिता का अब चितन पर
प्रिय प्रबोध चरणो मे जग के
काटे गड न जायें, वह कातर ।
लाड प्यार भय वजन मे बड
पाच बरस का अब प्रिय बालक,
युवति युवक का प्रौढ शिशु हृदय
स्वत सल्लि जीवन सरक्षक ।
घर आगिन पडोस बच्चो के शिक्षक सतत अपरिचित
रहन सहन म जीवन शोभा अभी न मू के दशित ।
कयो न बने घर घर किशोर के हित जीवित विधायन
देवालय जग नव दीपो से हो जीवन नीराजन ।

स्वण किरण / २४१

ज्योति वृत्तियो से मानव का शैशव उर हो सस्कृत,
मूर्तित सामाजिक गरिमा से हो तारुण्य प्रभाविन,
ग्रह, प्राणो के स्वप्न प्राज यौवन शय्या पर मूर्च्छित,
मन स्वग हम भू जीवन मे कर पाये न प्रतिष्ठित !

पक्व हो चुके वे जग का हिम घातप सहकर,
मोहित जीवन फल चख, तिक्त मधुर रस से भर ।
भ्रमण कर चुके मू के जन कुसुमित देशांतर,
विविध लोक सम्पर्कों से भ्रव विवसित अंतर ।

मू मे प्राज विभव अपार, दारिद्र्य अपरिमित,
ज्ञान अखण्ड, असह्य अविद्या तम से पीडित ।
साधन विवसित, जीव कामना क्षुधित निरावत,
रोग अस्त मन, जीवन विषम, मनुज आत्मा मृत ।
धरा वक्ष कटु राष्ट्रों के स्वार्थों से खण्डित,
स्वर्ण कलश उन्नत देशों के विष परिपूरित ।
गगन सिंधु भीषण रण चीत्कारों से नादित,
मनुष्यत्व भौतिक वैभव से प्राज पराजित ।

जाति वण वर्गों में मानव जाति विभाजित,
अथ शक्ति से रक्त प्राण जन गण के शोषित !
जीवन मंदिर मे यंत्रों के प्रेत प्रतिष्ठित,
मानव के आसन पर दानव मुख अभिषेकित ।
क्षुद्र आत्म रत मध्य वग कृमि व्यूह - सा घणित,
अथ दस्यु रे उच्च वग धन मद उत्तेजित,
वक्ष प्रीति का घृष्ट काम के कर से मर्दित,
अहम्भयता, अथ लालसा से भू कम्पित ।

विधि ने ऐसा विषम विश्व, ग्रह, किया क्यों सृजन,
यह क्या प्रकृति विधान कि मानव कृत सघषण ।
रिक्त सुरा का बुदबुद सा क्षण मगुर जीवन,
चिर विमष निर्वेद रत्नानि से भर जाता मन ।
किसका उर रे जग के कटु घातों से वचित ?
जीवन का पी तिक्त तप्त विष कौन न मूर्च्छित ।
किसका दप न पद मर्दित ? आशाएँ लुण्ठित ?
पार कर सका माया का पुल कौन अडुण्ठित ।

धूप छाँह यह जग, आशा मे घुली निराशा,
राग द्वेष सुख दुख सग बेधी अमिट अभिलाषा ।
विरह मिलन सघष शक्ति जग की परिभाषा
जन्म मरण रुजू जरा अघित रे जीवन श्वासा ।
पाप पुण्य, मिथ्या श्री' सत्य जगत मे गुम्फन,
ज्योति तमस द्वन्द्वों से निश्चय ससति निर्मित ।
यहाँ बुरूप सुधर साधारण, पूज्य तिरस्कृत
धनी दीन, भोगी त्यागी श्री' मूढ विपरिचत ।

सच है, सुख से अधिक दुःख ही जग में निश्चित,
 घृणा प्रेम से, दय विभव से कही असीमित !
 प्रतिभा से आडम्बर, दर्प विनय से पूजित,
 ससृष्टि ज्ञान कला कोन में पड़ी उपेक्षित !

जगत जीवन के कुछ अभ्यास
 बन गये अथ उर के विश्वास,
 असद सद सदाचार व्यवहार
 लिपट प्राणों से गये उदास !
 व्यक्ति जीवन, जग जीवन भिन्न,
 प्रायना में मिलता आश्वास,
 भाज बहिरतर जग के मध्य
 दीखता धमिट विरोधाभास !

मध्य बिन्दु क्या बहिरतर का ? भव क्या प्रगति निरतर ?
 क्या हूँ मैं, क्या जग, क्या जीवन ? क्या कुछ इनस भी पर ?
 सदाचार क्या धर्म ? जगत में क्या हूँ विविध मतातर ?
 क्या है मिथ्या सत्य ? मान जीवन के जिन पर निमर ?
 दृश्य जगत मन से भी पर क्या आत्मा नित्य अगोचर ?
 विश्रुत हुआ स्वयं यह भव, या इसका स्रष्टा ईश्वर ?
 क्या जड, क्या चेतन ? मथित अथ जिनासा में अतर,
 विद्युत - सी हा स्फुरित प्रेरणा देती ज्यो कुछ उत्तर !

चेतना रे जिनकी विस्तृत
 हृदय में उनके अथक प्रयास,
 किस तरह बने मानवोचित
 जगत जीवन अश्वत्थ निवास !

तरुण जीवन का वाष्प प्रसार
 तथ्य बूझो म आज गलित,
 व्यनित गत जीवन का वराग्य
 हो रहा उर में शन उदित !
 लोक सेवा में जीवन पुष्प
 चाहता करना मन अपित,
 आज करुणा विदीण अतर
 दीन भातों को देख द्रवित !

विषमता के निमग्न पद से
 फूल जो जीवन के मन्दित,
 अभावों के असुरों ने चूस
 कर दिया जिनको जीवमत,
 सतत उत्पीडन शोषण से
 बने जो विकृत गह्य दूषित,
 हुई बटु घातों से जग के
 सहज थड़ा जिनकी कुण्ठित !

हृदय सोचता कमे उनका मिटे कदय पराभव,
 कैसे हँसे दिगन्त धरा के, मानव हो फिर मानव ।
 ओ धरती के आत तप्त जन, कहता ज्या वातर मन,
 मत खोओ विश्वास हृदय का, मत खोओ मानवपन ?
 अश्रु स्वेद श्रम रक्त सनी जन भू की गाथा निश्चित,
 पीडन शोषण सघषण से करुण सम्यता निमित ?
 मानव ही भूखेव दलित, लुण्ठित, ओ जग के लाछित,
 क्लुप कालिमा के भीतर हो रही चेतना विकसित ?
 सामाजिक जीवन से महत कही अतमन जीवन,
 वहद विश्व इतिहास, चेतना गीता किन्तु चिरतन ?
 भर देगा भूखी धरती को अन्तर्जिवन प्लावन,
 मनुष्यत्व को करो समर्पित खण्डित मन, कवलित तन ।
 तुच्छ नहीं समझो अपने को, तुम हो पृथ्वी वासी,
 फिर तुम भारत वासी जो, वसुधव कुटुम्ब प्रवासी,
 देखो, भा के अचल मे जो रत्न बंधा अविनाशी,
 जगत तारिणी भरत भूमि, वह नहीं भिखारिन, दासी ।

आँसू क्षण अनुभव से हसकर
 धोते जीवन के रुधिर धरण,
 हृदय ताप सगीत धन मुखर,
 गाता विरत प्रीति का गायन ।—

एक कण्ठ हो, जग के दीना दुखियो, गाओ,
 बधिर श्रवण को वृथा न दुख की कथा सुनाओ ।
 किसे रुचेगी राम कहानी निमग्न जग मे
 काटे वोता है जब मनुज मनुज के मग मे ।
 तुम हो दुख के घनी, मनुज का दुख बटाओ ।
 कुतर भाग्य के पख, उडो हे हृदय गगन मे,
 धोओ मानव के विकसत पग जीवन रण मे,
 लघु ममत्व की बेलि निखिल जग मे लिपटाओ ।
 मनुज नियति यह, पीडक मनुज, मनुज ही पीडित,
 यह विकास की गति, मानव उर होगा विस्तृत,
 नव जीवन के अग्रदूत तुम, जो उठ पाओ ।

ध्वस एक युग, धूलि धूसरित नव युग का तन,
 आज मनोजग मे केवल सघषण अन्दन,
 मोह विगत का तज नूतन को मूत बनाओ ।
 अथ लालसा लोभ घेरते मानव का मन,
 तुम हो रिक्त, बने मनुजत्व तुम्हारा चिर धन,
 घृणा द्वेष की रज मे प्रेम त्याग वो जाओ ।
 जो अपने मे सीमित करते रहत प्रतिक्षण
 जग के प्रति जीवित करते चिर मृत्यु का तरण,
 खोल मरण के द्वार, अमर प्राण मे धाओ ।

क्षण भगुर यह तन, आत्मा रे मुक्त चिर तन,
ईश्वर जग मे व्याप्त त्याग स भोगो भव जन,
यह चिर परिचित भारत का स्वर, इसे जगाओ !
मुक्त कण्ठ हो जग के दीना दुखियो, गाओ !

देव वत्स का अकल्प आनन
हृदय रक्त कर उठता नतन,
विश्व चतना का आवरण
युक्त सृष्टि स कर देता मन !
शाश्वत वा पा स्पश अपरिचित
हूब स्वात वा जाता न दन,
उर का चिर तारुण्य फूटकर
नित्य जगत वा करता सजन !
मुक्त सृजन आनन्द हृदय म
हो उठता अज्ञात तरगिन,
जीवन का अमरत्व सनातन
मुग्ध दृष्टि वा करता विस्मित !

निश्चय ही यह जग शाश्वत मुख का चिर दपण,
मनुज नियति रे यह कटु सामाजिक सघषण,
सत्य ज्योति, अमरत्व चाहता है अतमन,
सु दरता, आनन्द प्रेम,—यह शाश्वत का कण !
जग वैपश्यो को जीवन गति म कर निखिल समचित
मानवता को शाश्वत की आकृति म होना विकसित !
खण्ड युगो की सस्कृति को भव सस्कृति मे एकीकृत
धरती के आहत तन मन को होना शोभित ज्योतित !
नव सतति की शिक्षक होगी नव भव स्थितियाँ निश्चित,
द्वैप द्वेष नैराश्य ग्लानि सँ होगे वत्स अपरिचित,
मातृ वत्सला सत्ता से होगे जनगण प्रतिपालित
विकृत स्रण कवलित होगे मानवता से सरक्षित !

सस्मित होगा धरती वा मुख,
जीवन के गह प्रागण शोभन,
जगती की कुत्सित कुरूपता
सुपमित होगी, कुमुमित दिशि क्षण !
विस्तृत होगा जन मन वा पय
शेष जठर वा कटु सघषण,
सस्कृति के सोपान पर अमर
सतत बढेंगे मनुज के चरण !

विशद चेतना ही सत्ता वा कर सती परिचालन
जन जिसके अगणित अवयव, सस्कृति केवल सचित मन,
मृत आ त मानव को निश्चय बनना अतलोचन,
सत्य अखण्डित, युगपत बढत रे बहिरतर जीवन !

रवि की आभा शशि उर मे ज्यो होती बिम्बित,
 प्रौढ बुद्धि मे शनै विश्व मन हुआ प्रतिफलित ।
 जीवन सज्जा भव न चित्त करती आर्कषित,
 रूप रग पखो म सत्य हृदय जो स्पन्दित ।

क्षेत्र बना मानव के मन को
 करते मगल सृजन विश्वमय,
 स्पन्दित शत मानस यत्रो मे
 होता ज्ञानोदय का सचय ।
 मुक्त, सवगत हो विवसित मन,
 करता जीवन पर्यालोचन,
 अमृत हास्य ला शाश्वत मुख का
 भर देता नव जीवन प्लावन ।

नही क्षुधा भी काम मात्र स
 हुई लोक सस्कृति रे विकसित,
 मानव के देवत्व के लिए
 विश्व पीठ जीवन की निर्मित ।
 चीर काम का तमस आवरण
 होगी स्वर्गिक प्रीति अगुणित,
 मूण्मय मानस दीपक होगा
 अमर चेतना ली से दीपित ।
 जीवन के स्वर्णिम वैभव पर
 आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित
 मनुष्यत्व के मुख मण्डल पर
 शाश्वत अन्तर आभा शोभित ।

(घाघकथ)

शेष पथ श्वसित शिशिर की वात,
 शिला शीतल प्राणो का ताप;
 गिर रह पीले जीवन पात
 विरस क्षण सिसक, ग्विसव चुपचाप ।
 अस्थि पजर अब जग की डाल
 भर रही हिल हिल ठण्डी साँस ।
 बुहासे मे स्मृति के भावत
 विगत यौवन के चल मधुमास ।
 मूल फूलो के आलिगन
 वात हत लतिका मू लुण्ठित,
 न अब वह गुञ्जित तरु जीवन,
 न जीवन सगिनि ही परिचित ।
 न वह मधु रस, न रग गुंजार,
 धूलि धूसर गम्भीर दिगत,

फूल पल, रच भव स्वप्न असार,
 बीज म लय फिर हुआ अनंत ।
 दूगो म हँसते जीवन अश्रु,
 कमल म ज्यो हिम जल थर थर ।
 शा त नीरव आत्मिक सतोप
 गया भव क्लान्त हृदय म भर ।
 रूप रगो की मासल देह
 तीलिया की भव त्वक् पिंजर,
 गूढ निशब्द गिरा म लीन
 मुखर खग के अतमुख स्वर ।

चल रहा झुक लाठी पर आज
 वृद्ध, जीवन क प्रति साभार,
 छोड़ चेतन जड़ का अवलम्ब
 करेगा मृत्यु द्वार फिर पार ।
 प्रबेला वह विशिष्ट रे पाथ,
 न पथ के संग यात्रा का अंत,
 विश्व मे रिक्त व्यक्ति का स्थान
 नहीं भर सकता स्वय अंत ।
 मारता वह विनोद से आख
 दख नव युवति युवक को साथ,
 झुरियाँ हसती नीरव हास,
 फूलता पेट, झूलता माथ ।

पक्व जीवन का फल वह पूण,
 तप्त उर चम रघ्न चरिताथ,
 खीच सकता न देह मन प्राण
 विश्व प्राणो स सार पदाथ ।
 व्यग्र रे अमृत अनिल मे आज
 व्याप्त होने को ज्यो क्षण द्वास,
 विफल उडने को खग, पर खोल,
 छोड़ भस्मात देह तरवास ।

पितामह पलित काँस के केश,
 पुत्र प्रिय पौत्रो का भव धर,
 वधू अचल म नव शिशु देख
 सोचता कुछ तटस्थ अंतर ।
 सोच रहा वह या मन की आँखो में जगवर
 सूक्ष्म जगत हो रहा स्वप्न के पट पर गोचर ।
 आत इन्द्रियो की निद्रा से जाग्रत अंतर
 देख रहा, मैं जीवन की छाया से हूँ पर ।
 समदिक जीवन से प्रिय ऊँच उमे भव जीवन
 प्रीति मधुरिमा से प्रिय भव शिव सत्य सचरण ।

खड़ा द्वार पर जीवन् के काल सा मरण,
मोह दिशा का मिटा, काल से शेष अभी रण !

क्या है मृत्यु ? गहन अन्तर मे
उठता रह-रह प्रश्न भयानक,
शेष यही हा जायेगा क्या
जीवन का वरणात्त क्यानक ।
खलते हैं स्मृति के पट पर पट
विगत दृश्य होने क्षण गोचर,
स्वप्न चित्र-से वष प्रायु के
उडते घूमयोनि स नभ पर ।

अह, तृष्णा के वाप्यो की क्या
माया यह भगुर जग जीवन ।
सोया काल दिशा शय्या पर
स्वप्न देवता या क्या क्षण-क्षण ।
देह विधन का द्वार पार कर
आत्मा कहा करेगी विचरण ?
क्या जीवन की गोपन तृष्णा
केवल जन्म मरण का कारण ?

आत्म मुक्ति के लिए क्या अमित
यह अह प्रथित रग भव सजित ?
प्रकृति इन्द्रियो का दे वैभव
मानव तपकर मुक्त बने नित ।
नही सत कुल हुआ सत रे
जीव प्रकृति के सब जन निश्चित,
लोक मुक्ति है ध्येय प्रकृति का
मनुज करे जग जीवन निमित्त ।

तन से ही कर नव तन धारण
अमर चेतना करती सजन,
चेतन की भव मुक्ति के लिए
वाहन जड तन, माष न वधन ।
मुक्त सजन आनन्द को स्वत
रूपो का नव बधन स्वीकृत,
आत्मा जीण वसन तज रज का
नव वसनो मे होती भूपित ।

आशिक उसे लगा जीवन का
जड चेतन का बौद्धिक दशन,
जड चेतन से परे अगोचर
जीवन के हैं मूल सनातन ।
अन प्राण मन आत्मा केवल
ज्ञान भेद हैं सत्य के परम,

इन सबम चिर व्याप्त ईश रे
 मुक्त सच्चिदानंद चिरतन ।
 तरुण रथी ने भेले बहु फूलो के सायक
 प्रात दष्टि वह रहा, विचारक, जनगण नायक,
 प्रवेपक, शोधक, निज युग का भाग्य विधायक,
 धर्म नीति दशन मयन म प्रपर विनायक ।
 प्रब प्रसवित का हृदय बना निमम भय कुण्ठित,
 तक बुद्धि, अनुभूति, चेतना प्रमत मे द्रवित,
 मुक्त हुआ वह सूत्र सष्टि पट जिसस प्रथित,
 व्यक्ति विश्व से, इन्द्रिय मन स जो प्रतीत नित ।
 सहज चेतना स प्रब उसका हृदय प्रकाशित,
 प्रातप सी वह जिस न भू रज करती रजित ।
 शंशव यौवन शिशिर वसत उसी म चित्रित,
 शुभ्र किरण वह, जीवन इ द्रघनुप मे सजित ।

आज समस्त विश्व मंदिर सा
 लगता एक अखण्ड चिरतन,
 मुख दुल्ल जम मरण नीराजन
 करते, कही नहीं परिवतन ।
 ऊपा के स्वणिम गुणन से
 प्राभा प्रमर स्पश करती मन,
 पदतल पर श्लय जीवन छाया,
 सम्मुख ज्योति देश प्रब नूतन ।
 पुण्य हरित भू का दूर्वादल
 पाप ताप मे सतत प्रबलुपित,
 स्वर्ग चेतना सदश उतर प्रब
 उस पर घूप खड़ी ज्यो जीवित ।
 टूटी मन की जाग्रत निद्रा
 क्षीण अहम का शशि छायानन,
 विहंगो के प्रात कलरव म
 मिलता शाश्वत लोक जागरण ।
 विनत पद्म सध्या प्रांगन म
 मौन प्राथना, आत्म सपपण,
 ताराओ के स्तिमित स्वर्ग मे
 सोयी अपलक शांति चिरन्तन ।

खुला गगन मे आज मुक्त मन,
 नील योनि म प्रब वह सुंदर,
 प्रासन मे केवल उसका तन
 अंतरतम मे स्थित प्रब अंतर ।
 अटल शांति म भव सधपण,
 प्रमत अक मे जम ओ' मरण,

घनल प्रबल चेतना सागर,
सुख्य मान भव सलिल आवरण ।

हृषा हृदय म स्फुरित प्रचानक
सत्य निखिल जग मे जो व्यापक,
वहाँ देसना रहा वह प्रपक
क्या ? वह जिसग रे नित प्रपुष्क ।

वही निरोहित जड में जा चेतन मे विरसित
वही फूम मधु सुरभि, वही मधुनिहू चिर गुजित ।
वस्तु भेद ये चिर प्रभूत ही भव म मूर्तित,
वह प्रनेय, स्वन सधासिन एक, प्रगण्डित ।
प्रथ ऊष्व बहिरार उतारे सृष्टि संघरण,
सात बनत, प्रनिरय नित्य वा वह चिर दर्पण,
एक, एकता मे न प्रड, बहु मुग निग घोभन
मव, सब म परे, प्रनियवनीय, वह परम ।

उार चेतना पुन बनो मन
सुता रहस्य, मूढम पा दर्शन ।
जग दृष्टि म दृष्ट-प्रतुष पा
बहिरार जग जीवन वितरण ।
सत्य चेतना निर्भर भव म
प्रभूत कर रहे सायत धर्मण,
स्फुरित दीप्त मोर्कों म भागित
स्वयगा स्मित उर पय गीतन ।
गुण्य चकितयो म चिर उपोनिग
प्रामा वा निव्य विद् गगा,
बहिःप्रण रजित चेतना मा
मान चिन छाया प्रगुणा ।

मगा उगे मुग - मुग म मचिन
मगाश्च म मगृति निर्मित,
गीति धर्म सादां जीग मुग
ना मगात्र जीवम म गृणित ।
जाति बर्ण मोक्ष मे वीरिन
धम गान्, गगायो म गीदिग
ना ममुड के धात्र प्रचेतन
प्रथ प्रवेनी म सायानिन ।

मव मगा मे हा प्रो क'एत
गुन मोद मगृति म उगादिग
ही हुन काम निरिन मानव ही
प्रथ मगा म विचरे जीविग ।
प्र मव मगा ही विरगिन
मगाजीव मे मगादिग

शिल्पी सी चेतना जागरित
करे लोक मानव मन निर्मित !

मानव का देवत्व केन्द्र ही,
परिधि जगत जीवन हो विस्तृत,
जीवन का ऐश्वर्य अपरिमित
मानव ईश्वर को हो अर्पित ।
बहिर्जगत के वैभव का मद
अतर्मानव से हो चालित,
ऋत चित की आभा से चुम्बित
मनुष्यत्व हो पूण प्रस्फुटित ।
वस्तु परिस्थिति हो मनुजोचित,
त्याग भोग का हो वर साधन,
रुचि स्वभाव वचिन्त्र्य से ग्रथित
जन जीवन लीला हो शोभन ।
सजन शील हो मानव चेतन
मानवता मे कुसुमित जीवन,
जग हित जीवन मधु हो सचित,
हो अलिप्त कर्मों से जन मन ।

सब शक्तिमत्ता आत्मा की
जीव स्रष्टि मे बहुमुख विकसित,
रुचि अनुकूल विकास व्यक्ति का
श्रेयस्कर मानव समाज हित ।
ज्ञानी कर्मों शिल्पी सनिक
एक सत्य के अवयव निश्चित,
अतपथ से निखिल चराचर
आत्मा के बल से सम्पोषित ।

भू रचना का भूति-पाद युग
हुआ विश्व इतिहास मे उदित,
सहिष्णुता सदभाव दाति से
हो गत सस्वृति घम समन्वित ।
वथा पूव पश्चिम का दिग भ्रम
मानवता को करे न खण्डित,
बहिनयन विज्ञान हो महत
अतद दृष्टि ज्ञान से योजित ।
पश्चिम का जीवन सौष्ठव हो
विकसित विश्व तत्र मे वितरित
प्राची के नव स्वर्णोदय से
ज्योति द्रवित भू तमस तिरोहित ।
लोक नियति निर्माण करे नव
देश देश के विबुध विपरिचित

राष्ट्र नायको के संगे दुबह
 राज कम मे हो सत्रिष चित ।
 सर्वोपरि मानव संस्कृत बन
 मानवता के प्रति हो प्रेरित,
 द्रव्य मान पद यश कुटुम्ब कुल
 वग राष्ट्र मे रहे न सीमित ।
 एक निखिल घग्णी का जीवन,
 एक मनुजता का सघषण,
 अथ ज्ञान सग्रह भव पथ का
 विश्व क्षेम का करे उनयन ।

दिव्य क्षेत्र हो जो भू जीवन
 युक्त निखिल हो भू के मानव,
 अतर्जोवन का प्रवाह ही
 भर सकता जग में समस्त नव ।
 नही दिव्यता स्वप्न कथा रे
 वह अतर्तम में अन्तर्हित,
 सार तत्त्व वह मनुष्यत्व की
 निखिल सृष्टि की गति में भ्रुकृत ।

विजातीय हो कल्प तमस दुस्त,
 स्वजातीय देवत्व चिरतन,
 मानव तू शुक्रोसि स्वरसि
 भ्राजोसि जगतिरसि, सत्य ऋषि वचन ।

मानव के उर के मन्दिर में
 स्वयं प्रीति की शिला प्रज्वलित
 है देवत्व धाम मानव का,
 वह रे मनुज नियति, यह निश्चित ।

नर नारी का रुद्ध हृदय रे
 भ्राज स्वयं की लय से वचित,
 वे प्रभात के स्वर्णातप से
 रज तन में न विचरते ज्योतिन ।
 दह मोह अधिहार प्रणय से
 लोक क्षेतना भू की पीडित,
 युवति युवक जीवन सागर में
 नहीं प्रीति लहरो में दोलित ।

क्या मानव जीवन वसत-मा
 हो में लोक जीवन में कुमुमित,
 मधुर प्रीति है सामाजिक सुख
 प्राण भावना धारण सपमित ।
 परे मुक्त उपभाग हृदय का
 नर नारी निज रजि में प्रेरित

भादर प्रीति विनय हो उर म,
भग लालसा का मुख सस्कृत ।

भावी सन्तति को दे मानव
पुण्य चेतना की हवि दीपित,
हो मौलिक सस्कार वधू का
जागत, वृत्रिमता से कुण्ठित ।
जाति प्रसू वह, स्वय प्राकृतिक
वरण वृत्ति हो उसकी विकसित,
नर का पौरुष जगे, पुन वह
द्रोही पशु हो मानव निश्चित ।

हो प्रतीति परिणय प्राणो का,
कुल दीपक सुत भू के रक्षक,
नर नारी का लौकिक जीवन
यौवन आवेगो का शिक्षक ।
हृदय तमस आलोक-स्रोत पा
हो जीवन सौन्दर्य मे द्रवित
प्राण कामना सजन शील बन
घरा स्वग रचना म योजित ।

भाज पारिवारिक जग जीवन
अशु नयन कलहो से कवलित,
परिणय के अगणित पापो से
बद्ध मनुज चेतना कलकित ।
जब तक मानव हृदय देह के
नर नारी मानो म खण्डित,
नही मानुपी रे वह सस्कृति,
वह सामाजिकता अभिशापित ।

नर नारी का मुक्त हृदय ही
निकप प्रकृत सस्कृति का केवल,
अकित उस पर शोभा रेखा
मनुष्यत्व की हो स्वर्णोज्वल ।

जिस जगती की चित्र प्रकृति नित
शत ध्वनि वर्णों से सुख मुखरित,
वहाँ न कयो वुसुमित अवयव जन
विचरें अत श्री स दीपित ।
हँसता जहा अमर तारापथ
घरा नाचती श्वसित तरंगित,
वहाँ न कयो मानव जीवन हो
प्रेम हय भाशा स स्पदित ।

दिखा उसे देवत्व सार मानव जीवन का,
पाप पुण्य सदसद का जगत, जगत भ्रमन का ।
गत जीवन की छाया से भ्रू का मन आवत,
निज अन्त स्थ किरण से जनगण भी अपरिचित ।

बहिरतर धैभव का हो जो विश्व समन्वय
रूपांतरित जगत जीवन हो, नव स्वर्णोदय ।
मूल सत्य देवत्व मनुज का रे जो निश्चय
दैय दुरित का मन तब केवल आत्म पराजय ।
मानव को जो देव मान हम सोचें क्षण भर
गोचर तमस विकृति का कारण ही तब बाहर ।
दिव्य उपा के लिए क्षेत्र जो रचें लोकगण
स्वर्ण किरण हँस घरे घरा पर ज्योति के चरण ।

मन ने ज्यो दृग खोल किया जीवन की विकसित
आत्मा का संचरण करे मन को आलोकित ।
प्रीति शिखा में भेद बुद्धि जल उठे प्रज्वलित,
ऊर्ध्व चेतना विचरे जग जीवन में भूतित ।

दिखा उसे मानव भविष्य छाया सा चित्रित
मन से नहीं मनुज की भावी होगी निर्मित ।
मानव के ईश्वर को नव जीवन अगीकृत,
हृदय क्षितिज में दिव्य मेघ वह उठता ज्योतित ।
दीप भवन युग विद्युत् युग में ज्यो दिक् शोभित
मन का युग ही रहा चेतना युग में विकसित ।
द्विधा बुद्धि में मनु न रहेगा अधिक विभाजित,
जन-मन के अणु से होगी चिच्छक्ति प्रवाहित ।

प्लावित करती शिशु अघरो को
अंतर की आभा स्मिति निश्छल,
बुद्ध सोचता किन स्थितियों में
शिशु को बढना होगा प्रतिफल ।
युग जीवन की रज को लिपटा
कैसा रजित होगा वह मन
जन्मों के किन सस्कारों का
उसके अंतर में आचरण ।

अतयामी पुरुष करेंगे
निश्चय उसका नव पथ ज्योतित,
पर, सीमाओं का मानव मन,
वाँटो का जग का मन कुचित ।

नहीं ज्ञान से होता अविफल
समाधान मानव के मन का,

व्यक्ति विश्व से ही रे केवल
 है सम्बन्ध नहीं जीवन का ।
 गूढ रहस्यो के अभेद्य स्तर
 जिन पर जीवन की गति निर्भर,
 भवचेतन प्रचलन मनस^{प्रकृति} की
 निस्तल अविच्छिन्न रे सागर ॥

वयस भार से भुका धनुष-सा
 पष्ठ वश रेखाकित¹ भ्रान्त,
 दृष्टि क्षुधा निद्रा भी¹ क्रमशः
 शिथिल हुई भव, मन्द स्मृति श्रवण !
 प्रातः ब्राह्म मुहूर्त मे स्वतः
 खुल जाते यात्री के लोचन,
 एकाकी भ्रतर करता तब
 प्रभु से नीरव आत्म निवेदन !

हे जीवन धाराध्य, हृदय वासी, हे मानव ईश्वर,
 मंगलमय, तुम सर्वे प्रथम भक्षय करुणा के सागर ।
 माता, पिता, पुत्र, भार्या, निज पर, जमा के सहचर,
 विश्व योनि, तुममें भ्रनादि से जग के निलिल चराचर ।
 भाते जाते जन्म मरण बहु तन मे शैशव यौवन,
 आशाऽकाशा राग द्वेष मन मे करते सघषण,
 नीति धर्म आदश विविध बनते जीवन मे बन्धन,
 तुममे जगते दिशा काल, लय होते, देव परात्पर ।

खोज निरन्तर तुम्हे, अपरिमित महिमा स हो विस्मित,
 नेति नेति कह बुद्धि मनुज की बब से प्रणत, चमत्कृत ।
 हृदय सुलभ तुम, सहज कृपा कर देती उर तम ज्योतिष,
 ज्यो पारस का परस भ्रमस का स्वण रहस रूपान्तर ।

सदसद कारण-नाथ प्रकृति के केवल मान प्रयोजन,
 देव तुम्हारी भ्रमित दया से होता भव का पालन,
 तुमसे रहित भ्रचिर भ्रपूण जग तुमसे पूण चिरन्तन,
 तुम हो, भव है शून्य एक के गुण से गणित निरन्तर ।
 तुमस जो मन युक्त, सकल जग जीवन ही धाराधन,
 प्रेम, तुम्हारे हित माया का पाश मुक्ति हो प्रतिक्षण,
 तुममे केन्द्रित लोक योजना बने स्वर्ग सी पावन
 मानव के घटवासी, दो मानव को नव जीवन धर ।

×

×

×

रहे निनिमित्त भौतिक लोषन
 प्रभु प्रभु भक्त गये अभिन बन
 भाष सच्चिदानन्द चिरन्तन ।
 जय भ्रमत्य का मत्य पयटन ।

श्रवण गगन मे गूज रहे स्वर
ॐ क्रतो स्मर कृत त्रतो स्मर ।
सृजन हुताशन की हवि भास्वर
बनी पुन जीवन रज नश्वर ।

दृष्टि दिशा मे ज्योति मूत स्वर,
ॐ ऽ कृतो ऽ स्मर कृत ऽ स्मर
क्रतो ऽ स्मर कृत ऽ स्मर ।

अशोक वन

भक्ति प्राण

श्री मयिलीशरणजी गुप्त ।
योग्य नहीं कुछ भेंट आप श्री मैथिली शरण,
गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण ।
शंशव ही से रहा आपके प्रति आक्षण
ललित भणिति का किया प्रीति वश चपल अनुकरण ।
धमर भगीरथ आप, रसात्मक तुषा कर हरण
स्वरापगा वा प्रथम कराया मधुर अवतरण ।
सरस्वती से स्वयं आपका सुन धीना नवण
कण बन गये जन के प्यासे जल के भ्रवण ।
'सूर सूर तुलसी शशि' लगता मिथ्यारोपण
स्वर्गंगा तारापय में कर आपके भ्रमण ।
स्वण कलश कवि यश की यशोघरा नि सशय,
बसा गये साकेत, शिल्पि, नव आप चिरतन,
व्यथा क्या लिख गये गुप्त हृत्पत्र पर अभय
भारत नारी तीय उमिला का उर ऋदन ।

उपक्रम ,

धरती मे सोया था जीवन !
 चिर निद्रा से जग, जड तम से
 करना पडा उसे सघषण !
 जीवन का था नव्य सचरण,
 हुआ पुरातन मे परिवर्तन,
 उसने कच्छ वराह रूप धर,
 प्रतिश्रिया मद किया विमदन !
 धीरे स्वप्नो मे भ्रंगडा घन,
 जीवन शय्या पर जागा मन,
 कटु-विरोध सह, जिसने सीखा
 जीवन पर करना अनुशासन !
 मन था देश काल से सीमित,
 जीवन भगुरता से पीडित,
 तपकर वह जल उठा शिखा सा
 दिव्य चेतना मे भव मोहन !
 इस प्रकार चित् शक्ति निवर्तित,
 हुई जगत जीवन मे विकसित,
 मानव ने छुए असीम के
 छोर, तोड सीमा के बंधन !
 ज्यो - ज्यो हुई चेतना जागत
 प्रभु भी जग मे हुए अवतरित,
 अतमन मे परिणत होकर
 हुआ प्रतिष्ठित सत्य चिरतन !

(१)

अपलक नील गगन मुख तकती
ऊर्ध्व मना, वह कब थी देही ?
मम क्या करता अशोक वन,
शत सहस्र युग करते अन्दन,
निखिल प्रकृति, तृण तरु, चलोमि जल,
सुरभि, किरण, नभ उसके स्नेही !

कपती तन पर छन तरु छाया
उर का दृढ़ उमड हो आया,
सूने लगते गृह प्रांगन वन,
राम बिना, जो त्रिमुवन गेही !
राम जानकी को विलगाकर
उमड रहा दुख से भव सागर
लहराती कण - कण मे आशा
धम सेतु प्रभु बाधेंगे ही !

(२)

कसा था वह परम पुण्य क्षण !
लता भवन से प्रकट हुए थे
जब दो भ्राता श्याम गौर तन ?
परम रूप प्रभु नव इदीवर,
प्रीति हस लक्ष्मण पद अनुचर,
जाग्रत मानस म अनत छवि
निद्रित जल मे शांत स्मित गगन !
अमित नील ही प्रभु म नर तन,
शुभ शरद से निमल लक्ष्मण,
दख एक ही शोभा अपलक
बनी सूक्ष्म दशनमय चितवन !

सोच लिय प्रभु ने सोचन मन
खुले दृष्टि के भौतिक वधन
निज सीमा कर पार नयन ज्यो
मूल गये क्षर रूप विलासन !
जगा मनोचोचन म तत्क्षण
विश्व श्याम तन आभा का धन !

दिक्षा चेतना की छाया - सा
दिशि पल में चित्रित जग जीवन !
सूक्ष्म राम न प्रथम निज चरण
धरे धरा पर, किया भवतरण,
पा सीतामय प्राण पीठ प्रिय,
मू के हृदय कमल की पावन !

(३)

वन की ममर क्या गायेगी ?

कहती वह शक्ति स्वर में - क्या,
किरण तिमिर में खो जायेगी ?

भस्म हो चुकी जो भू रज जल,
उठी शिखा - सी जो श्री उज्ज्वल,
जगी चेतना धरती की जो
वह क्या भू पर सो जायेगी ?

पृथ्वी की पुत्री यह सीता
पृथ्वी जिससे हुई पुनीता
वह क्या आदिम मू जीवन के,
छाया तम को अपनायेगी ?

छूकर राम चरण जन पावन
बनी धरा प्रतिमा जो चेतन,
वह चिमपी लिपट जड रज से
फिर क्या मृण्मय हो पायेगी ?
मूल गयी जो तन, अपनापन,
जिसके मन का बना राम तन,
रूप गंध रस की मृत रज को
वह ज्योतित कर न उठायेगी ?

(४)

क्या असोक वन है, क्या सीता ?

वह सुख वैभव स्वग, और यह
जन भगल की भूति पुनीता !

एवं युगात्, रुद्र घनु खण्डन,
कृपि युग सजन राम भवतरण,
जन-मन धरणी, जग जीवन कृपि,
सस्कृति कृपि श्री, क्षितिजा प्रीता
गत जीवन भमता ही धर तन
जन मन मे धी माया रावण
मिटा धरा से उस विरोध को
सीता हुई अदोष गहीता ?

रावण था युग वैभव प्रतिमा,
अमित प्रताप बुद्धि बल गरिमा,

युग आकाशा से अविद्ध वह,
 जन - मन क्षम मही थी भीता ।
 जन आकाशा को था उठना,
 प्रभु को उतर मनुज था बनना,
 मू ईप्सा को स्वर्ग दया से
 होना था जग हित परिणीता ।
 जब आते महान परिवर्तन
 प्रभु तब भू पर करते विचरण,
 यह इतिहास मनो जीवन का,
 सजन विकास, चेतना गीता ।

(५)

देवि सजा दूँ फूलों से तन ।
 भवधि हो गयी, भायेंगे प्रव
 लंकापति करने अभिवादन ।
 मन्दोदरि के भेजे पावन
 नदन वन के पुष्प आभरण
 दमक उठेंगे तन की छवि से
 ज्यों शशि क्षुति से नवल शरद घन ।
 ये सुरगुरु के तोड़े क्षुचि फल
 ग्रहण करो, हो पुन ये सफल
 स्वर्ग पेय लो यह मृदु मादन
 करो सुधा से मुख प्रशालन ।

लका का यह शाश्वत मधुवन
 देवि, तुम्हारी छवि का दपण,
 नत चितवन, मधु चरण सहज स्मिति
 बन जाते शत मुकुल तूण सुमन ।
 पुलकित गन्ध व्यजन मलय पवन,
 उठ - उठ लहरें करती दशन,
 तुम भूमिजे घरा की शोभा,
 क्या आश्चर्य प्रणत जो रावण !

चेरी त्रिजटा निनिमेष मन
 करती नित नीरव नीराजन,
 स्नेह दष्टि से हृदय कामना
 उठकर दीप शिखा जाती बन ।

(६)

शोभे, अभिनन्दन हो स्वीकृत,
 लंकापति हो उपहृत ?
 पुष्पो से भी श्री कोमल तुम,
 पुष्प कहँ क्या अपित ।

जिस अभिलाषा से जर्जर मन,
जिन स्वप्नों में अनिमित्त लोचन,
जिस मद से रावण है रावण,
तुम्ह देख हो जाते प्रसमित ?
त्रिभुवन में विधुत जो 'दानव'
तुम्ह देख बन जाता मानव,
कौन मोहिनी तुम ? रावण की
माया भी हो जाती मोहित ।

दप दलित भव मेरा जीवन
विगत चेतना का पावक वण,
पा सुरमाया पवन, शिखा बन,
बुझने को ही उठा प्रज्वलित !
देख रहा मैं विस्मित लोचन
धरे राम तुम्हें, आभा धन,
दीपक की निष्कम्प शिक्षा तुम
भ्रमित ज्योति मण्डल से मण्डित !
अखिल ज्ञान पूजन - धाराधन,
रण कौशल त्रिभुवन ? वैभव - धन,
मुझको लगता, सार हीन है,
यदि वे नहीं जगत मगल हित ।

रावण को प्रिय नहीं नारि तन,
वह सुरागनाभो का मोहन,
माया से भी कर सकता वह
पल म, शत सीता तन निमित्त !
मुझे चाहिए, देवि, यह हृदय,
निखिल सृष्टि का जिसमें, आशय,
प्रथम बार यह हृदय धरा पर
भाज हुआ अवतरित कि विकसित !

(७)

क्या दू तुम्हें, रक्षपति उत्तर ?
इस जग में केवल वदेही
हृदय, राम केवल हृदयेश्वर !
धरती की आकाशा सीता
त्रिभुवन के पति से परिणीता,
मू, पर उसके, पद, भव में मन
हृदय राम में लीन निरतर !
सतत लोक मगल में जो रत
मू का हृदय राम का अनुगन,
क्या तुम बाँध सकोगे उसकी,
घट में समा सकेगा सागर ?

युग - युग से विच्छिन्न जडावृत
जग जा शक्ति हुई फिर केद्रित,
क्या ममत्व, के दोने मे वह
ज्वाल रहेगी ? सोचो क्षण भर !
वही राम जो जीवो मे क्षर
वे जीवो के परे परात्पर,
सीता से वे युक्त जगत से,
तुममे बनो जो कि प्रभु धनुचर !
हरा राम न मोह निशा भय
उठा पक से पद्म मू हृदय,
छोडा मोह निशाचर - पति, भ्रम,
प्रकट हुए लोकोदय दिनकर !

(८)

भुवन विद्रित मैं मू अधिकारी !

जीत सकेंगे मुझको राघव,
देवि, मुझे है सशय भारी !
सात्विक रघुपति, रावण माया
नही जानते, क्या है छाया !
निखिल भुवन इस अचित शक्ति की
सृजन - शीलता पर बलिहारी !
घरा गम भीतर गहरा तम,
जिसमे 'जीव' रहे अविरत भ्रम,
क्षण - क्षण के कटु सधषण से
उठी 'स्वर्ण' की लका, सारी !

मातृव वही रहेगा मानव
चढा पीठ पर उसके दानव,
वही महीपति जो भुजबल की
बाँध सकेगा चारदिवारी !

रूप गंध, रस शब्द कल्पना
यह, ममता की नहीं जल्पना
गाढ लालसा की मदिरा क्या
छोड सकेगा भूमि विहारी ?
मिट सकती जो मन की तर्णा
होती घरा न सागर - वसना,
सम्मोहन की रतन छटा को
त्याग बनेगा कौन भिखारी ?
देवि, युद्ध से होगा निणय
किसका होगा धरणि का हृदय,
स्वप्न शयन माया का तजकर
बन न सकेंगे जन धसिचारी ?

(६)

पंचवटी की स्मृति हो भायी !

नील कमल में, नील गगन में,
नील वदन ही दिये दिखायी !
संघ्या की भाभा मे मोहन
पंचवटी उठ भायी गोपन,
भूली सम्मुख, प्रिय संग चौदह
बरसों की स्वर्णिम परछाई !
बोन रहा वह सोने का मृग
मोह लिये जिसने मेरे दृग ?
जगी चेतना थी केवल, मैं
मन से राम न थी बन पायी !
मू सस्कार पुराने घेरे
उपचेतन मन की थे मेरे,
मू के गत जीवन की छाया
मन म थी प्रच्छन्न समायी ?

विषय मोह मिस चेतन मे जग
हीना था मन से उसे बिलग,
माया मृग बन वह मरीचिका
ज्यो सोने का तन घर लायी ?
जग जीवन सीता की काया
जन - मन से थी लिपटी छाया
गत युग की लका मे उसने,
कर प्रवेश, नव ज्वाल लगायी !
शात मूमिजा को मू गाया,
वह तापसी हरेगी बाधा,
भाज हृदय स्पंदन में उसने
प्रमू ने जय दुन्दुभी बजायी !

(१०)

राम दूत में, प्रमू पद अनुचर !

पहचानो, माँ, राम मुद्रिका,
सूक्ष्म परिधि सी, त्रिभुवन भीतर !
जननि, तुम्हे नित निज उर म घर
पद्म पुष्प तण पर करुणाकर
विरह व्यथा मिस अश्रु बहाते
मानव मन की दुबलता पर !

देवि, सकल ज्यो तूण तर, लग मृग,
बने सबदर्शी प्रमू के दृग,
निखिल घरा मे खोज तुम्हें वे
उत्सुक तरने को भवसागर !

समवदना तपित जन का मन
 मात, हुमा भव जाग्रत पावन,
 कौन मनुज की कहे बने सब
 प्रमु पद मनुचर उपनर, वानर !
 राम नाम प्रमु से भी बढकर
 बना आज जन मन का ईश्वर,
 अखिल सष्टि का सार तत्व वह,
 स्वग मुक्ति सोपान चिर अमर !

शूर वीर नर ले सग वानर
 प्रमु आयेंगे पार द्रुत उतर,
 मर्यादा का सेतु बांधकर
 चिर भव तणा के सागर पर !

अग्नि शिखा से करना सूचन
 मुझको प्रमु का निकट आगमन,
 सुन प्रमु धनु हुकार हिलेगी
 स्वर्णपुरी कम्पित ही घर धरू !
 यह प्रमु का सदेश जग माता,
 राम भूमिजा उर के ज्ञाता,
 धरती सा धीरज घर काटो
 अर्वाक्ष शेष यह अतिम वत्सर !
 सुन मारुति के मलय - स वचन
 पुलको से लद गया व्रतति तन,
 लहरा उठा हृदय म सागर
 वाष्प धनो से गये नयन भर !

(११)

जग धूम केतु से है पावक वाहक, धय, धय !
 तुम उल्का से टूटे शिखा पुच्छ,
 सशो सौधो से अट्टो पर
 ज्यो तडित नाचती शत तन घर,
 सका वा ही उर दाह सुलग
 भव उसे बनाता हो अरुण्य !
 ये दुग हर्म्य जो स्वर्ण शिखर
 परिताप पाप इनके भीतर,
 ये भुज बल सत्ता के भूधर
 हैं अडे धरा पर अहम्मय !

धर दय दुरित ही स्वर्ण रूप
 हैं वने रक्षपति कीति स्तूप,
 तुम भूमि कम्पन ज्वाल पल,
 क्षापो की गड सका जघय !

चिर अघ रुडियो मे पोपित
जन - गण धन मद बल से शोपित,
निज प्रजोत्कप के विमुख सतत
राक्षस पति जन - मन मे नगण्य !

युग - युग का कदम कलुष जला,
गत रीति - नीति के श्रृंग गला,
तुम रक्ष प्रजा के लिए बने,
जीवन चेतना शिखा वरेण्य !

(१२)

रक्त तरंगित आज सिंधु तट !

गजन करते क्रुद्ध ऋक्ष कपि
युद्ध छेडत कोटि वीर भट !
उडते वया रघुकुल के शायक
छोटते शत भ्रमुरो के नायक,
सूपनखा के साथ रक्ष कुल
लक्ष्मी की नासिका गयी कट !
भू लुण्ठित भ्रव दनुजो का मद,
गडा शीश पर भ्रगद का पद,
कुम्भकण - सी दानव निद्रा
चिर सोने को गयी हो उचट !

सूय रश्मि या राघव के शर ?
तिभिर तोम या दानव भ्रकर ?
शत - शत खड्ग शूल भ्रसि तन से
विद्युत लपटो - से रहे लिपट !
स्वर्णपुरी लोहित से लयपव,
दनुज जाति का डूबा भ्रव रथ,
गुद्ध शृगाल स्वान भ्रमुरो के
भ्रतिम चिह्ना पर रहे भ्रपट !
कैसे, देवि, रहेंगी जीवित
रक्ष पत्नियाँ हम, पति सुत मृत !
भ्रव लवेश विनाश उपस्थित,
विधि ने उनकी युद्धि दी पलट !

भ्राद्र नयन मूजा न तःक्षण,
भ्रातों का दुख किया निवारण,
भ्राभा स्मिति से दे भ्राश्वसन
खोल दिय ज्यो हृदय तमस पट !

(१३)

नीरव नेधनाद उर गर्जन !

दाविन छोड रण म सहमण पर
दवि, हृदय ज्या करता प्रदा !

मन में सोचा, जाकर इस क्षण
 वहाँ पुण्य चरणों के दशन,
 छू चतन के छोर शक्ति मिस
 जड मन का हट गया आवरण ।
 प्रतिम भव दनुजों के कुछ क्षण
 कहता है मुझसे मेरा मन,
 प्राण भरेगा हरित धरणि में
 दनुजों पर यह दृग जल वषण ।
 अथवा लक्ष्मण के हित शक्ति
 देवि, अथु जल करती मोचित,
 करण बाल कवलित दानव गण,
 देवों के हैं ईश चिर शरण ।

मृत्यु दनुज के लिए मान हैं,
 य- राघव के मुक्ति बाण हैं,
 सद् विकास का, देवि, असद भी
 है परोक्ष इस जग में कारण ।
 स्वामिमान का जीवन जीवन,
 चिर परिभव स श्रेष्ठ है मरण,
 बल का सत्य मूया बनता बल
 जब होते भव युग परिवतन ।
 भावी रहती नित्य तिरोहित,
 हानि लाभ जीवन मरण रचित,
 मेघनाद जीवन कृताय अत्र
 देख सत्य के ज्योति गति चरण ।

(१४)

दुसह वन के भीतर का वन ।
 विपिन गमन के निखिल दुखों का
 ज्या कटु सार अशोक वन गहन ।
 तज वैभव सुख राज भवन का
 प्रभु ने पकड़ा पथ जो वन का
 नाथ जानते रहे पथ वह
 जन गह मगल का चिर पावन ।
 कठिन भूमि कोमल पद गामी
 वन में थे संग प्रिय, भव स्वामी,
 ज्ञात रहा अतर्यामी को
 अंसि पथ वन विहरण का कारण ।

वाम नियति की व्यग्य नाटिका
 श्रुत अशोक वन शोक वाटिका,
 विद्ध जहाँ खर शकाघो से
 मधुर भाव गामी मनश्चरण ।

चिर अघ रुडियो मे पोपित
 जन - गण घन मद बल से शोपित,
 निज प्रजोत्कप के विमुख सतत
 राक्षस पति जन - मन मे नगण्य ।
 युग - युग का बदम कलुष जला,
 गत रीति - नीति के शृंग गला,
 तुम रक्ष प्रजा के लिए बने,
 जीवन चेतना शिक्षा वरेण्य ।

(१२)

रक्त तरंगित आज सिंधु तट !

गजन करते क्रुद्ध शूक्ष कपि
 युद्ध छेड़ते कीटि वीर भट ।
 उड़ते क्या रघुकुल के शायक
 छँटत शत असुरो के नायक,
 शूषनखा के साथ रक्ष कुल
 लक्ष्मी की नासिका गयी कट ।
 मू लुण्ठित भ्रव दनुजो का मद,
 गडा दीश पर अगद का पद,
 कुम्भकण - सी दानव निद्रा
 चिर सोने को गयी हो उचट ।

सूय रश्मि या राघव के शर ?
 तिमिर तोम या दानव आकर ?
 शत शत खड्ग शूल असि तन से
 विद्युत् लपटो - से रहे लिपट ।
 स्वर्णपुरी लोहित से लघपथ,
 दनुज जाति का डूबा अर रथ,
 गद्ध शृगाल श्वान असुरो के
 अतिम चिह्नो पर रहे भ्रपट ।
 कैसे, देवि, रहेंगी जीवित
 रक्ष पत्नियाँ हम, पति सुत मृत ।
 अर लकेश विनाश उपस्थित,
 विधि ने उनकी बुद्धि दी पलट ।

आद्र नयन मूजा न तःक्षण,
 आतों का दुख किया निवारण,
 आभा स्मित से दे आश्वासन
 खोत्र दिये ज्यो हृदय तमस पट ।

(१३)

नीरव नेघनाद उर गजन !

शक्ति छोड रण मे लक्ष्मण पर
 दवि, हृदय ज्यो करता अदान ।

मन मे सोचा, जाकर इस क्षण
 कहे पुण्य चरणो के दशन,
 छू चेतन के छोर शक्ति मिस
 जड मन का हट गया आवरण ।
 प्रतिम अब दनुजो के कुछ क्षण
 कहता है मुझस मेरा मन
 प्राण भरेगा हरित धरणि मे
 दनुजो पर यह दृग जल वषण ।
 अथवा लक्ष्मण के हित शक्ति
 देवि, अश्रु जल करती मोचित,
 करुण काल कवलित दानव गण,
 देवो के है ईश चिर शरण ।

मृत्यु दनुज के लिए मान है,
 ये राघव के मुक्ति बाण है,
 सब विकास का, देवि, असद भी
 है परोक्ष इस जग मे कारण ।
 स्वाभिमान का जीवन जीवन,
 चिर परिभव स थोष्ठ है मरण,
 बल का सत्य मया बनता कल
 जब होते भव युग परिवतन ।
 भावी रहती नित्य तिरोहित,
 हानि लाभ जीवन मरण रचित,
 मेघनाद जीवन कृताथ अब
 देख सत्य के ज्योति गति चरण ।

(१४)

दुसह वन के भीतर का वन ।
 विपिन गमन के निखिल दुखो का
 ज्यो कटु सार अशोक वन गहन ।
 तज वैभव सुख राज भवन का
 प्रभु ने पकडा पथ जो वन का
 नाथ जानते रहे पथ वह
 जन गह मगल का चिर पावन ।
 कठिन भूमि कोमल पद गामी
 वन म थे सँग प्रिय, भव स्वामी,
 ज्ञात रहा अतर्पामी को
 असि पथ वन विहरण का कारण ।
 वाम नियति की व्यग्य नाटिका
 श्रुत अशोक वन, शोक वाटिका,
 विद्ध जहाँ खर शकाप्रो से
 मधुर भाव गामी मनस्चरण ।

'फिर भी ज्योति पिण्ड तारे गिन,
 काटे मैंने विरह स्वप्न छिन,
 'सच है, प्रिये, शून्य था शशि विन
 तारा भरा घनत दिग गगन !'
 'गहन नील की प्रिये, कल्पना
 क्या सम्भव शशि सूय के विना ?
 प्रकृति पुरुष मे स्वय द्विधा हो
 करता ब्रह्म अभेद्य भव सजन !'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण,
 'प्रिये, स्वयम्भू क्षण यह पावन !'
 'राम, हमारा फिर - फिर मिलना
 ससृति का ज्यो नियम सनातन !'
 'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर,
 विरह मिलन से हो तुम ऊपर,
 जगत जननि तुम, तुमने जग हित
 किया घरा पर आज भवतरण !'

(१७)

ये धानद ध्रु सीते, विजय मनाते जनगण !
 करे ज्योति कण भू पर वषण !
 मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
 दानव मुक्त, मुक्त भव जन मन,
 देवि, तुम्ही वह मुक्ति रूप, यह
 मुक्त प्रतीति बने नव बधन !

सूय प्रभव रघुवश पुरातन,
 भश उसी का एक हुताशन,
 ऊर्ध्व प्राण आकाशाग्नो का
 जो घनत अक्षय चिर वारण !
 लोक कामना का वह पावक
 धधक रहा युग-युग से धक धक,
 देवि प्रवेश करो तुम उसमे,
 यह चेतना परीक्षा का क्षण !

'क्षिति जस अग्नि पवन नभ से पर
 जो ध्रुव राम अमर चिर अक्षर,
 मैं प्रविष्ट जीवन पावक मे,
 असादिग्य हो भव जन गण मन !'

दानव माया से न पराजित
होगे प्रभु के अनुज ऊर्ध्वचित,
अधोमुखी जड शक्ति पाश से
मुक्त शीघ्र होंगे जग सरुमण ।

दुखी ऊर्मिला के दुख से मन,
अतल अश्रु वारिधि वह जीवन ।
रोते होंगे उर मे आसू,
अधरो पर स्मित होगा आनन ।
प्रकट न करते होंगे सोचन
वर्षों के चिर विरह का दहन,
लगता होगा राज भवन भी
भिक्षु कुटी - सा, सूना निजन ।
जिय बिन देह, नदी बिन वारी,
होयी प्रिय बिन वह सुकुमारी,
अह, कराहता होगा ममर
उर मे मृत विरह अशोक वन ?

(१५)

स्वर्णपुरी यह, देवि, समपण ।
लकापति की मूर्ति गयी गल,
सजल हिरण्य शेष अब पावन ।
भर सुवर्ण में सौरभ महिमा
देवि, गढें रुचि सस्कृत प्रतिमा
सीता राम मयी सुर पूजित,
मानव बनें निखिल दानवगण ।

दनुज जाति मर्यादा पथ पर
देवि, चलेगी बन प्रभु अनुचर,
एक हुए अब दक्षिण उत्तर,
धय भाज का दिवस पुण्य पण ।
पद धर पग चिह्नो पर पावन
सफल भाज मदीदरि जीवन,
अखिल धरा के शोक पाप हर
सत्य, अमर अब यह अशोक वन ।
घाते होंगे विजयी रघुवर,
देवि, बिदा लेती रज छूकर,
फिर - फिर नत मस्तक हो मू पर
प्रभु दासी, मैं दास विभीषण ।

(१६)

'विरह प्रलय, प्रेयसि प्रभव मिलन ।

कब बिछड़े हम और मिले कब
मूल गया मन सजन निवतन ।'

'फिर भी ज्योति पिण्ड तारे गिन,
काटे मैंने विरह स्वप्न छिन,
'सच है, प्रिये, सूर्य या शशि बिन
तारा भरा घनत दिग् गगन !'

'गहन नील की प्रिये, कल्पना
क्या सम्भव शशि सूर्य के बिना ?
प्रकृति पुरुष मे स्वय द्विधा ही
करता ब्रह्म अभेद्य भव सृजन !'

'नाथ, मिलन क्षण आज प्रथम क्षण,
'प्रिये, स्वयम्भू क्षण यह पावन !'
'राम, हमारा फिर - फिर मिलना
ससृति का ज्यो नियम सनातन !'

'सच है, ज्ञात भेद तुमको पर,
विरह मिलन से हो तुम ऊपर,
जगत जननि तुम, तुमने जग हित
किया धरा पर आज अवतरण !'

(१७)

सीते, विजय मनाते जनगण !

ये धानद धश्रु कण तेरे
करें ज्योति कण भू पर वषण !

मुक्त आज भू, मुक्त निखिल जन,
दानद मुक्त, मुक्त भव जन मन,
देवि, तुम्ही वह मुक्ति रूप, यह
मुक्त प्रतीति बने नव बंधन !

सूर्य प्रभव रघुवश पुरातन,
भश उसी का एक हुताशन,
ऊर्ध्व प्राण धाकासाधो वा
जो घनत धक्षय चिर कारण !

लोक कामना का यह पावक
घघक रहा युग-युग से घक घक,
देवि, प्रवेश करो तुम उसमे,
यह चेतना परीक्षा का क्षण !

'क्षिति जल घग्नि पवन नभ से पर
जो ध्रुव राम धमर चिर धक्षर,
मैं प्रविष्ट जीवन पावक मे,
धसदिग्घ हो भव जन गण मन !'

‘ध-य देवि, सीते, सखि, प्यारी !’
 ‘ध-य जग जननि, जनक दुलारी !’
 ज्वाला वसने, आभा दशने,
 धरो धरा पर ज्योति श्री चरण !’

(१८)

‘प्रभु, क्यों ली यह अग्नि-परीक्षा ?’

सत्यसिन्धु, सशय के तम से
 करें विभीषण की निज रक्षा !
 सृजन वहि यदि ईश, तेज कण
 सब क्या नहीं स्वय वह पावन ?

जलज जीव, प्रभु, सहज तरल जो
 उसको कठिन अमल की दीक्षा !
 ‘साक्षी राम बिना क्या सीता
 नहीं दिव्य, जग जननि-पुनीता ?
 ईशावास्यमिदं न सर्वं शुचि ?
 गुह्यं ज्ञानं कीदं प्रभु भिक्षा !’

‘विश्व चेतना में प्रकाश तम,
 परम, चेतना में न द्वन्द्व भ्रम,
 सुनो रक्ष, लक्ष्मण का उत्तर,
 ब्रह्म-तत्त्व, की गहन सूचीक्षा !’

‘चिर अक्षर ही, जीवों में क्षर,
 स्वयं मुक्त वह-पूर्ण-परात्पर,
 विश्व विवर्तन क्षर विकास की
 है अनन्त शाश्वती प्रतीक्षा !’

‘नित सत राम, शक्ति चित सीता,
 अखिल सृष्टि ध्यान-द प्रणीता,
 प्रकृति शिवा सी उठे, शक्ति चित
 उतरे, निहित जगत में शिक्षा !’

-(१९)

‘हनुमत रज का, नाथ, निवेदन !’

जय जय जगत जननि, तम नाशिनि,
 जय जय राम, पतित जन पावन !

क्षमा करें, यदि पवन सुत चपल,
 तात दाय यह जीवन सम्बल
 जननि दयावत् से संचारित
 जगत्प्राण जो, पावक बाहन !

स्वामि पादुका का कर पूजन
गिनते भरत धनु से अनुक्षण,
सपदि अयोध्या चले नाथ जो
भक्ति-धय हो भरत प्रभु मिलन ।

हे घटवासी, दे हृदयासन
सतत प्रतीक्षा मे भव के जन,
राज्यारोहण करे जननि युत,
चिर महिमावित हो मानव मन ।

रिवत पूण हो, खण्ड हो सकल,
जीवनाब्धि हो बिडु बिडु जल
जय जय सीता राम, जयति जय,
जय लक्ष्मण, जय भरत शत्रुहन् !

स्वर्ण धूलि

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४७]

डॉ० एन० सी० पाण्डे
को

डॉ० एन० सी० पाण्डे
को

द्वितीय सस्करण

सस्करण म मैंने रचनाओं का क्रम बदलकर उनमें इधर उधर बहुत परिवर्तन कर दिया है। आशा है पाठको को यह नया क्रम प्रायेगा।

७ बी स्टेनली रोड
इलाहाबाद
दिसम्बर १९५८

सुमित्रानन्दन पंत

मुझे असत से ले जाओ तुम सत्य ओर,
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा बनाओ प्रमत्त भोर ।
बार बार आकर अन्तर मे हे चिर परिचित
दक्षिण मुख से, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित ।

स्वर्ण धूलि

स्वर्ण बालुका किसने बरसा दी रे जगती के महस्यल मे
सिक्ता पर स्वर्णवित कर स्वर्गिक आभा जीवन मग जल मे ।

स्वर्ण रेणु मिल गयी न जाने कब धरती की मत्स्य धूलि से,
चित्रित कर, भर दी रज मे नव जीवन ज्वाला अमर तूलि मे ।
अधकार की गुहा दिशाभी म हँस उठी ज्योति से विस्तृत,
रजत-सरित सा काल बह चला फेनिल स्वर्ण क्षणो से गुम्फित ।

खडित सब हो उठा अखडित, बन अपरिचित ज्यो चिर परिचित,
नाम रूप के भेद भर गये स्वर्ण चेतना से आलिंगित ।
चक्षु वाक् मन श्रवण बन गये सूर्य अग्नि शशि दिशा परस्पर,
रूप गन्ध रस शब्द स्पर्श की अकारो से पुलकित अन्तर ।

देवी वीणा पुन मानुषी वीणा बन नव स्वर मे अकृत,
नवल युग पुरुष को निज तप से आत्मा फिर ने करती सजित ।
बीज बनें नव ज्योति धृतियो के जन मन म स्वर्ण धूलि कण,
पोषण करे प्रराहा का नव अध धरा रज का सघषण ।

धीर आवरण भू के तम का स्वर्ण शस्य हो रश्मि अकुरित
मानस के स्वर्णिम पराग से धरणी के देशांतर गभित ।

आर्पवाणी ज्योति वृषभ

(१)

स्वर्ण शिखर से चतुर्भुंग हैं उसके गिर पर,
दो उसके शुभ शीप सप्त रे ज्योति हस्त वर ।
तीन पाद पर खड़ा, मत्स्य इस जग मे आकर
त्रिधा बद्ध वह वृषभ, रमाता है दिग्ध्वनि भर ।

महादेव वह सत्य पुष्प म्रौ' प्रवृत्ति शीप द्वय,
चतुर्भुंग सच्चिदानन्द विज्ञान ज्योतिमय ।
सप्त चेतना - लोक, हस्त उसके नि सदाय,
महादेव वह सत्य ज्योति का वृष वह निरचय ।

सत रज तम से त्रिधा बद्ध, पद अन प्राण मन,
मत्स्य लोक मे वर प्रवेश वह करता रेभण ।
महादेव वह सत्य मुक्ति के लिए अनामय
फिर फिर हम्भा ख करता जय, ज्योति वृषभ, जय ।

अग्नि

(२)

दीप्त अभीप्से, मुझको तू ले जा सत्य पर,
यज्ञ कुण्ड हो, अग्नि, हृदय मेरा अति भास्वर ।
प्राण बुद्धि मन की प्रदीप्त घृत आहुति पाकर
मेरी ईप्सा को पहुँचा दे परम व्योम पर ।
तू मुवनो मे व्याप्त, निखिल देवो की ज्ञाता,
यज्ञ अश के भागो दे, तू उनकी ज्ञाता !
निशि दिन हवि दे बुद्धि कम की, भूरि नमन कर,
प्राते हम तेरे समीप, हे अग्नि, निरतर ।

निज यज्ञो मे मरणशील हम करते पूजन
उस अमत्य का जो सबके अतर मे गोपन ।
यदि तू मैं, मैं तू बन जाऊँ, गिखे ज्योतिमय,
तो तेरे आशीष सत्य हो, जीवन सुखमय ।
पान रश्मियो से, मन से, कर तुझे प्रज्वलित
पाते हम सदबुद्धि, तेज, सत्कर्माँ को नित ।
जिन जिन देवो का करते हम यजन प्रतिक्षण
वे शास्वत विस्तृत हवि तुझको अग्नि, समपण ।

ज्योति प्रचेता, निहित अकवियो मे तू कवि बन,
 मर्त्यों म तू अमत, वरण के हरती बधन ।
 कैसे तुझे प्रसन करें हम, वरें दीप्त मन,
 ज्ञात नही पथ, प्राप्त नही तप, बल या साधन ।
 कौन मनीषा यज्ञ भेंट दें, कौन हवि, स्तवन,
 जिससे तेरी शिखा, अग्नि, कर सके वहन मन ।

काल अश्व

(३)

काल अश्व यह तप शक्ति का रूप अनश्वर,
 दिशा पष्ठ पर धावमान, अति दिव्य वेग भर ।
 महावीर यह, सप्त रश्मियो से हो शोभित
 चला रहा भव को सहस्रधुर, - प्राण उच्छ्वसित ।
 भुवन भुवन सब घूम रहे चक्रों - से अविरत,
 महा अश्व यह, खींच रहा अश्रात विश्व रथ ।
 अतद्रष्टा ऋषि, त्रिकालदर्शी जो कविगण,
 इस पर करते धीर विपश्चित ही आरोहण ।
 निष्ठुर विधि से पीडित जग के शेष चराचर
 परिव्रतन चक्रों में पिसकर होते जजर ।
 नाम रूप में ही जिनका मन मोहित सीमित
 प्रबल पदाघातों से वे नित होते मर्दित ।

काल बोध विस्तृत करता मन को, देता बल
 निखिल वस्तुएँ क्षण घटनाएँ जग में केवल ।
 बहिरतर जो निज को कर सकते संयोजित
 नहीं व्यापती काल अश्व गति उनको निश्चित ।
 अथवा जो निद्रा दृ शुद्ध, निर्लिप्त, ऊर्ध्वचित
 दिव्य तुरग पर चढ़, जाते वे पार आत्मजित ।

देव काव्य

(४)

तरुण युवक वह, कर्मों में था जिसके वीरल,
 रण में अरियो के मद को करता था हत बल,
 पलित वद्ध उसको जाता है आज र निगल
 मतक पडा वह वीर, साँस लेता था जो कल ।
 इस महत्वमय देव काय को देखो प्रतिपल,
 क्षण भगुर यह विश्व, काल का मात्र रे कवल ।
 ज्या हो जाता चन्द्र सूर्य की धामा मलय
 प्राण इन्द्रियाँ आत्मा में मिलती नि सशय ।
 नित्य, इन्द्रियाँ स अतीत आत्मा का जीवन
 अमन नाभि जो धन प्राण मन की चिर गोपन ।

व्यक्ति वैद्व है, विद्व परिधि, सत्ता रे प्रकाश
 नियम सनातन सृजन शील परिवर्तन निश्चय ।
 नाम रूप परिधान पुरुष के मात्र र वसन,
 आत्मवान् होते न काल के दशन के प्रशन ।

दिव्य पुरुष जो अति समीप, अन्तरतम मे स्थित,
 नहीं देख पाते जन उसको, वह अभिन नित !
 देखो उसके दिव्य काव्य को समृति-विस्तृत,
 वह न कभी मरता, न जीण होता, वेदाऽमृत ।

देव

(५)

कम निरत जन ही देवों से होते पोषित,
 निरलस रे वे स्वयं, अहनिशि रहते जागृत ।
 दिति पुत्रों को अदिति सुतों के वर चिर आश्रित
 मैंने अपने को देवों को किया समर्पित ।
 देवों का है तेज अमित सागर-सा विस्तृत,
 वे सबसे रे महत, नम्रता से चिर भूषित ।
 मानव, तुम शत हस्त करो वैभव एकत्रित,
 भौ' सहस्र कर होकर उसे करो नित वितरित ।

इस प्रकार सब पुण्य करो अपने मे सचित,
 अपने कृत क्रियमाण कम चिर वर समोजित ।
 गाँवों के पशु तजते ज्यों वन पशुओं का पय
 पाप कम तुम छोड़, रहो सत्कर्मों मे रत ।
 साय चलो, सबके हित बोली बनो सगठित,
 साय मनन कर, करो समान गुणों को अर्जित ।
 एक ज्ञान भौ' एक प्राण सब रहो सम्मिलित,
 तुम देवों के तुल्य बनो, सहयोग समर्पित ।

प्रत मे दीक्षा, दीक्षा से दक्षिणा ग्रहण कर
 उससे श्रद्धा, श्रद्धा से कर प्राप्त सत्य वर,
 ऋतम्भरा प्रज्ञा से भर निज ज्योतिष अंतर
 तुम देवों के योग्य बनो, बन मत्य से अमर !

पुरुषार्थ

(६)

कभी न पीछे हटनेवाले ही पाते जय,
 बहिरन्तर के ऐश्वर्यों का करते सचय ।
 धृष्ट प्रतिजन का ही अथवा सामूहिक वैभव
 ऐहिक आत्मिक सुख पुरुषार्थों के हित सम्भव ।

ठुकरा सक्त वीर मत्पु पद जो पग-पग पर
 आत्म त्याग, उत्सर्ग हेतु जो रहत तत्पर,

दीध विशद विस्तृत जीवन धारण कर निश्चय
 प्रजा-धाय सयुक्त सदा बनते समद्विमय ।
 शुद्ध चित्त बन, दीप्त प्रमीप्सा हवि कर भ्रमित
 विश्व यज्ञ में, बनें मनुज सब भ्रमत, मृत्युजित् !
 उठें सत्य से प्रेरित होकर दुबल, पीडित,
 बने सत्य के सम्मुख सत्ताधारी विनमित !
 ऋत की रे सम्पदा शुद्ध, निष्कलुप, सनातन,
 सुनता है ब्राह्मण सत्य का बधिर भी श्रवण ।
 दुह सुहस्त गोधुक कोई, सुदुषा गो को नित
 हमे पिलाये सविता का रस, ऋत दुग्धाऽमृत !

अन्तर्गमन

(७)

दायी बायी धोर, सामने पीछे निश्चित
 नही सूभता कुछ भी बहिरन्तर तमसावत ।
 है प्रादित्यो, मेरा माग करो चिर ज्योतिष,
 धँस रहित मैं, भय से पीडित, अपरिपक्व चित !
 विविध दृश्य शब्दों की भाया गति से मोहित
 मेरे चक्षु श्रवण हो उठते मोह विभ्रमित ।
 विचरण करता रहता चंचल मन विषयो पर
 दिव्य हृदय की ज्योति बहिर्मुख गयी है विलर ।
 तेजहीन मैं, क्या उत्तर दूँ कलें मनन क्व ?
 बहु द्वारों से बहिर्गमन कर मैं खोया भ्रम ।
 भरते थे सुन्दर उद्यान जो पक्षी प्रतिक्षण
 तपित इन्द्रियाँ करती थी जो रूप सगमन,
 आज श्रात, विषयाघातों से होकर कातर
 तुम्हे पुकार रही वे, ज्योतिमन के ईश्वर ।
 रूप पाश में बद्ध, ज्ञान में अपने सीमित,
 इन्द्र, तुम्हारी भ्रमित ज्योति हित वे उत्कण्ठित ।
 प्रार्थी वे हे देव, हटा यह तिमिर आवरण,
 ज्ञान लोक में आज हमारे खोलो लोचन !
 ज्योति पुरुष तुम जहाँ दिव्य मन के हो स्वामी,
 निखिल इन्द्रियों के परिचालक, भक्त्यामी !
 ऋत चित से है जहाँ सूक्ष्म नभ चिर प्रालोकित,
 उस प्रकाश में हमे जगाओ, इन्द्र, अपरिमित !

एक सत्

(८)

इन्द्रदेव तुम, स्वभू सत्य सवज्ञ, दिव्य मन,
 स्वर्ग ज्योति, चित् शक्ति मत्य में लाते अनुक्षण ।

प्रथम शक्ति से रचित तुम्हारा ज्योति भ्रष्ट रथ,
प्राण शक्ति मरुता से विघ्न रहित विग्रह पथ ।

तुम्ही अग्नि हो, सप्तजिह्व, अति दिव्य तपस क्षुति,
पहुँचाती जो अमर लोक तक धी धृत आहुति ।
दिव्य वरुण तुम, चिर भवलुप, ज्यो विस्तृत सागर,
तप पूत मन की स्थिति, उज्ज्वल, अखिल पाप हर ।

तुम्ही मित्र हो, ज्योति प्रीति की शक्ति समन्वित,
राग बुद्धि कर्मों में समता करते स्थापित ।
गुरुमान तुम, ज्योतिरत पक्षों की उडान भर
आत्मा की आकाक्षा को ले जाते ऊपर ।

तुम हो भग, चिर आशा-मुखमय, शोक पापहनु,
सूक्ष्म दृष्टि, ईप्सा-तप की तुम शक्ति प्रथमनु ।
मधुपायी युग अश्विन, तरुण, सुभग, द्रुत, भास्वर,
रोग शमन कर, नव निमित्त तुम करते अंतर ।

अमृत सोम तुम, भरत दिव आनन्द से मुखर
अन प्राण जीवन प्रद, मुक्त तुम्हारे निर्भर ।
काल रूप यम, निखिल विश्व का करते नियमन,
तुम्ही मातरिश्वा, सातो जल करते धारण ।

तुम्ही सूर्य, आलोक वण, अत चित के ईश्वर,
पथ ऊपाए, दिव्य प्रेरणाएँ सहस्र कर ।
तुम ही एक, स्वरूप तुम्हारे ही सब निश्चित,
विप्रो से तुम बहुधा बहु नामों से कीर्तित ।

प्रच्छन्न मन

(६)

वेद ऋचाएँ परम व्योम में अक्षय जीवित,
निखिल देवगण चिर अनादि से जिसमें निवसित ।
जिसे न अनुभव परम तत्व का अक्षर पावन
मन्त्र पाठ से नहीं प्रकाशित होता वह मन ।
जिसे ज्ञात वह सत्य, वही रे विज्ञ विपश्चित,
ज्योतिरत उसका बहिरतर, आनन्द रूप प्रसवित ।

एक अक्ष भर मात्र बहिर्मुख इन्द्रिय जीवन
क्षेप अक्ष प्रच्छन्न मनस में रहते गोपन ।
अतर्ज्विन से जो मानव हो सयोजित
पूण बने वह, स्वग बने यह वसुधा निश्चित ।
अन प्राण मन अतमन से ही परिपोषित,
सत्य मूल से युक्त, ज्योति आनन्द रूप नित ।

वाणी के रे तीन अक्ष उर गुहा मध्य स्थित,
अधिमानस से दिव्य पान ही उनका प्रेरित ।
बहिरतर मानव जीवन ही सत्य समन्वित,
अतर्वैभव से ही भौतिक वैभव दीपित ।

आत्मा का ऐश्वर्य, भूत श्री मुख हो अविरत,
ऊपाधो के पथ से उतरे पूषण का रथ ।

सृजन शक्तियाँ

(१०)

आज देवियों को करता मन भूरि रे नमन,
सृजन शक्तियाँ चिमयि जो करती भव सजन ।
माहेश्वरी महेश्वर की आज्ञा का पालन
लक्ष्मी श्री सौन्दर्य विभव नव करती वितरण ।
सरस्वती विस्तार सूक्ष्म करती सम्पादन,
काली भरती प्रगति, विघ्न कर निखिल निवारण ।
आभा देही अदिति, दवताओं की माता,
बहु अभिन अविभाज्य, एवता की चिर ज्ञाता ।
उसके सुत आदित्य सत्य से युक्त निरन्तर
भेद बुद्धि दिति के सुत दत्य, ब्रह्ममति तमचर ।
आदि सत्य का सक्रिय बोध इला देती नित,
सरस्वती चिर सत्य स्रोत अंतर में समुदित ।
मही, भारती, वाणी—जिसका ज्ञान अपारमित
सद का देती बोध दक्षिणा, हवि कर वितरित ।
सरमा है प्रेरणा, शुनी जो अचित में उतर
चित का छिपा प्रकाश बूढ़ लाती चिर भास्वर ।
देवों की शक्तियाँ देवियाँ रे चिर पूजित,
मानव का प्रच्छन्न चित्त जितसे नित ज्योतिष ।

इन्द्र

(११)

इन्द्र, सतत सत्य पर देवें मत्य चरण नित,
दिव्य तुम्हारे ऐश्वर्यों को कर अगीकृत ।
तुम, उलूक ममता के तम का हटा आवरण,
वृष हिंसा श्री' श्वान द्वेष का करो निवारण ।
बोक काम रति, श्येन दप श्री' गद्ध लोभ हर,
पङ्क रिपुओं से देव, करो जन प्राण निरन्तर ।
ज्यो मद पात्र विनष्ट शिला कर देती तत्क्षण,
पशु प्रवर्तियाँ छिन करो हे प्रबल वृत्रहन् ।

इन्द्र हमें आनन्द सदा तुम देते उज्ज्वल,
पीछे अथ न पड़े जो भाग हो चिर भगल ।
दिव्य भाव जितने, जो देव तुम्हारे सहचर
वत्र श्वास से भीत, छोड़ते तुम्हें निरन्तर ।
प्राण शक्तियाँ मरुत साथ दते जब निश्चय
पाप असुर सना पर तुम तब पाते नित जय ।

स्वर्ण मूलि / २८७

दान दान पर करता मैं श्रद्धा नत, वदन,
 तुम अपार हो, स्तुति से भरता नहीं कभी मन ।
 जो के खेतो म ज्यो गायें करती विचरण,
 देव, हमारे उर मे रमण करो तुम प्रतिक्षण ।
 सब दिशाओ से दो हमको, अभय, अनामय,
 विजयी हो पड रिपुओ पर, जीवन हो सुखमय ।

वरुण

(१२)

वरुण, मुक्त कर दो मेरे त्रिक् जीवन बंधन,
 पाप निवारक है, प्रकाश से भर मेरा मन ।
 पाश गुणो के ऊपर ओर खुलें नित उत्तम,
 नीचे टूटें अधम, मध्य मे श्लथ हो मध्यम ।

अन प्राण मन, सत रज तम का हो रूपान्तर,
 हम चिर अक्लुप बनें अदिति का आश्रय पाकर ।
 यह मानव तन सतत सप्त ऋषियो से रक्षित,
 चैत्य प्राण जिनमे सुषुप्ति मे भी चिर जागृत ।

सदा भद्र सकल्पो से हम हो परिपोषित,
 देवो को कर तुष्ट रहे नित स्वस्थ, हृष्ट चित ।
 भद्र मुनें ये श्रवण, भद्र देखें ये लोचन,
 स्थिर अगो से सदा सत्य पथ करें ग्रहण जन ।
 देव सखा बन ऋजु प्रिय, रहें सुरो से वेष्टित,
 उनकी भद्रा सुमति करे सबकी रक्षा नित ।
 पृथ्वी धी धी अंतरिक्ष की समिधा देकर
 श्रम से, तप से, अमृत ज्योति का पायें हम वर ।

सोमपायी

(१३)

चिर रमणीय वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतु सुखमय,
 स्निग्ध शरद, हेमन्त शिशिर रमणीय असशय ।
 मधु केन्द्रो को घेर बैठते ज्यो नित मधुकर,
 ज्ञान इन्द्रियो पर स्थित सोम पिपासु निरन्तर ।—

ध्यान मग्न होकर जीवन मधु करते सचय,
 अर्पित कर वामना, इन्द्र, तुममे होकर लय ।
 रथ पर रख ज्यो पर बैठ जाते वे तमय,
 ऋजु पथ से तुम ले जाते उनको ज्योतिमय ।

जिसकी महिमा गाते हिमवत सिन्धु नदी नद,
 जिसकी बाहु दिशाओ-सी फैली हैं कामद
 जहाँ अमृत धानद ज्योति के भरते निभर,
 मुक्त सोम रस पीकर पाते घाम वे अमर ।

ब्रह्म लोक वह, सूर्य समान अमित ज्योतिमय,
 मनोगगन शी, विस्तृत सागर सदृश अनामय ।
 पृथ्वी से अगणित गुण हृद्र वहत बल ईश्वर
 विषय शक्तियाँ उसकी शत शत किरणें भास्वर ।

मंगल स्तवन

(१४)

अमित तेरा तुम, तेज पूण हो जनगण जीवन,
 दिव्य वी। तुम वीय युक्त हो सबके तन - मन ।
 दीप्त भोज बल तुम बल भोज करें हम धारण,
 धुल्ले नयु तुम, करें मयु से बचुप निवारण ।
 तुम चिरसह, हम सहन कर सकें, धीर शान्त बन
 पूण बनें हम सोम, सत्य पय करें सब ग्रहण ।
 ज्ञान ज्योति का दिव्य चक्षु सामन अब उदित,
 देखें हम शत शरद, शरद शत मुनें भद्र नित ।
 बोलें हम शत शरद, शरद शत तब हो जीवित
 ऐश्वर्यों मे रहे, शरद शत दंय से रहित ।
 शत शरदो स अधिक मुनें देखें हम निश्चित
 तन मन आत्मा के संभव से युक्त अपरिमित ।
 स्वर्ग शान्ति दे अन्तरिक्ष दे शान्ति निरतर,
 पृथ्वी शान्ति शान्ति जल भोपधि शान्ति दें अजर ।
 विश्व देव दें शान्ति, वनस्पति शान्ति दें सफल,
 ब्रह्म शान्ति दे सब शान्ति दें शान्ति दिना पत ।
 शान्ति शान्ति दे हमें शान्ति हो व्यापक उज्ज्वल
 शान्ति धाम यह धरा बन, हो चिर जन मगत ।

सन्यासी का गीत

छेडो हे वह गान, अनन्तादभव अच्युत वह गान,
 विश्व ताप स सूर्य गह्वरो म गिरि के अस्तान
 निमृत अरुण्य प्रदशो मे त्रिसका शुचि जमस्वान,
 जिनकी शान्ति न कनक काम यदा लिप्ता का निवास
 मग कर सका, जहाँ प्रवाहित सत पित की अवितात
 सोनस्थिनी, उमहता त्रिसमे वह आनन्द अयाग
 गाधो, बड वह गान धीर सायागी, गूजे ध्याम,
 धोम तत्सत धोम् ।

तोहो सब शृगला, उरें निज जीवन अच्युत जा,
 हों उज्ज्वल बाञ्चन के अच्युत क्षुद्र पातु अस्तान
 प्रेम धना, सत अस्त, सभी ये इन्द्रा के अयाग ।

दास सदा ही दास, समादत या ताडित, परतत्र,
स्वण निगड होम से क्या वे सुदृढ न बधन यत्र ?
अत उहे सयासी तोडो, छिन्न करो, गा मत्र,
ओम् तत्सत् ओम् ।

अघकार हो दूर, ज्योति छल जल बुझ बारम्बार,
दष्टि भ्रमित करता, तह पर तह मोह तमस विस्तार ।
मिटे अजस्र तपा जीवन की, जो आवागम द्वार,
जन्म मृत्यु के बीच खींचती आत्मा को अनजा,
विश्वजयी वह आत्मजयी जो, मानो इसे प्रमाण,
अविचल अत रहो सयासी, गाओ निमय गान,
ओम् तत्सत् ओम् ।

'बोओगे पाओगे, निश्चित कारण कार्य विधान !'
बहुते, 'शुभ का शुभ फल, अशुभ अशुभ का फल,' धीमान् ।
दुनिवार यह नियम, जीव के नाम रूप परिधान
बधन हैं, सच है, पर दोनों नाम रूप के पार
नित्य मुक्त आत्मा करती है बधन हीन विहार ।
तुम वह आत्मा हो सयासी, बोलो वीर उदार,
ओम् तत्सत् ओम् ।

ज्ञान शून्य वे, जिहें सूझते स्वप्न सदा निसार—
माता, पिता पुत्र औ' भार्या, बाधव जन, परिवार ।
लिंग मुक्त है आत्मा ! किसका पिता पुत्र या दार ?
किसका शत्रु मित्र वह, जो है एक, अभिन, अतय,
उसी सवगत आत्मा का अस्तित्व, नहीं है अय ।
बहो तत्वमसि सयासी, गाओ हे, जग हो धय,
ओम् तत्सत् ओम् ।

एक मात्र है केवल आत्मा, ज्ञाता, चिर निमुक्त,
नाम हीन वह रूप हीन, वह है रे चिह्न भयुक्त,
उसके आश्रित माया, रचती स्वप्नो का भवपाश,
साक्षी वह, जो पुरुष प्रकृति भ पाता नित्य प्रकाश ।
तुम वह हो, बोलो सयासी, छिन करो तमतोम,
ओम् तत्सत् ओम् ।

कहाँ खोजते उसे सखे, इस ओर कि या उस पार ?
मुक्ति नहीं है यहाँ, क्या सब पास्त्र देवगृह द्वार ।
व्यय यत्न सब, तुम्हीं हाथ भे पकडे हो वह पाग
खीच रहा जो साथ तुम्हें ! तो उठो, बनो न हताश,
छोडो कर से दाम, बहो सयासी, विहसे रोम,
ओम् तत्सत् ओम् ।

बहो, दात हो सब, दात हो सचराचर अद्विराम
दात न उन्हें हो मुझ्गे मैं ही सब भूतों का प्राम,
ऊँच-नीच छो मरय विहारी, सबजा आत्मादात ।

त्याज्य लोक परलोक मुझे जीवन तण्णा, भव बध,
स्वर्ग मही पाताल—सभी भाशा भय, सुखदुख द्वन्द्व !
इस प्रकार काटो बधन, सयासी, रहो भवबध,
ओम् तत्सत् ओम् !

देह रहे जाये, मत सोचो, तन की चिन्ता भार
उसका काय समाप्त, ले चले उसे कम गति धार,
हार उसे पहनाये कोई, करे कि पाद प्रहार,
मीन रहो, क्या रहा कहो निन्दा या स्तुति अभियेक ?
स्तावक स्तुत्य, निन्द्य प्रौ' निन्दक जब कि सभी हैं एक !
भ्रत रहो तुम शात, वीर सयासी, तजो न टेक,
ओम् तत्सत् ओम् !

सत्य न भ्राता पास, जहाँ यश लोभ काम का वास,
पूण नहीं वह, स्त्री मे जिसकी होती पत्नी भास,
भववा वह जो किंचित् भी सचित रखता निज पास !
वह भी पार नहीं कर पाता है माया का द्वार
शेष भ्रस्त जो, भ्रत छोडकर निखिल वासना भार
गाम्रो धीर वीर सयासी, गुजे मात्रोच्चार,
ओम् तत्सत् ओम् !

मत जोडो गृह द्वार, समा तुम सबो कहाँ भ्रावास ?
दूर्वादल हो तल्प तुम्हारा, गृह वितान भ्राकास,
खाद्य स्वत जो प्राप्त, पक्व वा इतर, न दो तुम ध्यान,
खान पान से कलुपित होती आत्मा वह न महान
जो प्रबुद्ध हो, तुम प्रवाहिनी स्रोतस्विनी समान
रहो मुक्त निद्वन्द्व, वीर सयासी, छेडो तान
ओम् तत्सत् ओम् !

विरले ही तत्वज्ञ ! करोगे शेष अखिल उपहास,
नि दा भी नर श्रेष्ठ ध्यान मत दो, निबध, भ्रावास
यत्र - तत्र निमय विचरो तुम, खोलो माया पाश
भ्राधकार पीडित जीवो के ! दुख से बनो न भीत,
सुख की भी मत चाह करो, जाम्रो हे रहो भ्रतीत
द्वन्द्वो से सब, रटो वीर सयासी, मात्र पुनीत,
ओम् तत्सत् ओम् !

इस प्रकार दिन प्रतिदिन जब तक कम शक्ति हो क्षीण,
बधन मुक्त करो आत्मा को, जन्म मरण हो लीन !
फिर न रह गये मैं, तुम ईश्वर जीव या वि भव बध
मैं सबमे, सब मुझमे—केवल मात्र परम भ्रानद !
कहो तत्वमसि सयासी, फिर गाम्रो गीत धमद
ओम् तत्सत् ओम् !

भावोन्मेष

पुष्प वृष्टि हो,
नव जीवन सौंदर्य सृष्टि हो,
जो प्रकाश वणिणी दृष्टि हो ।

लहरो पर लोटें नव लहरें
साड प्यार की, पागलपन की,
नव जीवन की, नव जीवन की ।

मोती की फुहार सी छहरें
प्राणों के सुख की, भावों की,
सहज सुख की, चित चावों की ।

इन्द्रधनुष-सी आभा फहरे
स्वप्नों की, सौंदर्य सृजन की,
आशा की, नव प्रणय मिलन की ।
लहरो पर लोटें नव लहरें ।

कूक उठे प्राणों में धौयल ।
नव्य मजरित हो जन जीवन,
नवल पल्लवित जग के दिशि क्षण,
नव कुसुमित मानव के तन मन ।
बहे मलय साँसों में चचल ।

जीवन के बंधन खुल जायें,
मनुजों के तन - मन धुल जायें,
जन आदर्शों पर तुल जायें,
खिले धरा पर जीवन शतदल,
कूक उठे फिर धौयल ।

युग प्रभात हो अभिनव ।
सत्य निखिल बन जाय कल्पना,
मिथ्या जग की मिटे जल्पना,
कला धरा पर रचे अल्पना,
रुके युगों का जनरव ।

प्रीति प्रतीति भरे हो अंतर
विनाय स्नह सहृदयता के सर,
जीवन स्वप्नों से दग सुन्दर
सब कुछ हो फिर सम्भव ।

जाति पाँति की कड़ियाँ टूटें,
मोह द्रोह मद मत्सर छूटें,
जीवन के नव निभर फूटें
वैभव बने पराभव,
युग प्रभात हो अभिनव ।

श्रावाहन

(फिर) वीणा मधुर बजाओ !
वाणी, नव स्वर म गाओ !
उर के कम्पित तारों में
झटार अमर भर जाओ !

मानदित हो अन्तर
स्पन्दित प्राणों के स्तर
नव युग के सौंदर्य ज्वार में
जीवन तपा डुबाओ !

ज्योतिष हो मानव मन,
निर्मित नव जग जीवन,
देश जाति वर्णों से
निखरे नव मानवपन !

शोभा हो, श्री सुपमा,
धरणि स्वर्ग की उपमा,
नवल चेतना की जग में
स्वर्णम किरणें बरसाओ !
(फिर) वीणा मधुर बजाओ !

प्राणाकाशा

वज्र पायल छम छम
छम छम !
उर की कम्पन में निमग्न
बज्र पायल छम छम
छम छम !

हृदय रक्त रजित सुन्दर
नृत्य मुग्ध प्रिय चरणों पर
प्राणों की स्वर्णाकाशा सम
प्रणय जडित, चंचल, निरूपम,
वज्र पायल छम छम
छम छम !

उद्वेलित हो जब अन्तर
व्यथा लहरियों पर पग धर
जीवन की गति लय से अक्लम
पद उमद, मत धम, मत धम,
बज्र पायल छम छम
छम छम !

रस स्त्रवण

रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।
निष्ठुर जग, निमम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।

अतस्तल मे व्यथा भयित हो,
भाव मगि मे ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छद मे प्रीति रटित हो,
क्षण क्षण छन,

रस बन, रस बन,
प्राणों मे ।

तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
पूणा युक्त उर दया द्रवित हो,
जडता मे चेतना अमृत हो,
गरज न धन,

रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।

साधना

जीवन की साधना,
असफल जो सफल बना,
सिद्धि सही चिर तपना ।
जीवन की साधना ।

विपदाएँ

दुराशाएँ,

नष्ट मुझे कर जायें,

अष्ट न हो पथ अपना ।

चूण हुई जो आशा,
पूण न जो अभिलाषा,
चूण हुई जो आशा—

भूषित हो उनसे मन,
लाछन से शशि शोभन,
सत्य बने जो सपना ।

जीवन की साधना ।

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन ।

भार पार कुछ नहीं कही रे
इस धारा का भादि न उदगम ।

सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बंधन,
भाते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु क्षण ।

व्याकुलता प्राणो म बसती
हैंसी अघर पर करती नतन,
पीडा से पुलकित होता मन
सुख से ढलते आँसू के कण ।

शत बसत शत पतझर खिलते
झरते, नहीं कही परिवतन,
बंधे चिरतन आलिंगन म
सुख दुख, देह-जरा, उर यौवन ।

एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
अतल अकूल जलधि प्राणो का
लहराता उर म भर कम्पन ।

प्रतीति

विहगो का मधुर स्वर
हृदय क्यों लेता हर ?
क्यों चपल जल लहर
तन मे भरती सिहर ?
तुमसे !

नीला सूना सा नभ
देता आनन्द अलभ
ऊया सध्या द्वाभा
स्वण प्रभ,
तुमसे !

यह विरोध वारिधि जग
धूल फूल संग प्रतिपग,
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे !

लुटे घर द्वार मान,
छुटे तन मन प्राण,
बहता है बार - बार
मानव हृदय पुकार,
रह सकूंगा निराधार
तुमसे !

रस त्रवण

रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।
निष्ठुर जग, निमम जीवन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।

अतस्तन मे व्यथा मयित हो,
भाव मगि मे ज्ञान ग्रथित हो,
गीति छन्द मे प्रीति रटित हो,
क्षण क्षण छन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।
तम से मुक्त प्रकाश उदित हो,
धुणा युक्त उर दया द्रवित हो,
जडता मे चेतना अमृत हो,
गरज न धन,
रस बन, रस बन,
प्राणो मे ।

साधना

जीवन की साधना,
असफल जो सफल बना
सिद्धि सही चिर तपना !
जीवन की साधना !

विपदाएँ
दुराशाएँ,
नष्ट मुझे कर जायें,
अष्ट न हो पथ अचना !

चूण हुई जो आशा,
पूण न जो अभिलाषा,
धूण हुई जो आशा—
भूषित हो उनसे मन,
लाछन से शशि शोभन,
सत्य बने जो सपना !
जीवन की साधना !

प्रेम मुक्ति

एक धार बहता जग जीवन
एक धार बहता मेरा मन !

घार-घार कुछ नहीं कही रे
इस घारा का भादि न उद्गम ।

सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बघन,
भाते जात विरह मिलन नित
गात रोते ज-म मृत्यु क्षण !

व्याकुलता प्राणो म बसती
हैंसी अघर पर करती नतन,
पीडा से पुनक्ति होता मन
सुख से ढलत भाँसू के कण ।

शत वसन्त शत पतझर खिलते
भरते, नहीं कही परिवतन
बँधे चिरन्तन भालिगन मे
सुख दुख देह जरा, उर यौवन !

एक धार जाता जग जीवन
एक धार जाता मेरा मन,
भतल अकूल जलधि प्राणो का
सहराता उर म भर कम्पन ।

प्रतीति

विहगो का मधुर स्वर
हृदय क्यो लेता हर ?
क्यो चपल जल लहर
तन म भरती सिहर ?
तुमसे !

नीला सूना सा नभ
देता भान-द भलभ
ऊपा सध्या द्वाभा
स्वण प्रभ,
तुमसे !

यह विरोध वारिधि जग
शूल फूल संग प्रतिपग,
लगता प्रिय मधुर सुभग,
तुमसे !

लुटे घर द्वार मान,
छुटे तन मन प्राण,
कहता है बार - बार
मानव हृदय पुकार,
रह सकूगा निराधार
तुमसे !

भाशाएँ हो न पूण
 अभिलाषा अखिल चूर्ण,
 जीवन बन जाय भार
 सूख जाय स्नेह धार,
 विजय बनेगी हार
 तुमसे ।

सार्थकता

वसुधा के सागर से
 उठता जो वाष्प भार
 बरसता न वसुधा पर
 बन उबर वृष्टि धार,
 साथक होता ?

तूने जो दिया मुझे
 अमर चेतना का दान
 तेरी ओर मेरा प्यार,
 होता न धावमान,
 साथक होता ?

धुमडता छायाकाश,
 गरजता अधकार
 मृत्यु बाहुओं में बँधी
 चेतना करती पुकार,
 साथक होता ?

मत्स्य रहे, स्वर्ग रहे,
 सृष्टि का आवागमन,
 प्राणों में बना रहे
 तेरा चिर रहस मिलन,
 जीवन साथक होगा !

कुण्ठित

तुम्हें नहीं देता यदि अब सुख
 चन्द्रमुखी का मधुर चन्द्र मुख,
 रोग जरा भय, मृत्यु देह में,—
 जीवन चिंतन देता यदि दुख,
 आश्रो प्रभु के द्वार ।

जन समाज का वारिधि विस्तृत
 लगता अचिर फेन से मुल्लरित
 हँसी खेल के लिए तरंगों
 तुम्हें न यदि करती आमंत्रित,
 आश्रो प्रभु के द्वार ।

मेघा के संग इन्द्रचाप स्मित
 यदि न बल्पना होती धावित,
 धरद वसंत नही हरते मन
 दासि मुख दीपित, स्वर्ण मजरित,
 धामो प्रभु के द्वार !

प्राप्त नहीं जा ऐसे साधन
 करी पुत्र दारा का पालन,
 पीरुष भी जो नहीं, कर सकी
 जन मगल, जनगण परिचालन,
 धामो प्रभु के द्वार !

सम्भव है, तुम मग के कुण्ठित,
 सम्भव है, तुम जग से लुण्ठित,
 तुम्हें लोह से स्वर्ण बना प्रभु
 जग के प्रति कर देंगे जीवित,
 धामो प्रभु के द्वार !

श्रातं

धायें प्रभु के द्वार !

जो जीवन मे परित्यापित हैं,
 हतभागे, हताश, शापित हैं,
 काम क्रोध मद से प्राप्त हैं,
 धायें वे धायें वे प्रभु के द्वार !

बहती है जिनके चरणों से पतित पावनी धार !

जो भू के, मन के वासी हैं,
 स्त्री धन जन यश फल आशी हैं,
 ज्ञान भक्ति के अभिलाषी हैं,
 धायें वे, धायें वे प्रभु के द्वार !

प्रभु करुणा के, महिमा के हैं मेघ उदार !

पाप न जो धागे बढ सकत,
 सुख मे थकते, दुख मे थकते,
 टेढ़े - मेढ़े कुण्ठित लगत,
 धायें वे, धायें वे प्रभु के द्वार !

पूण समर्पण कर दें प्रभु को, लेंग सबल सँवार !

अब अपूण लण्ठित इस जग मे,
 फूला से बटि ही मग मे,
 मृत्यु साँस मे, पीडा रग मे,
 धायें हे, धायें सब प्रभु के द्वार !

वेवल प्रभु की करुणा ही है अक्षय, पूण, उदार !

अविच्छिन्न

हे करुणाकर, करुणा सागर !
क्यो इतनी दुबलताओ का
दीप क्षुब्ध गृह मानव अंतर !
दैन्य पराभव आशका की
छाया से पीडित, दुख जजर !
चौर हृदय के तम का गह्वर
स्वप्न स्वप्न जो आते बाहर
गाते वे किस ज्योति प्रीति के
मंगल गीत प्रतीति रस मुखर ?

तुम अपनी आभा में छिपकर
दुबल मनुज बने क्यो कातर !
यदि अनंत कुछ इस जग में
वह मानव का दारिद्र्य भयकर
अखिल ज्ञान सकल्प मनोबल !
पलक भारते होते ओभल,
केवल रह जाता अथाह नैराश्य
क्षोभ, सघष निरंतर !

देव पूण निज रूपो में स्थित,
पशु प्रसन्न जीवन में सीमित,
मानव की सीमा अशांत
छूने असीम के छोर अनंदवर !
रूप ज्योति का ही न यह तमस ?
कूप वारि सागर का अम्भस
यह उस जग का अघकार रे
जिसमें तारा चंद्र दिवाकर !

अन्तर्वाणी

नि स्वर वाणी,
नीरव मम कहानी !
अन्तर्वाणी !
नवजीवन सौंदर्य में ढलो,
सृजन व्यथा गाम्भीर्य में गलो,
चिर अकल्प बन विह्वसो हे
जीवन कल्याणी,
नि स्वर वाणी !

व्यथा व्यथा
रे जगत की प्रथा,
जीवन क्या
व्यथा !

व्यथा भयित हो,
 ज्ञान प्रयित हो,—
 सजल सफल, रस सबल बनो हे
 उर की रानी,
 नि स्वर वाणी ।

व्यथा हृदय मे
 प्रथर पर हँसी
 दादल मे
 शशि रेख हो लसी ।
 प्रीति प्राण म
 प्रमर हो बसी,
 गीत मुग्ध हो जग के प्राणी,
 नि स्वर वाणी ।

मुक्ति बन्धन

क्यों तुमने निज गीत विहग की
 दिया न जग का दाना पानी,
 भ्राज भ्रात भ्रन्तर से उसके
 उठती करुणा वातर वाणी ।
 शोभा के स्वणिम पिजर म
 उसके प्राणो को बंदी कर
 तुमने ज्यो उसके जीवन की
 जीव मुक्ति ली पल भर म हूर ।

नीड बनाता वह डाली पर,
 फिरता भ्रांगन मे कलरव भर,
 उसे प्रीति के गीत सिल्लाने
 दग्ध कर दिया तुमने भ्रन्तर ।
 उड़ता होता क्या न गगन मे ?
 चुगता होता दाने भू पर ।
 अपना उसे बनाने तुमने,
 लिये जीव के पख ही कुतर ।
 क्यों तुमने निज गीत विहग की
 दिमा न भू का दाना पानी,
 उसके भ्रात हृदय से फिर-फिर
 उठती मुख की वातर वाणी ।

मातृ चेतना

चूम ज्योति प्रीति की रजत मेघ,
 भरती धाभा स्मिति मानस मे,
 चेतना रदिम तुम बरसाती
 शत तडित् अचि भर नस - नस मे !

तुम उषा, तूलि की ज्वाला से
 रंग देती जग के तम भ्रम को,
 वह प्रतिभा, स्वर्णकित करती
 जो ससृति के विकसित क्रम को ।

तुम सृजन शक्ति, जो ज्योति चरण धर
 रजत बनाती रज कण को,
 जड मे जीवन, जीवन मे मन,
 मन में सँवारती स्वमन को ।
 तुम जननि, प्रीति की स्रोतस्विनि,
 तुम दिव्य चेतना, दिव्य मना,
 तुम स्वर्ण किरण की निभरिणी,
 आभा देही, आभा बसना ।
 मुख पर हिरण्यमय भ्रवगुण्ठन,
 भ्रपित तुमको प्राणो का मन,
 स्वीकृत हो तुमको पारस मणि,
 स्वर्णिम हो मेरे जीवन क्षण ।

मातृ शक्ति

दिव्याने,
 दिव्यमने,
 भव जीवन पूण बने ।
 दिव्याने ?

आभा सर
 लोचन बर
 स्नेह सुधा सागर ।
 स्वर्ग का प्रकाश
 हास
 करता उर तम विनाश,
 किरणें बरसाकर !
 भयभजने,
 जनरजने ।

तुम्ही भक्ति
 तुम्ही शक्ति
 ज्ञान प्रपित सदनुरक्ति ।
 चिर पावन
 सजन चरण,
 भ्रपित तन
 मन जीवन ।

हृदयासने,
 श्री - बसने ।

प्रणाम

श्री भरविद, सभक्ति प्रणाम !
स्वर्मानस के ज्योति सरसिज,
दिव्य जगत जीवन के वर द्विज,
चिदानन्द के स्वर्णिम मनसिज,
ज्योति धाम,
सजान प्रणाम !

विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रवाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकम प्रणाम !

दिव्य तुम्हारा परम तपोबल
अमृत ज्योति से भर दे भूतल,
सफल मनोरथ सृष्टि हो सकल,
श्री ललाम,
निष्काम प्रणाम !

निर्भर

तुम, करो हे निर्भर
प्राणो के स्वर,
करो हे निर्भर !
चिर भ्रगोचर
नील शिखर,
मीन शिखर

तुम प्रशस्त मुक्त मुखर,—
करो घरा पर
भरो घरा पर
नव प्रभात, स्वर्ग स्मात,
सद्य सुघर !
करो हे निर्भर,
प्राणो के स्वर,
करो हे निर्भर !

ज्योति स्तम्भ तुल्य उतर
जग मे नव जीवन भर
उर मे सौंदर्य अमर,
स्वर्ण ज्वार से निमर
करो घरा पर
भरो घरा पर

तप पूत नवोदभूत
 चेतना वर !
 भरो हे निर्भर !

ज्योति भर

बरसो ज्योति भर है,
 मेरे भीतर बाहर,
 जग के तम से निखर निखर
 बरसो मू जीवन ईश्वर !
 भरते मोती के दात निर्भर
 शैल शिखर से भर-भर,
 फूटें मेरे प्राणों से वह
 दिव्य चेतना के स्वर !

तन मन के जड बंधन टूटें
 जीवन रस के निर्भर छूटें,
 प्राणो का स्वर्णम मधु सूटें
 मुग्ध निखिल नारी नर !
 विघ्नो के गिरि श्रृंग गिरें
 चिर मुक्त सजन आनंद भरे,
 फिर नव जीवन सौंदर्य भरे
 जग के सरिता सर सागर !
 बरसो जीवन ज्योति भर है
 दिव्य चेतना की सावन भर,
 स्वर्ण काल के कुसुमित अक्षर
 लिख पुलकित वसुधा पर !

प्रीति निर्भर

यहाँ तो भरते निर्भर
 स्वर्ण किरणों के निर्भर,
 स्वर्ण सुषमा के निर्भर
 निस्तल हृदय गुहा में
 तीरव प्राणों के स्वर !
 ज्ञान की कांति से भरे
 भक्ति की शक्ति से भरे,
 गहन श्रद्धा प्रतीति के
 स्वर्णम जल में तिरते
 सतत सत्य शिव सुंदर !
 अश्रु मज्जित जीवन मुख,
 स्वप्न रजित रे मुख - दुख,
 रहस आनंद तरंगित
 सहज उच्छ्वसित हृदय सरोवर !

गान मे भरा निवेदन
 प्राण मे भरा समपण,
 ध्यान मे प्रिय के दशन,
 प्रिय ही प्रिय रे व्याप्त
 महनिशि भीतर बाहर !

यहाँ तो भरते निभर
 स्वर्ण के सी-सी निभर,
 स्वर्ण शोभा के निभर,—

उमड - उमड उठता
 प्रतीति के सुख से भरतर !

अन्तर्लोक

यह वह नव लोक
 जहाँ भरा रे प्रशोक
 सूक्ष्म चिदालोक !
 शोभा के नव पल्लव,
 भरता नभ से मधुरव,
 शाश्वत का पा अनुभव
 मिटता उर शोक,
 स्वर्ण शांति प्रोक !

रूप रेत जग की लय
 बनती वर देवालय,
 श्रद्धा म विवसित भय,
 भक्ति मधुर सुख दुख द्वय !
 बनता सशय
 स्वत विश्वास, नहीं रोक,
 कांति लो विलोक !
 यह वह वर लोक
 हृदय म उदय प्रशोक,
 सूक्ष्म चिदालोक !
 स्वर्ण शांति प्रोक !

स्वर्ग अप्सरी

सरोवर जल मे स्वर्ण निरण रे
 तिरती ज्वलित वण घन !
 अतल से हँसी उमड कर
 ससी लहरों पर चंचल
 तीर-सी घँसी निरण वह
 ज्योति बसी प्राणो मे निस्तल !

उठ रहे रश्मि पल कण
 जगमगाये जीवन क्षण !
 सजल मानस मे मेरे
 घप्सरी कसे एरे,
 स्वग से गयी उतर
 कब जाने तिर भीतर ही भीतर !
 आज शोभा शोभा जल
 ज्योति मे उठा प्रखिल जल,
 सहज शोभा ही का मुख
 लोट रहा लहरो मे प्रतिपल !
 जागती भावो मे छवि,
 गा रहा प्राणो म कवि,
 चेतना मे कोमल
 आलोक पिघल
 ज्यो स्वत गया ढल !
 हृदय सरसी के जल कण
 सकल रे स्वण वरण घन,
 ज्योति ही ज्योति अतल जल,
 डूब गये सब जम मरण क्षण !

चित्रकरी

जीवन चित्रकरी ह
 सृजन आनन्द परी हे,
 चित्रपट रंगो घरा पर
 स्वण की किरण तूलि पर
 नवल जीवन सौदय भरो
 पतझर मे
 रूप रग स्वर !
 सूक्ष्म दशन से प्रेरित
 रचो जग जीवन कुसुमित
 मधुर मुख मानवता का
 स्वग ज्योति से
 रहे सहज स्मित !

जीवन चित्रकरी हे
 सृजन सौ दय परी हे,
 लो गये भेदो मे जन
 ब्रह्म मे सुप्त भव परम
 प्रेम विश्वास शीय से
 नव आशा से भर दो जल मन !

अरुण अनुराग रंगो घन
 शांति के शुभ्र हों वसन,

हरित रंग शक्ति, पीत रंग भक्ति,
ज्ञान का नील हो गगन ।

जीवन चित्रकारी है,
सजन ऐश्वर्य परी है,
देह सौंदर्य गठित हो,
प्राण आनंद सरित हो,
दृष्टि नव स्वप्न जडित हो
स्वप्न चेतना से जग जीवन
हो प्रालोकित ।

अन्तर्विकास

विभा, विभा,
जगत ज्योति तमस द्विभा ।
भरता तम का बादल
इन्द्रधनुष रंग में ढल
घोभल हंस इन्द्रधनुष
केवल फिर चिर उज्ज्वल
विभा ।

मनस रूप भाव द्विभा ।
इन्द्रियाँ स्वरूप जडित,
रूप भाव बुद्धि जनित,
भाव दुःख सुख कल्पित,
ज्ञान भक्ति में विकसित,
विभा ।

जीवन भव सृजन द्विभा ।
सजन शील जग विकास,
जड जीवन मनोभास,
आत्माहम्, परे मुक्ति,
स्वप्न चेतना प्रकाश,
विभा ।
जन्म मरण मात्र द्विभा ।

चेतन

गगन
भवनि

मे
मे
इन्द्रधनुष,
इन्द्रधनुष ?

नयन मे दृष्टि किरण,
श्रवण मे शब्द गगन
हृदय के स्तर - स्तर मे
उदित वह दिव्य वपुष !

अचित वा चिर जहाँ तम,
 दुरित जडता मति भ्रम,
 जगत जीवन भ्रमा मे
 सुवित वह ज्योति पुरुष !
 तमस मे गिर न रंगा,
 नीद से पुन जगा,
 मरण के गुण्डन मे
 प्रकट वह चिर भ्रवलुप !

तपो मे इन्द्रधनुष,
 क्षणो मे इन्द्रधनुष,
 स्पश पा चेतन का
 जग उठे शप्त नहुप !

मृत्युजय

ईश्वर को मरने दो हे, मरने दो,
 यह फिर जी उटडेगा, ईश्वर को मरने दो !
 वह क्षण - क्षण मरता, जी उठता,
 ईश्वर को नित नव स्वरूप धरने दो !

शत रूपो मे, शत नामो मे, शत देशो मे,
 शत सहस्रबल होकर उसे सजन करने दो,
 दान अनुभव के विजय पराजय, जम मरण,
 औ' हानि-लाभ की लहरो मे उसको तरने दो !
 ईश्वर को मरने दो हे, फिर फिर मरने दो !

दूर नहीं वह तन से, मन से या जीवन से,
 भयवा रे जनगण से !

द्वेष क्लह सग्राम बीच वह,
 अघकार से औ' प्रवाश से शक्ति खीच वह
 पलता, बढता, विकसित होता अठरह
 अपने दिव्य नियम से !

दूर नहीं वह तन से, मन से जीवन से
 भयवा जनगण से !

एक दृष्टि स, एक रूप मे, देख रहे हम
 इस भूमा को, जग को औ' जगती के जीवा को निश्चय,
 इसमे दुख मुख जरा मरण हैं, जड चेतन
 सघप शक्ति,—यह र द्वन्द्वो का आशय !

परम दृष्टि से, परम रूप मे यह है ईश्वर,
 अजर अमर औ' एक अनेक, सवगत, अक्षर,
 व्यक्ति विश्व जड स्थूल सूक्ष्मतर !

स प्रत्यगान् शुभ्रमवायमन्नगम
 अश्नाविर शुद्धमपापविद्धम,
 कविमनीषी परिभू स्वयम्भू—पूण परात्पर !

मरने दो तब ईश्वर को मरने दो है
 वह जो उठठा, ईश्वर को मरने दो।
 वह फिर - फिर मरता, जो उठता,
 ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो।

लक्ष्मण

विश्व श्याम जीवन के जलघर,
 राम प्रणम्य, राम हैं ईश्वर।
 लक्ष्मण निमल स्नेह सरोवर
 करुणा सागर स भी सुंदर।

सीता के चेतना जागरण
 राम हिमालय से चिर पावन,
 मेरे मन के मानव लक्ष्मण
 ईश्वरत्व भी जिह समपण।

धीर वीर अपने पर निमर
 भुक्ता ग्रह धनु, घर सेवा शर,
 कब से भू पर विचर रहे वे
 लक्ष्मण, सच्चे भ्राता, सहचर।

युग युग से चिर असि व्रत चारी,
 जग जीवन विघ्नो के हारी
 जन सेवा उनकी प्रिय नारी
 वह ऊमिला, हृदय को ध्यारी।

सधिर वेग से कम्पित थर थर
 पकड़ ऊमिला का पल्लव कर
 बोले, प्रिये, विदा दो हँसकर
 सग राम के जाता अनुचर।'

चौदह बरस रहे वह बाहर
 बिछुड़े नहीं प्रिया स क्षण भर
 सजग ऊमिला थी उर भीतर
 मानस की - सी ऊमि निरन्तर।

स्नेह ऊमिला का चिर निश्छल
 नहीं जानता विरह मिलन पल,
 वह |बह वह अन्तर मे अविरल
 बनता रहता सेवा मगल।

वह सवा कतव्य नहीं है,
 वह भीतर स स्वत वही है
 हादिकता की सरित रही है
 जिससे निश्चित हरित मही है।

सहज सलज्ज सुशील स्नेहमय,
 जन - जन के साथी, चिर सहृदय,
 मुक्त हृदय, विनयी, प्रति निभय,
 जम - जम का हो ज्यो परिचय,
 घाते वे सम्मुख प्रसन मन
 भू पर नत भानद के गगन,—
 बरस गया जिसका ममत्व धन,
 गोर चाँदनी - सा चेतन तन !

एस भू के मानव सदमण
 कभी गा सबू उनका जीवन,
 छू जिनके सेवा रत पद तल
 बिछ जाते पय शूल फूल बन !

राम पतित पावन, दुख मोचन,
 सदमण भव सुख दुख मे शोभन !
 वे सवज्ञ, सवगत, गोपन,
 भान मुक्त थे, पद नत सोचन !

छाया दर्पण

यह मेरा दर्पण चिर मोहित !
 जीवन के गोपन रहस्य सब
 इसमे होते शब्द तरंगित !

कितने स्वर्गिक स्वप्न शिखर भ्रौ'
 माया की घाटियाँ मनोरम,
 इसमे जगते इन्द्रधनुष - से
 कितने रंगो के प्रकाश तम !

जो कुछ होता सिद्ध जगत मे,
 मन मे जिसका उठता उपक्रम,
 जादू के दर्पण मे भविदित
 घटना वह हो उठती चित्रित !

नगे भूखो के क्रन्दन पर
 हसता इसमे निमम शोषण,
 घादशों के सौघ बिखरते
 खडे जीण जन मन मे मोहन !

ऋतुत इसमे मानव घात्मा
 उर - उर मे जो बरती घोषण,
 इस दर्पण मे युग जीवन की
 छाया गहरी पडी कलकित !

दीख रहा उगता इसमे नव
 मानव भावी का स्मित भ्रानन,

मानव आत्मा जब धरती पर
विचरेगी घर ज्योति प्रिय चरण ।

डूबेंगे नव मानवता मे
देश जाति गत कटु सघपण,
पाश मुक्त होगी यह वसुधा
मानव श्रम से बन मनुजोचित ।

कौन युवक युवती, मानव की
घणित विवशताओं से पीडित,
मानवता के हित निज जीवन
प्राण करेगी सुख से धरित ।

(बहिरतर के दैय दुख स
अगणित तन मन रे परितापित ।)
यह माया का दपण उनके
गौरव से होगा स्वर्णकित ।

छायाभा

छाया प्रकाश जग जीवन का
बन जाता स्वप्न मधुर सगीत,
इस घने कुहासे के भीतर
दिप जाते तारे इडु पीत ।

देखते देखते धा जाता,
मन पा जाता
कुछ जग के जगमग रूप नाम,
रहते - रहते कुछ छा जाना,
उर को भाता
जीवन सौदय अमर ललाम ।

प्रिय यहाँ प्रीति
स्वप्नो मे उर बाँधे रहती,
स्वर्णम प्रतीति
हंस हंसकर सब सुख दुख सहती ।

अनिवार वामना
नित अबाध अमना बहती,
चिर आराधना
विपद मे बाँह सदा गहती ।

जड रीति नीतियाँ
जो युग कथा विविध बहती,
भीतियाँ
जागते सोत तन मन को दहती ।

क्या नहीं यहाँ ? छाया प्रकाश की ससति मे ।
 नित जीवन मरण बिछुडते मिलते भव गति मे ।
 जानी घ्यानी कहते, प्रकाश, शाश्वत प्रकाश,
 अज्ञानी मानी, छाया माया का विलास ।

यदि छाया, यह किसकी छाया ?
 आभा, छाया जग क्यों आया ?

मुझको लगता
 मन मे जगता,
 यह छायाभा है अविच्छिन्न,
 यह आँखमिचोनी चिर सुंदर,
 सुख-दुख के सुरघनु रंगी की
 यह स्वप्न सृष्टि अनैय, अमर ।

आह्वान

बरसो हे घन !
 निष्फल है यह नीरव गजन,
 चंचल विद्युत् प्रतिभा के क्षण,
 बरसो उबर जीवन के वण,
 हाथ अश्रु की झड से धो दो
 मेरा मनोविपाद गगन ।

बरसो हे घन !

हँसू कि राऊँ नहीं जानता,
 मन कुछ माने नहीं मानता,
 मैं जीवन हठ नहीं ठानता
 होती जो श्रद्धा न गहन,
 बरसो हे घन !

शशि मुख प्राणित नील गगन था,
 भीतर स आलोकित मन था,
 उर का प्रति स्पन्दन चेतन था,
 तुम थे यदि था विरह मिलन,
 बरसो हे घन !

अब भीतर सशय का तम है,
 बाहर मगतण्या का भ्रम है,
 क्या यह नव जीवन उपक्रम है,
 हांगी पुन शिला चेतन ?
 बरसो हे घन !

आशा का प्लावन घन बरसो,
 नव सौंदर्य प्रेम बन सरसो,
 प्राणो म प्रतीति बन हरसो,
 अमर चेतना बन नूतन,
 बरसो हे घन !

परिराति

स्वप्न समान बहा रे यौवन
पलकी म मँडरा क्षण !
वध न सका जीवन बाँहो मे,
घँट न सका पायिव चाहो मे,
लुक छिप प्राणो की छाँहो मे
व्यथ खो गया वह धन,
क्षण स्वप्नो का यौवन ।

इंद्र - धनुष का बादल सुंदर
लीन हो गया नभ म उडकर,
गरजा बरसा नहीं धरा पर,
विद्युत धूम मरुत धन,
हास अश्रु का यौवन ।

विरह मिलन का प्रणय न भाया,
अबला उर म नहीं समाया,
भीतर बाहर ऊपर छाया
नव्य चेतना धन बन,
धूप छाँह पट यौवन ।

आशा और निराशा आयी
सोरभ मधु पी मति अलसायी
सत्य बनी फिर फिर परछाई
तडित चकित उत्थान पतन,
अनुभव रजित यौवन ।

अब ऊपा, शशि मुख पिक बूजन,
स्मिति आतप मजरित प्राण मन
जीवन स्पन्दन, जीवन दशन,
इस असीम सौंदर्य सृजन को
आत्म समपण ।

अचिर जगत मे व्याप्त चिरतन,
ज्ञान तरुण अब यौवन ।

चौथी मूल

'मूछे भजन न होय गुपाला,
यह कबीर के पद की टेक,
देह की है मूल एक ।—

कामिनी की चाह, ममथ दाह
तन को हैं तपात
नित लुभाते विषय भोग धनक,

चाहते ऐश्वय सुख जन,
 चाहते स्त्री पुत्र मू धन,
 चाहते चिर प्रणय का अभिषेक ।
 देह की है मूल एक ।

दूसरी रे मूल मन की ।
 चाहता मन आत्म गौरव,
 चाहता मन कीर्ति सौरभ,
 ज्ञान मयन, नीति दशन,
 मान पद अधिकार पूजन ।
 मन कला विज्ञान द्वारा
 खोलता नित ग्रथियाँ जीवन मरण की ।
 दूसरी यह मूल मन की ।

तीसरी रे मूल आत्मा की गहन ।
 इन्द्रियो की देह से ज्यो है परे मन,
 मनोजग से परे त्यो आत्मा चिरतन,
 जहाँ मुक्ति विराजती
 श्री' डूब जाता हृदय क्रन्दन ।
 वहाँ सत् का वास रहता,
 वहाँ चित का लास रहता,
 वहाँ चिर उल्लास रहता,
 यह बताता योग दशन ।

किन्तु ऊपर हो कि भीतर
 मनोगोचर या भ्रमोचर,
 क्या नहीं कोई कहीं ऐसा भ्रमत घन
 जो घरा पर बरस भर दे भव्य जीवन ?
 जाति वर्गों में निखर जन
 भ्रमर प्रीति प्रतीति में बंध
 पुण्य जीवन करें यापन,
 श्री' घरा हो ज्योति पावन ।

अन्तिम पैगम्बर

दूर-दूर तक केवल सिकता, मृत्यु नास्ति, सूनापन । —
 जहाँ हिस्र बबर घरबो का रण जजर था जीवन ।
 उष्मा भूभा बरसाते थे अग्नि बालुका के वण,
 उस मरुथल में आप ज्योति निभर से उतरे पावन ।

दग जातियो में विभक्त बंदू श्री शेष निरंतर
 रक्तधार में रेंगते रहते थे रती कट - भरकर ।
 म द धीर अँटो की गति से प्रेरित प्रिय छन्दो पर
 गीत गूथते गुनगुन जन, निजन को स्वप्ना से भर ।

वहाँ उच्च कुल में जनमे तुम दीन कुरेशी के घर,
 बने गडरिये, तुम्हें जान प्रभु भेड नवाती थी सर ।

इस उठती थी हरित द्रुव मरु में प्रिय पदतल छूजर,
प्रथित खादिजा के स्वामी तुम बने तरुण चिर सुदर ।

छोड़ विभव घर द्वार एक दिन प्रति उद्वलित भ्र
हिरा शैल पर चले गये तुम प्रभु की आज्ञा सिर ध
दिव्य प्रेरणा स निःसृत हो जहाँ ज्योति विगलित स्व
जगी ईश वाणी कुरान, चिर तप पूत उर भीतर

घेर तीन सी साठ बुतो स वावा को, प्रति वत्सर
भेज कारवाँ करत ये व्यापार कुरेश घनेश्वर,
उस मक्का की जन्मभूमि में, निर्वासित भी होकर,
किया प्रतिष्ठित फिर ने तुमने अब्राहम वा ईश्वर ।

ज्योति शब्द, विद्युत भ्रसि लेकर तुम अन्तिम पैगम्बर
ईश्वरीय जन सत्ता स्थापित करने आय मू पर ।
नवी, दूरदर्शी, शासक, नीतिज्ञ, सय नायक बर,
धम केतु विश्वास सेतु तुम पर जन हुए निछावर ।

‘भल्ला एक मात्र ईश्वर है और रसूल मोहम्मद
घोषित तुमने किया, तडित भ्रसि चमका, मिटा अहम्मद ।
ईश्वर पर विश्वास, प्राथना दान—सत की सम्पद
शान्ति धाम इस्लाम, जीव प्रति प्रेम, स्वग जीवन प्रद ।

जाति व्यथ है, सब समान है मनुज, ईश के अनुचर
अविश्वास औ’ यग भेद स है जिहाद श्रेयस्वर ।
दुबल मानव, पर रहीम ईश्वर चिर करणा सागर
ईश्वरीय एकता चाहता है इस्लाम घरा पर ।

प्रवृत्ति जीव ही को जीवन की मान इकाई निश्चित
प्राणो का विश्वास पय वर तुमने प्रभु का निमित्त,
व्यक्ति चेतना के बदले कर जाति चेतना विकसित
जीवन सुख का स्वग किया अतरतम नभ म स्थापित ।

आत्मा का विश्लेषण कर या दशन वा सश्लेषण,
भाव बुद्धि के सोपानो म बिलमाये न हृदय मन,
कम प्रेरणा स्फुरित शब्द स जन मन का वर शासन
ऊँच गमन के बदले समतल गमन बताया साधन ।

स्वग दूत जवरील तुम्हारा बन मानस पय दशक
तुम्हे सुभाता रहा माग जन मगल का निष्पण्टक,
सर्का वादो और बुतो के दासी को, जन रक्षक
प्राणो का जीवन पथ तुमने दिखलाया आकषक ।

एक रात म मत मरु को कर तुमने जीवन चतन
पथवी को ही प्रभु के शब्दो को कर दिया समपण,
‘में भी अय जनो सा हूँ ! वह, रह सबसे साधारण
पावन तुम कर गये घरा का, धम तत्र कर रोपण ।

नरक मे स्वर्ग

(१)

गत युग के जन पशु जीवन का जीता सँडहर
वह छोटा सा राज्य नरक था इस पृथ्वी पर ।
बीडो से रेंगते अपाहिज थे नारी नर,
मूल्य नही था जीवन का बानी बौडी भर !

उस दस युग-युग का मन कर उठता त्रदन
हाय विधाता, यह मानव जीवन सपपण ! ।
जग के चिर परिताप वहाँ भरत थ बट्ट रण,
यह शसता, द्वेष, बलह का था जड प्राण !

भाड फूस के भग्न धरौंदा म लहराकर
हरी भरी गाँवों की धरती उठ ज्यो ऊपर
राज भवन के उच्च शिखर म उठा शास्त्रि कर
इगित करती थी प्रलक्ष्य की घोर निरतर !

उस प्रलक्ष्य मे युग भविष्य जो था घतहित
वह यथाय था जितना, मन मे उतना कल्पित !
बाहर से थी राज्य प्रजा हो रही सगठित,
भीतर से नव मनुष्यत्व गोपन मे विकसित !

(२)

राज महल के पास एक मिट्टी के कच्चे घर मे
रहती थी मालिन की लडकी क्षुधा विदित पुर भर मे ।
मोन कुई सी खिली गाँव के ज्यो निशीथ पोखर मे
वह दशिमुखी सुधा की थी सहचरी हम्म्य भ्रम्वर मे !

नव युवती थी, फूला के मट्टु स्पर्शो स पोषित तन,
सहज बोध के सलज बत पर विकसित सौरभ का मन !
मुग्ध बली वह जग मादन नव मधु सा उसका योवन,
भावो की पल्लडियो पर रजित निसग सम्मोहन !

उसके श्रागन मे आ ऊपा म्वण हास करसाती,
राजकुमारी सुधा द्वार पर खडी नित्य मुसकाती,
दोनो सखियाँ उपवन मे जा फूलो मे मिल जाती
इंद्र चाप के रगो मे ज्यो इंदु रश्मि रिल जाती !

कोमल हृदय सुधा का था चिर विरह गरल से तापित,
जननि जनक की इच्छा से थी प्रणय भावना शासित !
फूली का तन मधुर क्षुधा का मधुप प्रीति से शोषित
राजकुमार अजित की थी वह स्वप्न सगिनी अविजित !

पकजिनी थी क्षुधा, पक मे, खिली दैय के निश्चय,
स्वण किरण थी सुधा घरा की रज पर उतरी सहृदय !
दोनो के प्राणो का परिणय था जन के हित सुखमय
स्वग घरा का मधुर मिलन हो ज्या स्रष्टा का आशय !

दोनो सखियाँ मिल गोपन मे करती मम निवेदन,
दोनो की दयनीय दशा बन गयी स्नेह दढ बधन !

जीवा के स्वप्नो का जीवन की स्थितियो स था रण,
 तन - मन की था क्षुधा बढ़ाता इधन बन नव यौवन !
 कितन ऐस युवति युवक है आज नही जा कुण्ठित ?
 जिनकी आशा अभिलाषा सुग स्वप्न नही मू लुण्ठित ।
 भीतर बाहर म निरोध जब बढ़ता है अनपक्षित
 तब युग का सचरण प्रगति दता जीवन को निश्चित ।

(३)

राजभवन ह राजभवन, जन - मन के मोहन,
 युग युग के इतिहास रहे तुम, मू के जीवन !
 ससृति कला विभव के स्वप्नो स तुम शाभन
 पृथ्वी पर थ स्वगिन शोभा के नदन वन ।
 मंदिर सोचना स गवाक्ष के मुग्ध कुवलपित
 मधुर नूपुरो की कलध्वनि स दिशि पल गुजित ।
 नव वसंत के तुम विलास थ शास्वत कुसुमित,
 मू मण्डल की विद्या की आभा स ज्यातित ।
 हाय आज किन तापा शापो स तुम पीडित
 विस्फाटक बन गये धरा के उर के निदित ।
 जनगण के जीवन स तुम न रहे सम्बधित
 जनमता, धन मद, मति जडता म मज्जित ।
 ध्रुव भी चाहो पा सक्त तुम जन - मन पूजन
 जन भगल के लिए करो जो विभव समपण ।
 जन सवा व्रत के चिर व्रती रहो तुम दड पण,
 ससृति ज्ञान कला का करना सीखो पोषण ।
 यत्र तत्र स हो सकत न मनुज परिचालित
 उनके पीछे जब तक हो न चेतना विकसित ।
 प्रजातंत्र के साथ राज्य रह सकते जीवित
 मू विवास क युग नियमा से हो अनुशासित ।

(४)

इबलाब के तुमुल सिधु सा एक रोज हो उठा तरंगित
 वह छोटा सा राज्य क्रुद्ध जनता के आवेशो स निनदित ।
 था अग्रणी क्षुधा के कर म रक्त ध्वजा ज्वाला सी कम्पित,
 काल पडा था, क्षुब्ध प्रजा को था लगान भरना अस्वीकृत ।
 वल प्रयोग था किया राज्य ने, जन मत का कर प्रजा सगठन
 राजभवन को घेर अडी थी सत्त्वो के हित देने जीवन ।
 हाथ क्षुधा का पकडे था श्रम, उसका प्रिय साथी, प्रमी जन
 द्वेष शिखा का शलभ अजित था देख रहा उनको सरोप मन ।
 देख रही थी सुधा खोल विचित अत पुर का वातायन
 उस निदित था सोदर क मन म जो था चल रहा इधर रण ।
 दोना सखियो के नयनो ने मिलकर मौन किया सम्भाषण,
 दोना के उर म था आवुल स्प दन, आँखो म आँसू धन ।
 हार गये थ भूप मनाकर, बात प्रजा ने एक न मानी
 सह सकती थी, सच है जनता और न शासन की मनमानी ।

छोट भार सब राजकुंवर पर ध निश्चित भूपति अभिमानी,
 युपित अजित ने लीर दमन करने की हठ निज मन मे ठानी ।
 पा सकेत इधर सीता न, जो थी लखी सशस्त्र घेरकर,
 अग्नि दृष्टि कर दी, जनगण ये मृत्यु काण्ड के लिए न तत्पर ।
 प्रबल प्रमज्जन से सगव ज्यो मालोडित हो उठता सागर
 प्रदा गजा की हिल्लोलें उठन गिरने लगी घरा पर ।

तिन घरित्री पीनी थी निज रस म पापित मानव शोणित,
 पूंठ द्वार से निकल सुधा हो गयी भीड मे इधर तिरोहित ।
 लाल ध्वजा का लक्ष्य बना निज, क्रुद्ध अजित ने हा उत्तेजित,
 मृत्यु ज्वाल दी उगल क्षुधा पर, प्रीति बन गयी द्वेष की तडित ।
 'हाय, सुधा । हा, राजकुमारी ।' दशो दिशा ही उठी ज्यो ध्वनित,
 'सुध सखी, प्राणो की प्यारी । वय गिरा यह हम पर निश्चित ।'
 'ओ जन मानस राग हसिनी, तुमने प्राण द्विय जनगण हित,
 वैभव की तज सज हाय, तुम घरा धूलि पर अब चिर निद्रित ।

हलचल प्रन्दन बोलाहल से राजमहल हिल उठा भवानक ।
 दखा सवने सुधा अक मे राजकुमारी सोयी अपलक ।
 अथु अजय सुधा के उसको पहनाते ये स्नेह विजय सक,
 उसने ली थी छीन सखी स रक्त जिह्वध्वज मृत्यु भयानक ।

रोत ये भूपति विस्मृत से, रानी पास पड़ी थी मूर्छित,
 विकृतव्य विमूढ खडा था अजित भवाक विजित, जीवन मृत ।
 नत मस्तक ये नप, घुटनों बल प्रजा प्रणत थी, उभय पराजित,
 प्रीति प्रतीडित हृदय सुधा का था निष्पद प्रजा को अर्पित ।

देख अजित को आत्मघात के हित उचन, जजर, दुख वातर,
 भ्रष्ट क्षुधा ने छीन लिया द्रुत शस्त्र हाय स बह, धिक कायर ।
 साथ नयन उस क्षुब्ध युवक के मुख से निकले सुधा सिकत स्वर
 'सुधा आज से वहिन क्षुधा तुम, अजित विजित, जनगण का अनुचर ।'

क्या मात्र है यह कल्पित, उपचेतन स अतिरजित
 कही नहीं है राजकुमारी सुधा घरा पर जीवित ।
 मनुजोचित विधि से न सम्भ्यता आज हो रही निर्मित,
 संस्कृत रे हम नाम मात्र को, विजयी हममे प्राकृत ।

आज क्षुधा है, शोपित श्रम है, नग्न प्रजा तम पीडित,
 प्रीति रहित है अजित काम, कामना न किंचित् विकसित ।
 अभा नहीं चेतन मानव से मू जीवन मर्यादित,
 अभा प्रकृति की तमस शक्ति से मनुज नियति परिचालित ।

दिवा स्वप्न

मेघो की गुह गुहा-सा गगन,
 चाण्य बिन्दु का सिंधु समीरण ।
 विद्यत नयनो को कर विस्मित
 स्वर्ण रेख करती हेस अकित
 हलकी जल फुहार, तन पुलकित,

स्मृतियों से स्पन्दित मन,
हँसते रुद्र महद्गण !

जग, गधव लोक सा सुन्दर,
जन, विद्याधर यक्ष कि किन्नर,
चपला, सुर भ्रमना नृत्यपर,—
धन से छाया का प्रकाश छन
स्वप्न सृजन करता धन !

ऐसा छाया बादल का जग
हर लेता मन, सहज क्षण सुभग !
भाव प्रभाव उसे देते रँग !
उर मे हँसते इन्द्रधनुष क्षण
सजन शील यह सावन !

सावन

झम झम झम झम मेघ वरसत र सावन के,
छम छम छम गिरती बूँदें तरुओं से छन के !
चम चम बिजली चमक रही रे उर मे धन के,
थम थम दिन के तम म मपने जगते मन के !

ऐसे पागल बादल वरसे नहीं धरा पर,
जल फुहार बौछारें धारें गिरती भर भर !
ध्राँधी हर हर करती, दल ममर, तरु चर् चर,
दिन रजनी ध्रीं पाख बिना तारे शशि दिनकर !

पसो-से रे, फले फँले ताडो के दल,
लम्बी-लम्बी अगुलियाँ हैं, चौड़े करतल !
तड तड पडती धार वारि की उन पर चचल,
टप टप भरती कर भुव से जल बूँदें भलमल !

नाच रहे पागल हो ताली दे-दे चलदल,
झूम झूम सिर नीम हिलाती सुख से विह्वल !
हरसिगार भरते, बेला कलि बढती पल पल,
हंसमुख हरियाली मे खग कुल गाते मगल ?

दादुर टर टर करत, झिल्ली बजती भन भन,
म्याँउ-म्याँउ रे मोर पीउ पिउ चातक के गण !
उडते सोन बलाक भ्राद्र सुख से कर कल्पन,
घुमड घुमड धिर मेघ गगन मे भरत रजन !

वर्षा के प्रिय स्वर उर मे बुनते सम्मोहन,
प्रणयातुर शत कीट विहग करते सुख गामन !
मेघों का कोमल तम दयामल सहसा से छन
मन मे भू की धलस लालसा भरता गोपन !

रिमझिम रिमझिम क्या कुछ कहते बूदो के स्वर,
रोम सिहर उठते, छूते वे भीतर भन्तर !

धाराओं पर धाराएँ भरती धरती पर,
रज के कण कण में तण तण की पुलकावलि भर ।

पकड़ वारि की धार भूलता है मेरा मन,
धाराओं से सब मुझे घेरकर गाओ सावन ।
इन्द्रधनुष के भूले में भूलें मिल सब जन,
फिर फिर आये जीवन में सावन मन भावन ।

ताल कुल

सध्या का गहराया झुटपुट,
भीलो का - सा धरे सिर मुकुट,
हरित चूड़ कुकड़ू कू कुकुट ।

एक टाँग पर तुले, दीघतर,
पास खड़े तुम लगते सुंदर
नारिकेल के हे पादप वर ।

चक्राकार दलो से सकुल
फँलाये तुम करतल वतुल,
मद पवन के सुख से कँप कँप
देते कर मुख ताली थप थप,
धय तुम्हारा उच्च ताल कुल ।

धूमिल नभ के निकट तुम अडे
हाड मात्र भर प्रेत से बडे
मुझे डराते हिला हिला सर
बीस मूड, सी बाह नचाकर ।

अति कठोर रस भरे नारिकेल
मित जीवी फँले थोडे दल ।

देवो की - सी रखते काया
देते नहीं पथिक को छाया ।
अगर न ऊचे होते दादा,
कब का ऊट तुम्हे खा जाता ।

—एक बात, पर लगता प्यारा,
दूर, तरंगित क्षितिज तुम्हारा ।

क्रोटन की टहनी

कच्चे मन सा काच पात्र, जिसमें क्रोटन की टहनी,
ताजे पानी से नित भर, टबुल पर रखती बहनी ।

धागे सी कुछ उममें पतली जड़ें फूट अब धायी,
गिराधार पानी में लटकी दतीं सहज दिखायी ।
तीन पात, छोटे मुफेद सोय चित्रित से जिन पर,
चौथा मुट्ठी खोल, हथेली फैलाने को सुंदर ।

वहन, तुम्हारा बिरवा, मैंन कहा एक दिन हँसकर,
 यो कुछ दिन निजल भी रह सकता है, मात्र हवा पर !
 किन्तु चाहती जो तुम यह बढकर दे आगन उर भर
 तो तुम इसके मूलो का डालो मिट्टी के भीतर !

यह सच है, वह बिरण वरुणियों के पाता प्रिय चुम्बन,
 पर प्रकाश के साथ चाहिए प्राणी को रज का तम !
 पोषे ही क्या, मानव भी यह भू-जीवी नि सशय,
 मम वामना के बिरवे मिट्टी में फलते निश्चय !

नव वधू के प्रति

दुग्ध पीत भ्रमखिली कली सी
 मधुर सुरभि का अतस्तल,
 दीप शिखा मी, स्वण वरा के
 इन्द्र चाप का मुख मण्डन !
 शरद व्याम सी, शशि मुख का
 शाभित लेखा लावण्य नवल,
 गिखर आत-सी, स्वच्छ, सरल
 जा जीवन मे बहता कल - कल !

ऐसी हो तुम, सहज बोध की
 मधुर सृष्टि, सन्नुनित, गहन,
 स्नेह चेतना सूत्र गूधी - सी,
 सोम्य सुधर जैसे हिमकण !
 घुटनो के बल नहीं चली तुम,
 धर प्रतीति के धीर चरण,
 बडी हुई जग के आगन म
 धाम रहा बाँह जीवन !

आती हो तुम, सी सी स्वागत,
 दीपक बन धर की आगो
 श्री साभा सुख स्नह शान्ति की
 मगल किरणों बरसाओ !
 प्रभु का भागीर्वाद तुम्हे, सेंदुर
 सुहाग शाश्वत पाप्मा,
 सगच्छध्व के पुनीत स्वर
 जीवन मे प्रति पग गाओ !

आशका

यदि जीवन सप्राम
 नाम जीवन का,
 भ्रमन भीर विष ही परिणाम
 उदधि मपन वा—

सृजन प्रथा तब प्रगति विकास नहीं है,
वृद्धि और परिणति ही क्या सही है ।

नित्य पूण यह विश्व चिरंतन,
पूण चराचर, मानव तन मन,
अतर्वाह्य पूण चिर पावन ।

केवल जीव वृद्धि पाते हैं,
वे परिणत होते जाते हैं,
जीवन क्षण, जीवन के युग,

जीवन की स्थितियाँ

परिवर्तित परिवर्धित होकर
भव इतिहास बहाते हैं ।
छाया प्रकाश दोनो मिलकर
जीवन को पूण बनाते हैं ।

यदि जैसा सग्राम
नाम जीवन का,

अमृत और विष ही परिणाम
उदधि मयन का,

तब परिणति ही है इतिहास सृजन का,
क्रम विकास अध्यास मात्र रे मन का ।

जन्मभूमि

जननी जन्मभूमि प्रिय अपनी, जो स्वर्गादिवि चिर गरीयसी ।

जिसका गौरव भाल हिमाचल,
स्वर्ण धरा हँसती चिर श्यामल,
ज्योति ग्रथित गंगा यमुना जल
वह जन जन के हृदय में बसी ।

जिसे राम लक्ष्मण और सीता
बना गये पद धूलि पुनीता,
जहाँ कृष्ण ने गापी गीता
बजा अमर प्राणो मे वशी ।

सावित्री राधा सी तारी
उतरी आभा दही प्यारी,
शिला बनी तापस सुकुमारी
जडता बनी चेतना सरसी ।

शांति निनेतन जहाँ तपोवन,
ध्यानावस्थित हो ऋषि मुनि गण
चिद नम मे करते थे विचरण,
जहाँ सत्य की विरणें बरसी ।

भाज युद्ध जजर जग जीवन,
 पुन करेगी मन्त्रोच्चारण
 वह वसुधैव कुटुम्बकम्,
 उसके मुख पर ज्योति नव लसी ।

जननी जन्मभूमि प्रिय भवती, जो स्वर्गादपि है गरीयसी ।

युगागम

भाज रे युगो का सगुण
 विगत सम्यता का गुण,
 जन - जन मे, मन - मन मे
 हो रहा नव विकसित,
 नव्य चेतना सजित ।

भा रहा नव नूतन
 जानता जग का मन,
 स्वर्ण हास्यमय नूतन
 भावी मानव जीवन,—
 प्रथमन ।

जा रहा पुराचीन
 तजन कर, गजन कर,
 भा रहा चिर नवीन
 वषण कर, सजन कर !

तमस का घन अपार,
 सूखी सृष्टि वृष्टि धार,
 गरजता, — महकार
 हृदय भार ।

है अभिनव, भू पर उतर,
 रज के तम को छूकर
 स्वर्ण हास्य से दो भर
 भू मन को कर भास्वर ।

सजन करो नव जीवन,
 नव कर्म, वचन, मन ।

गणपति उत्सव

कितना रूप, राग रग,
 कुसुमित जीवन उमग । —
 भय सम्य भी जग मे
 मिलती है प्रति पग मे ।

श्री गणपति का उत्सव,
 नारी नर का मधुरव ।

श्रद्धा विश्वास का
 आशा उल्लास का
 दृश्य एक अभिनव ।

युवक नव युवती सुधर !
 नयनो से रहे निखर
 हाव भाव सुरचि चाव
 स्वाभिमान, भपनाव,
 सयम सम्भ्रम के कर ।

कुसमय ! विप्लव का डर !
 भाये यदि जो भवसर
 तो कोई हो तत्पर
 कह सकेगा वचन प्रीत,

'भारो मत, मृत्यु भीत,
 पशु हैं रहते लडकर ।
 'मानव जीवन पुनीत,
 मृत्यु नहीं हार जीत,
 रहना सबको भू पर ।'

'कह सकेगा साहस भर
 देह का नहीं यह रण,
 मन का यह सघषण ।

'घामो, स्थितियो से लडे
 साथ साथ आगे वडे,
 भेद मिटेंगे निश्चय
 ऐक्य की होगी जय ।

'जीवन का यह विकास,
 आ रह मनुज पास ।
 उठता उर स ख है,—
 एक हम मानव हैं
 भिन्न हम दानव हैं ।'

स्वप्न-निर्वल

'तुम निबल हा, सबसे निबल !'

बोला माघव !

'मैं निबल हूँ जन युग मे निबल का सम्बल,
 बोला यादव,

'यह युग की चेतना आज जा मुझमें बहती,
 बुद्धिमत्ता, प्रति प्राणमत्ता यह सब कुछ सहती ।
 एक घोर युग का वैभव है, एक घोर युग तपणा,
 एक घोर युग दुःगासन भी एक घोर युग कृष्णा ।

'देहमना मानव मुरभाता,
घातममना मानव दुख पाता,
इस युग में प्राणों का जीवन
बहुता जाता, बहुता जाता !'

'क्या है यह प्राणों का जीवन ?
कैसा यह युग दशन ?

बोला माधव,

प्रिय यादव,

'यह भेद बताओ गोपन !'

'यह जीवनी शक्ति का सागर
उद्वेलित जो प्रतिष्ण,

जिसका युग चेतना सदा से
करती आयी मयन !'

बोला यादव,

'प्रिय माधव,

'अर शम्भु चाप का भजन
किया राम ने मुक्त

जीण भादशों से जग जीवन !

बनकर युग चेतना राम फिर

नव युग परिवर्तन में

मध्य युग की नैतिक अस्ति

स्पण्डित करती जन - मन में !

'गत युग की सकीण नीति यह अस्ति धारा का सा पथ,
भाज नहीं चल सकता इस पर भव मानवता का रथ !

'जिसका तुम दुबलता कहते, युग प्राणों का कम्पन,
मुक्त हो रही विश्व चेतना तोड़ युगों के बाधन !'

'प्यारे माधव,

बाला यादव,

'हम दुबल हैं, यह सच है पर युग जीवन में दुबल,
सूक्ष्म शरीरी स्वप्न भाज के हागे कल के सम्बल !'

लोक सत्य

बोला माधव,

'प्यारे यादव,

'जब तक होंगे लोग नहीं अपन सत्वों से परिचित
जन सग्रह बल पर भव सस्कृति ही न सकेगी निर्मित !

'भाज अल्प हैं जीवन जग में धी' असक्य उत्पीडित,
सोह मुष्टि से हमें छीननी होगी सत्ता निश्चित !'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,

'मुझको लगता आज वृत्त मे घूम रहा मानव मन,
भीतिरता के आवरण से रण जजर जग जीवन !
समतल व्यापी दृष्टि मनुज की देत न पाती ऊपर,
देख न पाती भीतर अपने, युग स्थितियों से बाहर !

'नही दीखता मुझे जनो का भूत भ्राति में मगल,
बाह्य क्रांति से प्रबल हृदय मे भ्राति चल रही प्रतिपल !
मध्य वग की वैभय तद्रा के स्वप्नो से जगकर
हमको अभिनव सोच सत्य है स्थापित करना भू पर !

'युग-युग के जीवन से औ' युग जीवन से उत्सर्जित
सूक्ष्म चेतना मे मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित !
आज मनुज को ऊपर उठ औ' भीतर से हो विस्तृत
नभ्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित !'

बोला यादव,
'प्यारे माधव,

'वही सत्य बर सक्ता मानव जीवक का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरतन
जिसमे मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन !

'आज हमे मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख,
मनुष्यत्व मे मज्जित करने युग जीवन के सुख-दुख !
पिघला देगी सौहृ मुष्टि को आत्मा की कीमलता
जन बल से रे कही बडी है मनुष्यत्व की क्षमता !'

सामजस्य

भाव सत्य बोली मुख मटका 'तुम में की सीमा है वचन,
मुझे सुहाता घन सा नभ मे लय हो जाना, खो अपनापन !

ये पापिव सकीर्ण हृदय हैं, मोल तोल ही इनका जीवन,
नही देखते एक धरा है, एक गगन है, एक सभी जन !'

बोली वस्तु सत्य मूह विचका 'मुझे नही भाता यह दर्शन,
भिन देह हैं जहाँ, भिन रुचि भिन स्वभाव, भिन सबके मन !

नही एक मे भरे सभी गुण, द्रुद्र जगत मे हैं नारी नर,
स्नेही द्रोही, मूख चतुर हैं, दीन धनी कुत्सित औ' सुदर !'

आत्म सत्य बोली मुसकाकर, 'मुझे ज्ञात दोनो का कारण,
में दोनो को नही भूलती, दोनो का करती संचालन !'

'पक्ष खोल सपने उड जाते, सत्य न बढ पाता गिन गिन पग
सामजस्य न यदि दोनो मे रखती मैं, क्या चल सकता जग ?'

ग्रामीण

'अच्छा, अच्छा,' बोला श्रीधर,
हाथ जोड़कर, हो मर्माहत,
'तुम शिक्षित, मैं मूल ही सही,
व्यथ बहस, तुम ठीक, मैं गलत।'

'तुम पश्चिम के रंग में रंगे,
मैं हूँ दकियानूषी भारत',
हँसा ठहाका मार मनोहर,
तुम श्री' कटटर पथी? लानत।'
'सूट बूट में सजे धजे तुम
डाल गले फाँसी का फंदा,
तुम्हें कहे जो भारतीय वह,
है दो आखोवाला अघा।'

'अपनी अपनी पथक दृष्टि है,'
दिया शुद्ध श्रीधर ने उत्तर,
'भारतीय ही नहीं, बल्कि मैं
हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर।'
'घोती बुरते चादर में भी
नयी रोशनी के तुम नागर,
मैं बाहर की तडक - भडक में
चमकीली गगा जल गागर।'

'यह सच है कि,' मनोहर बोला,
'तुम उथले पानी के डामर,
मुझको चाहे नागर वह लो
या खारे पानी का सागर।'
'तुमने केवल अघनगे
भारत का गँवई तन देखा है,
श्रीधर सयत स्वर में बोला,
'मैंने उसका मन देखा है।'

भारतीय भूसा पिंजर में
तुम हो मुखर पश्चिमी तोते
नागरिकों के पण्डित घोथे।
तकों वादों के
'मैं मन से ग्रामी का वासी
जो मग तण्णाघा से ऊपर
सहज भ्रातरिक श्रद्धा से
सद विश्वासो पर रहते निमर।'

'जो अदृश्य विश्वास सरणि स
करत जीवन सत्य नित ग्रहण
जो न निराकु सदृश सटके हैं,
भू पर जिनके गडे युग चरण।'

'उस श्रद्धा विश्वास सूत्र में
 बंधा हुआ मैं उनका सहचर
 भारत की मिट्टी में बोये
 जो प्रकाश के बीज हैं धमर ।'

भाजाद

पंगम्बर के एक शिष्य ने
 पूछा, 'हजरत, बंदे को शक
 है भाजाद कहीं तक इन्हीं
 दुनिया में, पाबन्द कहीं तक ?'

'खड़े रहो !' बोले रसूल तब,
 'भच्छा, पैर उठाओ ऊपर,
 'जैसा हुक्म । मुरीद सामने
 खड़ा हो गया एक पैर पर ।

'ठीक, दूसरा पैर उठाओ'
 बोले होंकर नबी फिर तुरत,
 बार बार गिर, कहा शिष्य ने
 'यह तो नामुमकिन है हजरत ।'

'हो भाजाद यहीं तक, कहता
 तुममें एक पैर उठ ऊपर,
 बंधे हुए दुनिया से कहता
 पैर दूसरा झड़ा जमी पर ।'—
 पंगम्बर का था यह उत्तर ।

काले बादल

सुनता हूँ, मैंने भी देखा,
 काले बादल में रहती चाँदी की रेखा ।

काले बादल जाति द्वेष के,
 काले बादल विश्व क्लेश के,
 काले बादल उठते पथ पर
 नव स्वतंत्रता के प्रवेश के ।

सुनता भाया हूँ है देखा
 काले बादल में हँसती चाँदी की रेखा ।

भाज दिशा है घोर भ्रष्टेरी,
 नम में गरज रही रण भेरी,
 चमक रही चपला क्षण-क्षण पर,
 झनक रही भिल्ली भन - भन कर ।

नाच-नाच घ्रांगन में गाते केकी केका
काले बादल में लहरी चांदी की रेखा ।

काल बादल, काले बादल,
मन भय से ही उठता चंचल ।
कौन हृदय में कहता पल पल
मृत्यु आ रही साजे दलबल ।

भाग लग रही, घात चल रहे, विधि का लेखा ।
काले बादल में छिपती चांदी की रेखा ।

मुझे मृत्यु की भीति नहीं है,
पर अनिती से प्रीति नहीं है,
यह मनुजोचित रीति नहीं है,
जन में प्रीति प्रतीत नहीं है ।

दश जातियों का कब होगा
नव मानवता में रे एका,
काले बादल में कल की
सोने की रेखा ।

जाति मन

सौ-सौ बांह लडती हैं, तुम नहीं लड रहे
सौ सौ देह कटती हैं तुम नहीं कट रहे
है चिर मत, चिर जीवित भू जन ।

भ्रम रूढ़ियाँ भडती है, तुम नहीं भड रहे
सूखी टहनी छँटती है, तुम नहीं छँट रहे,
जीवन-मत नव जीवित भू जन ।

जाने से पहिले ही तुम आ गये यहाँ
इस स्वर्ण घरा पर
मरने से पहिले तुमने नव जन्म ले लिया,
घय तुम्हें, हे भावी के नारी नर ।

काट रहे तुम भ्रमकार को,
छाट रहे मृत आदशों को,
डुबा रहे नव चेतनता में
युग मानव के सघर्षों को ।

मुक्त कर रहूँ मृत योनि से
भावी के स्वर्णिम वर्षों को
हाँक रहे तुम जीवन रख, नव मानव बन,
पथ में बरसा, शत आशाओं को,
शत हर्षों को ।

सौ-सौ बाहे, सौ सौ देहे नही कट रही,
 बलि के अज, तुम आज कट रहे,
 युग युग के वैपम्य, जाति मन,
 एवमस्तु, बहिरन्तर जो तुम
 आज छंट रहे ।

क्षण जीवी

रक्त के प्यासे, रक्त के प्यासे !
 सत्य छीनते ये भबला से,
 बच्चो को मारते, बला से !
 रक्त के प्यासे !

मृत प्रेत ये मनो भूमि के
 सदियो से पाले पोसे,
 भ्रँधियाली लालसा गुहा मे
 अघ रुडियो के शोषे ।

मरने और मारने धाये
 मिटते नही एव - दो से,
 ये विनाश के सृजन दूत हैं,
 इनको कोई क्या बोसे !
 रक्त के प्यासे !

यह जडत्व है मन की रज का
 जो कि मत्यु से ही जाता,
 धीरे धीरे धीरे जीवन
 इसको कही बदल पाता !

ऊध्व मनुज ये नही, अघोमुख,
 उलटे इनके जीवन मान,
 अघकार खीचता इहें है,
 गाता रुधिर प्रलय के गान ।

रक्त के प्यासे !

हृदय नही, ये देह लूटते हैं भबला से,
 जाति-पाति से रहित, दुषमुहे
 बच्चो को मारते, बला से !
 रक्त के प्यासे !

×

×

×

ऊध्व मनुज बनना महान है,
 ये प्रनाश की हैं सतान,
 ऊध्व मनुज बनना महान है,
 करना उन्हें आत्म निर्माण ।
 उन्हें अनादि धनत सत्य का
 करना है आदान - प्रदान,

घर प्रतीति ज्वाला हाथो में
करना जीवन का सम्मान ।

उह प्रेम को, सत्य ज्योति को
शलभ - समर्पित करने प्राण
धुल जायें घरती के धब्बे
इनके प्राणों की बरसा से !
सत्य के प्यासे !

मनुष्यत्व

छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति, वग, नय, धर्म के लिए रक्त बहाना,
बबरता को ससृष्टि का बाना पहनाना,—
तो अच्छा ही अगर छोड़ दें
हम हिन्दू मुस्लिम श्री ईसाई कहलाना ।
मानव होकर रह घरा पर,
जाति वण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व में बँधकर ।

नहीं छोड़ सकते रे यदि जन
देश राष्ट्र राज्यों के हित नित युद्ध कराना,
हरित जनाकुल भू पर विष पावक बरसाना,—
तो अच्छा ही अगर छोड़ दें
हम अमरीकन रूसी श्री इंग्लिश कहलाना ।
निखरे भू देशों से ऊपर,
पथवी हो सब मनुजा का घर,
हम उसकी सत्तान बराबर ।

छोड़ नहीं सकते हैं यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वय श्री काम क्लेश के दशय दिखाना,—
तो अच्छा ही अगर छोड़ दें
हम समाज में द्वन्द्व पुरुष स्त्री में बँट जाना ।
स्नेह भुक्त सब रह परस्पर,
हो स्वतंत्र नारी जस नर,
देव द्वार हो मात कलेवर ।

पतिता

रोता हाथ मारकर माघव,
बद्ध पडोसी जो चिर परिचित,
'क्रूर, लुटेरे हत्यारे कर गय
बहु को, नीच, कलकित ।'

‘फूटा करम, धरम भी लूटा !’
 दीदा हिला, रात सब परिजन
 ‘हा भभागिनी, हा कलविनी !’
 सिसव रहे गा गावर पुरजन !

सिसव रही सहमी कोने म
 प्रबला साँसो की - सी डेरी,
 बीस रही घेरे पढासिनो,
 प्राँय चुराती घर की चेरी !

इतने म घर आना बेगव,
 ‘हा बटा !’ तर दारुण राइन
 माथा लेते पीट कुटुम्बी,
 छिन लता सा कँप उठता तन !

‘सब मुन चुवा !’ चीसता बेशव,
 बंद करो यह रोना घोना !
 उठो मासती, लील जायगा
 तुमको घर का काला काना !

‘मन से होते मनुज कलकित,
 रज की देह सदा स दूषित,
 प्रेम पतित पावन है, तुमको
 रहने दूगा मैं न कलकित !’

परकीया

विनत दष्टि हो बाली बरणा, आला मे ये आँसू के घन
 ‘क्या जाने क्या आप कहेंगे, मेरा परकीया का जीवन !’

स्वच्छ सरोवर सा वह मानस, नाल शरद नभ से वे लोचन
 कहते थे वह मम क्या जो उमड रही थी उर मे गोपन !

बोला विनय समझ सकता हूँ, मैं त्यक्ता का मानस नदन,
 पूत पच क्याओ मे ही आप छठी हूँ पातक मोचन !

‘यदपि जवाला सदश आपको अपित कर अपना यौवन घन
 मूल्य चुकाना पडा जम का तोड बाह्य सामाजिक बंधन !’

‘फिर भी लगता मुझे, आपने किया पुण्य जीवन है यापन,
 बतलाती यह मन की आभा, कहता यह गरिमा का आनन !’

‘पति पत्नी का सदाचार भी नहीं मात्र परिणय से पावन
 काम निरत दम्पति जीवन यदि भोग मात्र का परिणय साधन !’

‘प्राणो के जीवन से ऊँचा है समाज का जीवन निश्चय,
 अग लालसा मे सामाजिक सजन शक्ति का होता अपचय !’

‘पकिल जीवन मे पकज भी शोभित आप देह से ऊपर,
 वही सत्य जो आप हृदय से, शेष शून्य जग का आडम्बर !’

‘अत स्वकीया या परकीया जन समाज की है परिभाषा
 काम मुक्त औ प्रीति युक्त होगी मावता, मुझको आशा !’

ध्वजा वन्दना

पहराघा तिरग, पहराघो !
 नाव चतना के जाग्रत ध्वज,
 ज्योति तरंगो म सहराघा !

इन्द्रधनुष - स घन गजन म,
 पौरुष स जग जीवन रण मे,
 जन स्वतन्त्रता के प्राण मे
 विजय शिरा से उठ छहराघो !
 उठत तुम, उठत दृग अपलक,
 स्वाभिमान स उठत मस्तक
 उठत बहु मुज चरण भ्रचानक,
 लोह की दीवार गरजती
 हम त्याग का पथ दिखाया !

तुम्हे दल जन निमय हो,
 धरनी पर नव स्वर्णोदय हो,
 भारत विजय ही विश्व विजय हो,
 जब जब जग मे लोक त्राति हो
 तुम प्रकाश किरणें बरसाओ !
 भगे अविद्या दैय निराशा,
 जगे उच्च जीवन अभिलाषा,
 एक ध्यय हो मूपा भाषा,
 शात शक्ति के धम चक्र तुम
 जग म नित जन मंगल लाषा !

१५ अगस्त १९४७

चिर प्रणम्य यह पुण्य ग्रहन् जय गाघो मुरगण
 भाज भवतरित हुई चेतना मू पर नूतन !
 नव भारत फिर चीर युगो का तिमिर आवरण,
 तरुण अरुण-सा उदित हुआ परिदीप्त कर नूतन !
 सम्य दृष्टा अब विश्व सम्य धरणी का जीवन
 भाज खुले भारत के संग मू के जड बन्धन !
 शात हुआ अब युग-युग का नौतिक नयपण
 मुक्त चेतना भारत की यह कर्ना धारण !
 मात्र मौर लाषा ७ कर्नी म्मम्भ वनाघा
 पावन गगा जन भर मात्र बनस सजाओ !
 नव श्रमोक्त पन्ध के बन्धवार बंधाघा
 जय भारत गाघा म्मत्र जय भारत गाघो !
 उन्नत लगता चट्र क्ना म्मिन मात्र हिनन्द
 चिर समानि के शान उठ हों गम्मु तरार

सहर - सहर पर इन्द्रधनुष ध्वज पहारा चंचल
जय निनाद करता, उठ सागर, मुक्त से विह्वल !

धय भ्राज का मुक्ति दिवस, गांधी जन-मंगल,
भारत सशमी से शोभित फिर भारत दातदल !
तुमुल जयध्वनि करो, महारमा गांधी की जय,
नव भारत के मुक्त सारथी यह नि सशय !
राष्ट्र नायको का हे पुन करो अभिवादन,
जीण जाति मे भरा जिहोन नूतन जीवन !
स्वण शस्य बांधो मू वेणी मे युवती जन,
बनो वय्य प्राचीर राष्ट्र की, वीर युवकगण !
लोह सगठित बने लोन भारत का जीवन,
हो शिक्षित सम्पन्न क्षुधातुर नग्न भग्न जन !
मुक्ति नही पलती दूग जल से हो अभिसिंचित,
सयम तप के रक्त स्वेद से होती पापित !
मुक्ति मांगती कम वचन मन प्राण समपण,
वृद्ध राष्ट्र को, वीर युवकगण, दा निज यौवन !

नव स्वतंत्र भारत हो जग हित ज्योति जागरण,
नव प्रभात मे स्वण स्नात हो मू का प्रांगण !
नव जीवन का वैभव जाग्रत हो जनगण मे,
भारमा का ऐश्वर्य भवतरित मानव मन म !
रक्त सिक्त धरणी का हो दुस्वप्न समापन,
शांति प्रीति सुख का मू स्वग उठे सुर मोहन !
भारत का दासत्व दासता थी मू मन की,
विकसित भ्राज हुई सीमाएँ जग जीवन की !

धय भ्राज का स्वण दिवस, नव लोक जागरण,
नव ससृति भालोक करे जन भारत वितरण !
नव जीवन की ज्वाला से दीपित हो दिशि क्षण,
नव मानवता मे मुकुलित धरती का जीवन !

हृदय तारुण्य

आम्र मजरित, मधुप गुजरित,
गंध समीरण मद सचरित !
प्राणो का पिक बोल उठा फिर
भतर मे कर ज्वाल प्रज्वलित !

डाल - डाल पर दौड रही यह
ज्वाल रग रगो मे कुमुमित,
नस - नस मे कर रुधिर प्रवाहित
उर मे रस वश गीत तरंगित !

तन का यौवन नही हृदय का
यौवन रे यह भ्राज उच्छ्वसित,

फिर जग मे सौंदर्य पल्लवित
 प्राणो मे मधु स्वप्न जागरित ।
 भ्रात्र मजरित, मधुप गुजरित,
 गंध समीरण भ्रम सचरित ।
 प्राणो म पिक बोल उठा फिर
 दिशि-दिशि मे कर ज्वाल प्रज्वलित ।

प्रणय कुज

तुम प्रणय कुज मे जब भायी
 पल्लवित हो उठा मधु यौवन
 मजरित हृदय की भमराई ।
 मलय हुआ मद चंचल
 लहराया सरसी जल,
 झलि गूज उठे, पिक ध्वनि छायी !
 अब वह स्वप्न भ्रगोचर,
 मम व्यथा मयित करती भन्तर,
 प्राणो के दल झर - झर
 करते प्राकुल ममर ।
 चिर विरह मिलन मे भर लायी,
 तुम प्रणय कुज मे जब भायी ।

मर्म कथ

बांध दिये क्यों प्राण
 प्राणो से ।
 तुमने चिर अनजान
 प्राणो से ।
 गोपन रह न सकेगी
 अब यह मम कथा,
 प्राणो की न सकेगी
 बढ़ती विरह व्यथा,
 विवश, फूटते गान,
 प्राणो से ।
 यह विदेह प्राणो का बंधन,
 अतर्ज्वला मे तपता तन ।
 मुग्ध हृदय सौंदर्य सिखा को
 दग्ध कामना करता भ्रमण ।
 नहीं चाहता जो कुछ भी भादान
 प्राणो से ।
 बांध दिये क्यों प्राण
 प्राणो से ।

मर्म व्यथा

प्राणो मे चिर व्यथा बांध दी ।
क्यो चिर दग्ध हृदय को' तुमन
वृथा प्रणय की भ्रमर साथ दी ।
पवत को जल, दारु को भ्रनल,
वारिद को दी, विद्युत चचल,
फूल को सुरभि, सुरभि को विक्ल
उडने की इच्छा भ्रवाध दी ।

हृदय दहन रे हृदय दहन,
प्राणो की व्याकुल व्यथा गहन ।
यह सुलगेगी, होगी न सहन,
चिर स्मृति की द्वास समीर साथ दी ।
प्राण गलेंगे, देह जलेगी,
मम व्यथा की कथा डलेगी,
सोने - सी तप, निखरेयी
प्रेयसि प्रतिमा, भमता भ्रगाध दी ।
प्राणो मे चिर व्यथा बाध दी ।

गोपन

मैं कहता कुछ, रे बात प्रीर ।
जग मे न प्रणय को कही ठीर ।

प्राणो की सुरभि बसी प्राणो मे
बन मधु सिक्त व्यथा,
वह नीरव गोपन मम मधुर
वह सह न सकेगी लोक कथा,

क्यो क्या प्रेम आया जग मे
सिर पर काँटी का धरे भीर ।
मैं कहता कुछ, रे बात प्रीर ।

सौन्दर्य चेतना विरह मूढ,
मधु प्रणय भावना बनो मूक,
रे हूक हृदय मे भरती भ्रव
कोकिल की नव मजरित कूक ।

काले अक्षर का जला प्रेम
लिखते कलियो से सटे भीर ।
मैं कहना कुछ, रे बात प्रीर ।

शरद चांदनी

शरद चांदनी ।
विहँस उठी भ्रनल मौन
नीलिमा उदासिनी ।

भ्राकुल सौरभ समीर
 छल - छल चल सरित नीर,
 हृदय प्रणय से अधीर,
 जीवन उमादिनी !

अश्रु सजल तारक दल
 अपलक दग गिनते पल,
 छेड रही प्राण विकल
 विरह वेणु वादिनी !

जगी कुसुम कलि धर धर
 जगे रोम सिहर सिहर,
 शशि असि सी प्रेमसि स्मृति
 जगी हृदय ह्लादिनी !
 शरद चादनी !

स्वप्न बन्धन

बाँध लिया तुमने प्राणा को फूलों के बन्धन में,
 एक मधुर जीवित आभा सी सिपट गयी तुम मन में !
 बाँध लिया तुमने मुझका स्वप्नों के आलिंगन में !

तन की सी शोभाए सम्मुख चलती फिरती लगती,
 सी - सी रंगों में, भावों में तुम्हें कल्पना रँगती,
 मानसि, तुम सी बार एक ही क्षण में मन में जगती !

तुम्हें स्मरण कर जी उठते यदि स्वप्न, आक उर में छवि,
 तो आश्चर्य प्राण बन जायें गान, हृदय प्रणयी कवि ?
 तुम्हें देखकर स्निग्ध चादनी भी जो बरसावे रवि !

तुम सौरभ सी सहज मधुर वरवस बस जाती मन में,
 पतझर में लाती वसन्त, रस स्रोत विरस जीवन में
 तुम प्राणों में प्रणय, गीत बन जाती उर कम्पन में !

तुम देही हो ? दीपक लौ सी दुबली, कनक छबीली
 मौन मधुरिमा भरी, लाज ही सी साकार लजीली
 तुम नारी हो ? स्वप्न कल्पना सी सुकुमार सजीली ?

तुम्हें देखने शोभा ही ज्या लहरी सी उठ आयी,
 अंग भंगिमा तनिमा बन मूढु देही बीच समायी
 कोमलता कोमल अंगों में पहिले तन घर पायी !

फूल खिल उठे, तुम बसी ही मू को दी दिखलायी
 सुन्दरता वसुधा पर खिल सौ - सौ रंगों में छायी,
 छाया सी ज्योत्स्ना स्रुची, प्रतिछवि सी उपा लजायी !

तुममें जो लावण्य मधुरिमा, जो असीम सम्मोहन,
 तुम पर प्राण निछावर करने पागल हो उठता मन !
 नहीं जानती क्या तुम निज बल, निज अपार आश्चर्य ?

बाध लिया तुमने प्राणों को प्रणय स्वप्न बाधन में,
 तुम जानो, क्या तुमको भाया, मम छिपा क्या मन में।
 इद्रधनुष बनकर हँसती तुम अश्रु वाष्प के धन में।

स्वप्न देही

स्वप्न देही हो, प्रिये, तुम
 देह तनिमा अश्रु धोयी।
 रूप की ली - सी सुनहली
 दीप में तन के सँजोयी।

सेज पर लेटी सुषर
 सौंदर्य छाया - सी मुहायी,
 काम देही स्वप्न - सी
 स्मृति तल्प पर तुम दी दिखायी।

कल्पना की मधुरिमा - सी
 भाव मृदुता में डुबोयी।

देह में मधु देह - सी
 उर में मधुर उर-सी समाकर,
 लिपट प्राणों से गयी तुम
 चेतना सी निपट सुंदर।

प्रेम पलकों पर अकल्पित
 रूप की सी स्वप्न सोयी।

विरल पट से झलक
 ऊमिल झलक करते हृदय मीहित,
 सरित जल में तरती ज्यो
 नील धन छाया तरंगित।

काम वन में प्रणय ने हो
 कामना की बेलि बोयी।

लालसा तम - से तुम्हारे
 कुतलो के जाल में भ्रम
 क्यो न होता प्यार प्रधा
 छत्रि अपार निहार निरुपम।

मम की आकुल तृप्ता तुम
 प्रणय श्वासों में विरोयी।

स्नेह प्रतिमा सी मनोरम
 मम इच्छा से विनिमित्त,
 हृदय धातुदल में सतत तुम
 झूलती अभिलाष स्पन्दित।

सार तत्त्वों की बनी तुम
 देह भूतो बीच सोयी।

मानसी

यह पुरुष नारी का रूपक है। नेपथ्य में गीत बाद्य दृश्या के अनुरूप वेश वियास पिक मिलन भोग का, पपीहा विरह त्याग का प्रतीक है। कुल नारियों शालीन रंगों के वस्त्रों में, भिक्षु भिक्षुणियाँ केसरी और गेरुवे लबादों में, तथा और मोड़नियों में, विविध प्राणों के सुरग सुरचिपूण परिधानों में नाचती हैं। प्राधुनिकाएँ विविध प्राणों के निर्माता कृपक श्रमिक तथा मध्य उच्च वर्गों अन्तिम दृश्यों में भविष्य के निर्माता कृपक तथा मध्य उच्च वर्गों के युवक सफेद और छाकी छादी में, एवं सस्कृति की सन्देश चाहिकाएँ नव युवतियाँ रंगीन रेशमी वस्त्रों में, नरय नाट्य एवं अभिनय करती हैं। जहाँ अकेले पिक चातक तथा युवक युवती की आत्मा के गीत हैं, वहाँ प्रदशन की सुविधानुसार अन्य युवक-युवतियाँ भी सहायक हो सकती हैं।

प्रथम दृश्य

(१)

युवक

पिक, गाम्भी !
नव जीवन के चारण बन
नव प्रणय क्या बरसाओ !
पिक, गाम्भी !

प्रीति मुक्त हो, बने न बाधन,
विरह मिलन देवें आलिंगन,
हा प्रीति मन नर नारी जन
दिशि - दिशि ज्वाल जलाओ !

आज बसत विचरता भू पर
नव पल्लव के पल खोलकर,
नवल चेतना की स्वर्णिम रज
गंध समीर, उडाओ !

कौन तरुणि तुम हँसी रँगीली
बिलराती आसू से गीली ?
जीवन गल, प्रिये, कँकरीली
आओ, पर तुम आओ !
पिक, गाम्भी !

पिक

(२)

बोरी थी यौवन अमराई,
गंध मन्द शीतल पुरवाई,
वह मुग्धा जीवन में आयी
नव ऊपा-सा सहज लजायी !
कहू, कुहू कूहू !

फूलो वा उसका कोमल मन,
 सौरभ की साँसो का मधु तन,
 रोमो - रोमो मे आलिंगन
 चित्र लिखी थी रूप लुनाई ।

कूह, कूह कूह ।

कुटिल कँटीला इस जग का भग,
 रंगे अधिर से जीवन के पग,
 पीडा की प्रेमी की रग - रग,
 व्यथा प्रेम की ही परछाई ।

कूह, कूह कूह ।

प्रेम ? प्रेम को मिला शाप रे,
 मनस्ताप वह मनस्ताप रे,
 जग जीवन के लिए पाप रे,
 नभ मे विरह घटा धिर छापी ।

कूह, कूह कूह ।

(३)

युवक

तुम जाओ, सखि, जाओ ।

पाप शाप से बचो, प्रिये, तुम

ताप न उर मे पाओ ।

तुम जाओ ।

प्राण, प्रणय विय पान मत करो,

प्राणो को दे प्राण मत हरो,

प्रिय का उर मे ध्यान मत धरो,

पय मे मत बिलभाओ ।

जब तक जीवन मे वसत है,

यौवन से मुकुलित दिगत है,

आशा सुल सपने अनंत हैं,

प्रिय का मोह भुलाओ ।

तुम जाओ ।

युवती

जैसे तुम हो, वैसे ही जन,

वही हृदय, छबि लोभी लोचन,

वही प्रणय का ताप है गहन,

तुम मत हृदय दुखाओ ।

प्रिय, भाओ ।

किसको रे वह ऐसी क्षमता

रोक सके प्राणो की ममता,

यह स्वभाव मन वा, वह रमता,

मुझको राह सुझाओ ।

प्रिय, भाओ ।

युवक
 फूलों की मृदु देह तुम्हारी,
 काटों की कटु गैल हमारी,
 प्रणय ताप अति दुसह प्यारी,
 वृथा न हृदय लुभाओ !
 तुम जाओ !

प्रणय अचिर दो दिन का सपना,
 तन का तपना, मन का तपना
 सुन न सकूंगा प्रिये कल्पना,
 अपना सुख न गँवाओ !
 तुम, जाओ !

दूसरा दृश्य

(४)

पपीहा
 पी कहाँ, पी कहाँ ?
 प्रेम बिना सूना जग जीवन,
 प्रिय के मधुर प्रतीक्षा के क्षण,
 बरसाओ प्रिय, स्वाति सुधा कण
 बाट जोहता विश्व यहाँ !
 प्रेम बिना जन हैं जीवन-मृत
 प्रेम बिना अपने में सीमित,
 मिलता जहाँ प्रणय चरणामृत,
 मृत्यु न आती पास तथा !

प्रेम नहीं प्राणों का बंधन,
 प्रेमन अस्थिर विरह मिलन क्षण,
 प्रेम मुक्ति है, प्रेम ही सजन,
 सुख-दुख में आनंद जहाँ !

प्रेम वटि में कर अवगाहन
 बनो भीत प्रणयी चिर पावन
 जहाँ हृदय में लगन, स्वाति घन
 बरसेंगे हो विवश वहाँ !

प्रेमी के आँसू के हा घन
 प्रेयसि की स्मृति के विद्युत व्रण,
 चिर अतृप्ति की उर में गजन,
 विरह मिलन बन जाय महा !

(५)

युवक
 तुम आती हो तो आओ प्रेयसि, आओ,
 जीवन पथ में सौंदर्य किरण बरसाओ !

यह सच है, सूना प्रेम बिना जग जीवन,
 नर नारी उर का प्रणय भाज बटु बंधन,
 तुम छाया नारी से मानवी बहामो !
 तुम विरह मिलन से मुक्त प्रणय बन आना,
 तन भीति रहित, भय जीवन को घपनाना,
 निज हृदय माधुरी मे जग को नह्लामो !
 तुम सृजन शक्ति बन मरे उर मे गाना,
 तुम चिर प्रतीति बन जन मन मे घुल जाना,
 प्राणो मे स्वर्गिक मोरभ मधुर बसामो !
 जन एक प्राण, दो ढेह, अभिन हृदय हा,
 प्रत्यय हो मन म, सशय नहीं उदय हो,
 उर की उर, जीवन की जीवन बन जामो !
 तुम आती हो तो आओ, प्रेयसि, आओ !

युवती

मैं आती हूँ, जीवन, आती हूँ प्रियतम,
 हृदया का प्रेम प्रकाश, नहीं तन का तम,
 तुम खोल हृदय पट, प्रिय, फिर मुझे बुलामो,
 युवक—तुम आओ मानसि, आओ, प्रेयसि, आओ !
 प्रिय, मैं ही सीता, मैं सावित्री, राधा,
 हरती आयी जग जीवन पय की बाधा,
 पा मातृ शक्ति, जन मंगल, प्राण, मनाओ,
 युवक—आओ हूँ आभा देही देवी, आओ !
 युवती—मैं गार्गी, घोषा, सूर्या, अदिति, प्रवीणा,
 भारती, भालती, मल्ली, खना, नवीना,
 जन - जन के उर मे तुम आह्वान उठामो,
 युवक—आओ हे, युग की दिव्य विभा बन आओ !
 युवती—मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा,
 मैं भक्ति शक्ति सौंदर्य माधुरी करुणा,
 तम का विनाश, युग का निर्माण कराओ,
 युवक—आओ हे, जग जीवन धात्री तुम आओ !
 युवती—कब से मुख पर धर लज्जा का अश्रुगुण्ठन
 मैं बनी मनुज की मोह वासना की तन,
 मैं तुम्हे शक्ति देती, यवधान हटाओ,
 युवक—आओ, ऊपा बन, अनवगुण्ठते, आओ !

तीसरा दृश्य

(६)

युवती—मैं आयी फिर प्रियतम, आयी !
 युग - युग के रूपों की मेरी
 देखो तुम छिपती परछाई !

तुम क्या नर थे, मैं क्या नारी,
 बधू अधीना, पति अधिकारी,
 तुमने मेरी फूल देह पर,
 तप्त लालसा सज सजायी !

मैं मानवी भ्राज जन धात्री,
 मानव सहचरि, जीवन छात्री,
 भीत न होओ, प्रिय, भ्रव नारी
 लेती जागति की अँगड़ाई !

मुझको भ्रव नारी तन धोना,
 देह मोह निज तुमको खोना,
 मैं यदि किसलूगी युग पथ पर
 प्रिय, तुम हाँगे उत्तरदायी !
 किसका भ्राज दह की छाया
 भ्राभा पुन बनेगी माया,
 सस्वारो की भ्राति घरा पर
 स्वण शांति लायगी स्थायी !
 युग युग के रूपो की मेरी
 देखो, प्रिय, छिपती परछाई !

(७)

सीता राम, सीता राम,
 दया धाम हे प्रणाम !
 हम नर - छाया, कुल नारी,
 पतिव्रता, पति की प्यारी,
 गह दासी, सुत महतारी
 कलह अविद्या अंधियारी !

लज्जा सज्जामय गुण ग्राम,
 सीता राम, सीता राम !
 जब घर से बाहर जाती
 छुईमुई - सी कुम्हलाती
 देख जनो को सबुचाती,
 नयन लालसा उकसाती !

करती नित घर के सब काम,
 सीता राम सीता राम !
 युग - युग से हम भ्रवगुण्डित,
 गह की दीप शिखा नम्पित
 देह मोह मे ही सीमित
 पुरुष मात्र से भ्रातकित !
 विधि सदैव से हम पर वाम,
 सीता राम, सीता राम !

कौन जगाता हमें स्वजन
 उर धे तम मे भर कम्पन,
 दबा राख मे पावक वण,
 उसे जगा दे आज पवन !
 प्रभु भवला वा लें कर धाम,
 सीता राम, सीता राम !

(८)

राधे श्याम, राधे श्याम,
 विश्व रूप हे ललाम !
 भ्रायो थी एक बार
 हम तन - मन प्राण धार,
 सुन मधु मुरली पुकार
 छोड़ नह गेह द्वार,
 तज निज सब काज काम,
 राधे श्याम, राधे श्याम !
 यमुना की कल तरंग
 बनी चपल मकुटि मग,
 भ्रग - भ्रग मे उमग
 नृत्य गीत रास रग,
 अघरो पर मधुर नाम
 राधे श्याम, राधे श्याम !
 बही गीति काव्य धार
 रस के निभर अपार,
 सस्मृति वह थी उदार
 जीवन था नही भार,
 जन - मन धे पूण काम
 राधे श्याम, राधे श्याम !
 निखिल नायिका ललाम
 हम ब्रज की रही वाम,
 प्रीति रीति मे प्रकाम,
 बिकी बंधी बिना दाम
 मधुर भाव मे अकाम,
 राधे श्याम, राधे श्याम !
 कौन आज यह कुमार
 करता फिर से प्रचार,
 किसलिए कुलीन नार
 करे फिर घराऽभिसार ?
 ऐसा वह कौन काम,
 राधे श्याम, राधे श्याम !

(६)

बुद्ध की शरण,
धम की शरण,
सध की शरण !
इच्छा मानव दुख का कारण,
इच्छा का यदि करें निवारण,
तो जग जीवन हो फिर पावन
चिर निर्वाण मिले भव तारण !
बुद्ध की शरण,

सेवा ही हो जीवन का व्रत,
सवा ही मे हो जीवन रत
सवा हित जो हो मस्तक नत
बोधिसत्व के मिलें शुचि चरण !
बुद्ध की शरण,

जीव मात्र पर बरस करुणा,
मानव उर म हरस करुणा,
सेवा के हित तरसे करुणा,
मिटें शोक सब जम रज मरण !
बुद्ध की शरण,

छोडो हे मिथ्या माया जग,
रोग जरा भय मृत्यु के विहग
पकडो भिक्षु - भिक्षुणी का मग
जीवन की भय भीति हो हरण !
बुद्ध की शरण,

किंतु उच्छ्वसित हो रह रह मन
प्राणो मे भरता क्यो श्रदन,
स्वप्नाकुल क्यो होते लोचन
भिक्षु नात क्या तुमको कारण ?

बुद्ध की शरण
धम की शरण,
सध की शरण !

चौथा दृश्य

(१०)

नेपथ्य गीत

जीवन मे जितना डूबोगे उतना ही तुम उक्ताभोग,
मधु मे लिपटाकर पख, मधुप, फिर सहज नहीं उड पाओगे !
सुख की तृष्णा बनती विपाद, सुख-दुख म जो तुम धीर रहो
दुख म तुम रुकना सीखोगे, प्रिय, सुख म चरण बढ़ायाग !

स्वण घृति / ३४५

तुम म क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लधिमा !
आधुनिका !

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका !
पथ रही दिखा !

हम गारी भोरी प्रिय परिया
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
महु मुखर प्रणय की निभरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरिया,
हम प्रीति शिखा !

हम पढी लिखी नव नागरिया
गोरस न सुरा की गागरिया,
हम नही गहो की चाकरिया,
हम नत्य निपुण गुण आगरिया
अति आधुनिका !

अगो पर देती विरल वसन
जिसस विमुक्त निखरे यौवन,
हम तोड प्रणय के कटु व घन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा !

तन पर न हमारे अवगुणन,
घर हाथ पकड लेती हम मन
मिलती सबस खुल के गोपन
क्या हम आदश नही स्त्री जन ?
अति आधुनिका !

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरव म आयी
पर तनिक नही जागति लायी
ले फूल विहग की सुघराई
तुम विभव स्वप्न मे अलसायीं,
अयि प्रीति शिखा !

तुमको प्रिय प्राणो का जीवन
अति भरा स्नायुआ मे स्प दन,
तुम हो युग जीवन की दपण
यह प्रगति नही री चपल चरण,
अति आधुनिका !

जो सहज तैर लेते जग मे, आगे बढ पार वही पाते,
 तुम रंगे लालसा रंग म जो, गेरुवा पहन के जाओगे ।
 आसक्ति विरक्ति अकेले ही धूधट पट नही उठायेगी,
 जो निरत हुए पछताओगे, जो विरत हुए क्या पाओगे ?
 रति और विरति के पुलिनो म बहती जीवन रस की धारा,
 रति से रस लीगे और विरति से रस का मूल्य लगाओगे ।
 नारी मे फिर साकार हो रही नव्य चेतना जीवन की,
 तुम त्याग भोग को सजन भावना मे फिर नवल डुवाओगे ।

(११)

रूप शिखा
 आधुनिका ।

फूलो की तन-सुवास,
 लहरो का चरण लास,
 शशि का मधु सुधा हास
 विद्युत का झू विलास
 रूप शिखा ।

भाल पर न बेंदि सुघर
 माग मे न सेंदुर वर
 रंगती हम मधुर अघर
 झू धनु मे कज्जल भर ।
 आधुनिका ।

छूट गयी पट सस्कृति,
 हृदय रहित मधुरावृति,
 दे रही प्रगति को गति
 हम नव युग की भारति,
 रूप शिखा ।

युवक
 शोभा का है प्रिय तन,
 मुक्त नही तन से मन,
 प्रिये, धीर धरो चरण
 रिक्त क्या न यह जीवन ?
 आधुनिका ।

आयी घर से बाहर
 चकाचौंध नयनो पर,
 छोड मध्य युग की डर
 मानवी बनी न निखर ।
 रूप शिखा ।

तुम थी भारत महिमा,
 आज ध्वस युग प्रतिमा ।

तुम म क्या उर गरिमा ?
केवल तन की लघिमा ।
आधुनिका ।

(१२)

हम प्रीति शिखा
अति आधुनिका ।
पय रही दिखा ।

हम गारी भोरी प्रिय परिव्या
हम अस्ताचल की अप्सरियाँ,
मधु मुत्तर प्रणय की निभरियाँ,
हम नव युग ज्योति उजागरियाँ,
हम प्रीति शिखा ।

हम पढी लिखी नव नागरियाँ
गोरस न, सुरा की गागरिया,
हम नही गहा की चाकरियाँ,
हम नत्य निपुण गुण आगरिया,
अति आधुनिका ।

अगो पर देती विरल वसन
जिसस विमुक्त निखरे यौवन
हम तोड प्रणय के कटु व धन
मोहित करती जन जन के मन,
हम प्रीति शिखा ।

तन पर न हमारे अवगुण्डन
घर हाथ पकड लेती हम मन
मिलती सवस खुल के गोपन
क्या हम आदश नही स्त्री जन ?
अति आधुनिका ।

युवक

प्रिय सखि, तुम पूरव म आयी
पर तनिक नही जागृति लायी
ले फूल विहग की सुधराई
तुम विभव स्वप्न म अलसायी
अयि प्रीति शिखा ।

तुमको प्रिय प्राणा का जीवन
अति भरा स्नायुओ म स्प दन,
तुम हो युग जीवन की दपण
यह प्रगति नही, री चपल चरण,
अति आधुनिका ।

पाँचवाँ दृश्य

(१३)

नेपथ्य गीत

शारदे !

शरद हासिनी,
तम विनाशिनी, जग प्रकाशिनी,
नव स्मिति की ज्योत्स्ना बरसाओ
वसुधा पर, जीवन विकाशिनी !
शारदे !

नवल नीलिमा मे तत अम्बर,
निमल सुख से कम्पित सरि सर,
उतरो है आभामयि, भू पर,
कुमुद आसनी !

शुभ्र चेतना - सी नव विचरो,
भाव लहरियो को छू निखरो,
पृथ्वी के तण - तृण पर बिखरो,
ज्याति लासिनी !

स्वप्न जडित भू रज हो चेतन,
तन से ज्योत्स्ना - सा छिटके मन,
दग तारा से भरें नव किरण,
हृदय वासिनी !

आओ, नव नारी बन आओ,
जग को शोभा मे लिपटाओ,
नव जीवन की सुधा पिलाओ,
श्री विलासिनी !

नेपथ्य गीत (१४)

ताराओ-सी बुधि आत्माएँ मैं आज घरा पर भेजगी,
नव भाव शक्तियो से भू को मैं फिर से सहज सहेजूगी !
मैं ही सोयी जग के तम मे, मैं ही शत रगो मे जगती,
मैं नर-नारी मे आज द्विधा हो जीवन के भुज भेटूगी !
जो जन मन आज उठे ऊपर मैं फिर घरती पर उतहूँगी,
मानव के उर में कर प्रवेश जग मे नव जीवन बितहूँगी !
लो, आज तुम्हें छूती हूँ मैं अपने आभा के अचल से,
मानव के स्वर्गिक स्वप्नो को मैं जीवन की देही दूंगी !

छठा दृश्य

(१५)

युयक

मानिनि, अधिक विलम्ब मत करो !
ओ मानव की स्वर्णिम मानसि,
उतरो अब घरती पर उतरो !

पुबती

प्रिय मैं उतर धरा पर आयी ।
उदम शिखर पर नव युग की भव
देखो, स्वर्ण ध्वजा फहरायी ।

युवक

निखिल सृष्टि की बन तुम आशय,
जीवन की सकल्प भ्रमशय,
भ्रतमन की चिर अभिलाषा
सजन तत्व की सार बन प्रणय,
युग - युग के जग जीवन के
चिर ज्ञान कला से प्रेयसि, निखरो ।
मानव की प्रिय मानसि, विचरो,
तुम फिर से धरती पर विचरो ।

युवती

मानव उर की आशा के पर,
जीवन के स्वप्नों का तन धर,
सजन चेतना सी सदेह भव,
उर मे मधुर प्रतीति बन भर,
आज सृजन आनन्द से उमंग
मैंने जीवन रज लिपटायी ।
पुन सूक्ष्म से स्पूल बनी मैं
छिपी ज्योति मे सब परछाइ ।
प्रिय, मैं उतर धरा पर आयी ।

(१६)

नेपथ्य गीत

आज हँस उठे जीवन के रंग ।
फूल कली तण सतरंग बादल
उमंग उठे पुलकित हो उर अंग ।
मधुर भवनि भव, मधुर निखिल जग
मधुर नीलिमा, मधुर मुखर खग,
मधुर सूल, सुमधुर जीवन मग,
मधुर दु ख सुख, मधुर मरण संग ।

आशा अभिलाषाएँ हँसती,
प्रीति प्रतीति हृदय मे बसती,
देव भावना उर मे जगती
आत्मत्याग से ऋतुत रग - रग ।
नव प्रकाश से गयी दिशा भर
लोट रही विरणें भू रज पर,
स्वर्ण धरा पर उतर गया ही
स्वर्ण सृष्टि लगती सहज सुभग ।

युग युग के दुख ग्लानि पराभव
 मनुज विजय से दीपित अभिनव,
 मिला भिक्षु को त्रिभुवन वैभव,
 रोके रूकते नहीं प्रीति पग ।
 (१७)

युवक

पुण्य स्पश नारी का पावन ।

देह प्राण से आज उठ गया

ऊपर प्रमदा का शोभा तन ।

अब तक दीप शिखा तन छूकर

उद्दीपित होता था अंतर,

मुक्त चेतना का प्रवाह अब

बहता उस तन से सजीवन ।

पुष्पा की श्री का तन शोभन

बना प्रीति का पुण्य निवेदन,

आज शांत उसका आकषण

आलोकित उसका उद्दीपन ।

नारी अब न देह अबगुणन,

केवल हृदय, हृदय वह मोहन,

अब वसुधा पर होगा स्वर्गिक

भावो के पुष्पो का वपण ।

तन - मन से ऊपर जो जीवन

पाकर उसका नव सवेदन

स्वर्ण धरा पर स्वर्ग सजन नव

प्रिये, करेंगे अब भू के जन ।

सातवाँ दृश्य

(१८)

युवती

धिक, हम कैसे प्रेम पथिक ।

प्रीति सूत्र में घँपकर जो हम

बन सकते भू के न श्रमिक ।

आओ, भू को आज बुहारें

युग - युग का अघ कदम भारें,

जीवन का यह प्रथम सँवारें,

जन श्रम से शोभित हो दिक् ।

किया नहीं सौंदर्य सजन जो

किया नहीं माधुर्य बहन जो

रे किस लिए मनुज जीवन जो

जन में नहीं विभव आत्मिक ।

पिया नहीं जो जीवन मधु दुख,

मिला न जो भू रचना म सुख,

तो क्यों नर नारी हो उ मुख
 युग्म प्रीति के रिकत रसिक !
 प्रिय, तुम बीज—प्राण, तुम धरती,
 अकुर - सी उठ सृष्टि निखरती,
 जीवन हरियाली मन हरती
 प्रीति हमारी नहीं क्षणिक !
 आओ, भरो धरा पर प्लावन
 स्वेद सिक्त श्रम का चिर पावन,
 युग्म प्रीति का विश्व जागरण
 गावें मुक्त पिकी नव पिक !

(१६)

युयक युवतिया

प्रतीति प्रीति प्राण मे,
 चरण धरो, चरण धरो,
 लिये हो हाथ हाथ मे,
 न तुम डरो, न तुम डरो !

मनुष्यता रही पुकार
 छोड़ देह मोह भार,
 खोल रुद्ध हृदय द्वार,
 देह द्रोह दो विसार !
 भाल के कलक पक
 को मनुष्य के हरो !

महान क्रांति आज हो,
 अखण्ड राम राज हो
 अभीष्ट लोक काज हो,
 सुसम्य जन समाज हो !
 उठो, सदुच्च ध्यय, धंय
 शीय, वीय को वरो !

न रक्तपात युद्ध हो,
 न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
 मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो
 विदेह मन न क्रुद्ध हो,
 अभय अमर हा मृत्यु आज
 साथ - साथ जो मरो !

क्षुधात रे असह्य प्राण,
 नग्न देह, बुद्धि म्लान
 रोग व्याधि स न प्राण,
 निश्चय लो आज जान,
 तुम प्रथम मनुष्य हो,
 न युग्म मात्र, स्त्री नरो !

विनम्र शिष्ट निरभिमान
 पुरुष नारि हो समान,
 प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान,
 युक्त कला नृत्य गान,
 स्वयं तुल्य हो धरा,
 जघन रुढियो, भरो !

(२०)

नव गुणतिर्यां

ये पारिजात प्रिय पूजन के,
 ये आम्न मोर अभिनदन के,
 ये सित सरोज पावन मन के,
 अपलक गुलाब प्रेमी जन के,
 यह सस्कृति का सदेश नवल,
 तुम ग्रहण करो, तुम ग्रहण करो !
 यह शास्ति सम्यता की प्रियतम,
 तुम वहन करो, तुम वहन करो !

भीनी चम्पा नव भावो की,
 यह जुही सुघर रुचि चावो की,
 मृदु शीलमयी प्रिय मौलसिरी,
 उर गरिमा से वेतकी भरी,
 तुम स्नेह दया सहृदयता से
 जन मन की ईर्ष्या घृणा हरो !

ये बेला की बलियां स्मृति की,
 यह कुद बली निश्छल स्मिति की,
 स्मित चारु चमेली सज्जा की,
 नत छुईमुई प्रिय लज्जा की,
 तुम नव जीवन की श्री शोभा,
 सुख आशा वैभव आज वरो !

मजरि अशोक की मगलमय,
 रोमिल शिरीष शोभा मे लय,
 ये हँस-हँस भरत हर सिंगार,
 यह पुलकाकुल वचनार डार,
 तुम विनय साधना सत्य त्याग से
 मू बाधाएँ निखिल हरो !

स्वप्नो की बुई मधुर मोहन,
 पाटल विराग से गरिव तन,
 कामिनी सती सी स्वच्छ सुघर,
 स्वर्णिम गेंदा सत्तोप अमर !
 नव मानवता की सौरभ से
 तुम वसुधरा को आज भरो !

ये पौष्य से रक्तिम पलाश,
ये स्वर्ण शान्ति के भ्रमलतास,
मालती भरी उर ममता से,
सुर चन्दन सौरभ क्षमता से,

मानव जीवन के योग्य बना
इस पृथ्वी को, मानव विचरो !
यह ससृष्टि का सन्देश नवल ।

युवक—प्रतीति प्रीति प्राण मे,
चरण धरो, चरण धरो !

युवतियाँ—हृदय सुमन, प्रणय सुरभि,
ग्रहण करो, ग्रहण करो !

युवक—लिये हो हाय हाय मे,
न तुम डरो, न तुम डरो !

युवतियाँ—सजन विकास की शिक्षा
वहन करो, वहन करो !

मधुज्वाल

[प्रथम प्रकाशन वर्ष १९४७]

प्रिय वचन को

जीवन की ममर छाया में नीड रच भ्रमर
गाये तुमने स्वप्न रंगे मधु के मोहक स्वर,
जीवन के कवि, काव्य काकती पट में स्वर्णिम
सुख-दुख के ध्वनि वर्णों की चल धूप-छाँह भर !
धुमड रहा था ऊपर गरज जगत सघर्षण,
उमड रहा था नीचे जीवन वारिधि क्रन्दन,
भ्रमृत हृदय में, गरल कण्ठ में मधु भ्रमरों में—
ध्याये तुम, वीणा घर कर मे जन मन मादन !

मधुर तिलक जीवन का मधु कर पान निरन्तर
मय डाला हर्षोद्विगो से मानव अन्तर
तुमने भाव लहरियों पर जादू के स्वर से
स्वर्गिक स्वप्नों की रहस्य ज्वाला सुलगाकर !
तरुण लोक कवि, वृद्ध उमर के संग चिरपरिचित
पान करो फिर, प्रणय स्वप्न स्मित मधु भ्रमरामृत,
जीवन के सतरंग बुद्बुद पर भ्रम निमीलित
प्रीति दृष्टि निज डाल साय ही जाग्रत विस्मृत !

विज्ञापन

उमर खैयाम की रूबाइयो का प्रस्तुत गीता तर मैंने सन् १९२६ में उर्दू के प्रसिद्ध शायर तथा अपने स्नेही मित्र स्वर्गीय असगर साहब, गोडवी की महायता से इण्डियन प्रेस के आग्रह पर किया था। असगर साहब जिस भावुकता एवं तल्लीनता से मुझे फारसी की रूबाइयो का भावाथ समझाते थे और साथ ही फारसी के अन्य कवियों की मिलती जुलती रूबाइया को भी सुनाना नहीं मूलते थे, उससे प्रेरणा पाकर मैंने उस प्रेम और सौ दय के गंधोच्छवास से घने वातावरण को गीतों की प्यालियों में ढालने का प्रयत्न किया था। उसके बाद ही मैं बीमार पड़ गया और यह संग्रह भी तब स अप्रकाशित ही रह गया। आशा है, उमर के प्रीति-मधु के प्रेरित इन उदगारों में पाठकों को मनोरजन की पर्याप्त सामग्री मिलेगी। स्वर्गीय असगर साहब की इस मधुर स्मृति को पाठकों के हाथ सौंपने में मुझे आज प्रसन्नता ही रही है। हिंदी में उमर की रूबाइयो के अधिकांश अनुवाद फिट्जरल्ड के अंग्रेजी रूपांतर के आधार पर हुए हैं। फिट्जरल्ड का कल्पना सौंदर्य अपना है, भाव उमर के। इसी का अनुसरण मैंने भी अपने इस चपल प्रयास में किया है। इसलिए बलबुल के साथ कोयल के स्वर, गुलाब के साथ आम्र मजरी की गंध भी इन स्वप्न मद-भरे गीतों में सहज ही मिल गयी है।

सुमित्रानंदन पंत

[१]
 रे जागो, बीती स्वप्न रात ।
 मदिरारुण लोचन तरुण प्रात
 करती प्राची से पलक पात ।

अम्बर घट से, साकी हँसकर,
 लो, ढाल रहा हाला भू पर,
 चेतन हो उठा सुरा पीकर,
 स्वर्णिम शाही मीनार शिखर ।

[२]
 खोलकर मदिरालय का द्वार
 प्रात ही कोई उठा पुकार
 मुग्ध श्रवणो मे मधु रव धोल—
 जाग उमद मदिरा के छात्र ।
 दुलककर यौवन मधु भनमोल
 शेष रह जाय नही मूद मात्र,
 ढाल जीवन मदिरा जी खोल
 लबालब भर ले उर का पात्र ।

[३]
 प्रीति सुरा भर, साकी सुन्दर,
 मोह मथित मानस हो प्रमुदित ।
 स्वप्न प्रथित मन, विस्तृत लोचन,
 मत्स्य निशा हो स्वग उपा स्मित ।
 प्रणय सुरा हो, हृदय भरा हो,
 लज्जारुण मुख हो प्रतिबिम्बित,
 पी अघरामत हो मृत जीवित
 प्रीति सुरा भर, प्रीति सुरा नित ।

[४]
 हाय, कोमल गुलाब के गाल
 झूलस दे ऊप्मा का अभिशाप ?
 प्रयम यौवन कलियो के जाल
 स्वय कुम्हला जायें चुपचाप ।
 विजन बर्न धुजो म भर प्यार
 तरुण बलबल गाती थी गान,
 आज उसके उर के उद्गार
 बिपर हो गये विलीन अजान ।

सभी एक से तिथि, मिति वासर,
 जुमा, पीर, इनवार, शनीचर !
 नीति - नियम नि सार !
 धम का यह इजहार,
 खुदा है खुदा, न वह तिथि वार !

[१०]

राह चलते चुभता जो धूल
 वही उसके स्वभाव अनुकूल !
 मामिनी की वह कुचित अलक
 कभी था कुटिल मकुटि, चल पलक !
 खड़े जो सुंदर सौध विशाल
 सुनो उनकी ईंटों का हाल,
 सचिव की उंगली ये वे गोल,
 शाह के रत्न शीश अनमोल !

[११]

सुरालय हो मेरा ससार,
 सुरा सुरभित उर के उदगार !
 सुरा ही प्रिय सहचरि सुकुमार,
 सुरा, लज्जारुण मुख साकार !
 उमर को नहीं स्वर्ग की चाह,
 सुरा मे भरा स्वर्ग का सार !
 सुरालय राह स्वर्ग की राह,
 सुरालय द्वार स्वर्ग का द्वार !

[१२]

मदिराघर रस पान कर रहस
 त्याग दिया जिसने जग हंस हंस,
 उसकी क्या फिर मसजिद मदिद
 सुरा भक्त वह मुक्त अनागत !
 हृदय पात्र मे प्रणय सुरा भर
 जिसने सुर नर किये प्रेम वर,
 पाप, पुण्य, भय, उसे न सशय,
 वह मदिरालय अजर अमर यश !

[१३]

हंस से बोली व्याकुल मीन
 करुणतर कातर स्वर मे क्षीण,
 'बधु क्या सुंदर हो' प्रतिवार
 लौट आये जो बहती धार !'
 हंस बोला, 'हमकी कल व्याध
 मून डालेगा, तब क्या साध ?

[५]

मदिराघर कर पान
 नहीं रहता फिर जग का ज्ञान ।
 आता जब निज ध्यान
 सहज कुण्ठित हो उठते प्राण ।
 जाग्रत विस्मृत साथ
 सतत जो रहता, वह भ्रविकार ।
 वृद्ध उमर भी माघ
 नवाता उसे सखे, साभार ।

[६]

वह भ्रमूतोपम मदिरा, प्रियतम,
 पिला, खिला दे मोह म्लान मन,
 अपलक लोचन, उमद योवन,
 फूल ज्वाल दीपित हो मधुवन ।
 जगम यह जग, दुगम प्रति मग,
 उर के दूग, प्रिय साकी, दे रंग ।
 मदिरारुण मुख हो दूग सम्मुख
 रुक न जाय जब तक डगमग पग ।

[७]

बैठ, प्रिय साकी, मेरे पास,
 पिलाता जा, बढ़ती जा प्यास ।
 सुनेगा तू ही यदि न पुकार
 मिलेगा कैसे पार ?
 स्वप्न । मादक प्याली मे धाज
 डुबा दे लोक लाज, जग बाज,
 हृष्ठा जीवन से, सखे, निराश
 बांध, निज मज मद पाश ।

[८]

दूधा यह कल की चिंता, प्राण,
 धाज जी खोल करे मधुपान ।
 नीलिमा का नीलम का-जाम,
 भरा ज्योत्स्ना से पेन ललाम ।
 इंदु की यह सलज्ज मुसकान,
 रहेगी जग में चिर भ्रम्लान,
 हमारा पर न रहेगा ध्यान,
 ध्यय फिर कल की चिंता, प्राण ।

[९]

मदिराघर कर पान,
 सखे, तू घर न जुमे का ध्यान,
 लाज स्मित भयरामुत कर पान ।

सभी एक से तिथि, मिति, वासर
 जुमा, पीर, इनवार, शनीचर !
 नीति - नियम नि सार !
 धम का यह इजहार,
 खुदा है खुदा, न वह तिथि वार !

[१०]

राह चलते चुभता जो शूल
 वही उसके स्वभाव अनुकूल !
 कामिनी की वह कुचित अलक
 कभी था कुटिल मकुटि, चल पलक !
 खड़े जो सुंदर सौध विशाल
 सुनो उनकी इटो का हाल,
 सचिव की उँगली ये वे गोल,
 शाह के रत्न शीश अनमोल !

[११]

सुरालय हो मेरा ससार,
 सुरा सुरभित उर के उदगार !
 सुरा ही प्रिय सहचर सुकुमार,
 सुरा, लज्जारुण मुख साकार !
 उमर को नहीं स्वर्ग की चाह,
 सुरा मे भरा स्वर्ग का सार !
 सुरालय राह स्वर्ग की राह,
 सुरालय द्वार स्वर्ग का द्वार !

[१२]

मदिराधर रस पान कर रहस
 त्याग दिया जिसने जग हँस हस,
 उसको क्या फिर मसजिद मंदिर
 सुरा भक्त वह मुक्त अनागस !
 हृदय पात्र मे प्रणय सुरा भर
 जिसने सुर नर किये प्रेम वश,
 पाप, पुण्य, भय, उसे न सहाय,
 वह मदिरालय अजर अमर यश !

[१३]

हंस से बोली व्याकुल मीन
 करुणतर कातर स्वर मे क्षीण,
 'बहु, क्या सुंदर हो' प्रतिवार
 सौट भाये जो बहती धार !'
 हंस बोला, 'हमको कल व्याघ्र
 भून डालेगा, तब क्या साध ?'

सुख जाये, वह जाये धार
वने भयवा बिगड़े ससार !'

[१४]

शानोज्वल जिनका अन्तस्तल
उनको क्या सुख-दुख, फलाफल ?
मदिरालय जिसका उर तमय,
उसको क्या फिर स्वय-नरक-भय ?

वह मानस जिसमें मदिरा रस
उसे बसन क्या ? टाट कि अतलस !
अवश पलक पायें न प्रिय भलक
जब तक, तकिमा शिला तभी तक !

[१५]

मदिर अघरोवाली सुकुमार
सुरा ही मेरी प्रिया उदार !
मौन नयनो मे भरे अपार
तरुण स्वप्नो का नव ससार !

चूमता मुख मैं बारम्बार
गया ज्यो पान पात्र भी हार !
उमर मदिरा बन एकाकार
गये दोनो दोनो पर वार !

[१६]

अधर मधु किसने किया सजन ?
तरल गरल !
रखी क्यों नारी चिर निरुपम ?
रूप अनल !

अगर इनसे रहना वचित
यही विधान,
दिये विधि मे तप समय हित
न क्यों दढ प्राण ?

[१७]

उमर दिवस निशि काल और दिशि
रहे एक सम, जब कि न थे हम !
फिरता था नभ सूर्य चन्द्र प्रभ,
देख मुग्ध छवि गाते ये नवि !

चन्द्र वदनि की सी धलकावलि
सहराती थी लोल शवनिनि !
कीमल चंचल घरणी श्यामल
किसी मृगनयनि की थी दुग कनि !

[१८]

छूट जावें जब तन से, प्राण
सुरा मे मुझे कराना स्नान !

सुरा, साकी, प्याली का नाम
 सुनाना मुझे उमर अश्विराम ।
 खोजना चाहे कोई भूल
 मुझे मेरे मरने के बाद,
 पापशाला की सूघे घूल,
 दिलायेगी वह मेरी याद ।

[१६]

अधर घट मे भर मधु मुसकान,
 मूर्ति बोली, 'ऐ निष्ठावान,
 तुझे क्यों भाया यह उपचार—
 भजन, पूजन, दीपन, शृंगार ।'
 भक्त बोला, 'जिसने अनजान
 दिये हम दोनों को दो रूप,
 उसी ने मुझे उपासक प्राण ।
 बनाया तुम्हें उपास्य अनूप ।'

[२०]

तुम ऋतुपति प्रिय सुषर कुसुमचय
 हम कण्टक गण ।
 स्वाति स्वप्न सम मुक्ता निरपम
 तुम हम हिम कण ।
 निठुर नियति छल हो कि कम फल
 यह चिर अविदित,
 चख मदिरा रस, हँस रे परवश,
 त्याग हिताहित ।

[२१]

यहाँ नीलिमा हँसती निमल,
 कपेता हरित तणो का अचल,
 गाता फेन अघित जल कल कल ।
 अरे, त्याग तप सयम मे रत ।
 किस मिथ्या, ममता हित ये व्रत ?
 यह विराग क्यों भग्न मनोरथ ?
 बकिम दग, रक्तिम मदिराघर,
 यह सुरागना सुरा मनोहर
 तुझे बुलाती, इसे अक भर ।
 कौन जानता, क्या होगा फिर,
 सुरा फेन - सा जीवन अस्थिर,
 पी रे, मदिरा का जीवन चिर ।

[२२]

सुनहले फूलो से रच अग
 सलज लाला-सा मुख सुकुमार,

धुरा घट-सा दे मादक रंग
शिखर तट सा उन्नत आकार ।

न जाने तुमने क्यों, करतार,
भरी प्राणी मे तरुण उमर ।
बुना क्यों स्वप्न मधुर सत्तार
हृदय सर मे भर मंदिर तरंग ।

रचे जो मुरझाने को फूल,
तडपने को बुलबुल का प्यार,
उमर मंदिराघर रस भ मूल
न क्यों तब दे सब दीव बितार ।

[२३]

इस जीवन का भेद
जिसे मिल गया गभीर अपार,
रहा न उसको कनेह
मरण भी बना स्वर्ग का द्वार ।

कर ले आत्म विवास,
खोज पय, जब तब दीपक हाथ,
मरने बाद, निराश,
छोड़ देगा प्रकाश भी साथ ।

[२४]

फेन ग्रथित जल, हरित शस्य दल,
जिससे सरित पुलिन भालिगिन,
उस पर मत चल, वह चिर बोल
ललना की रोमावलि पुलकित ।

गुल लाला सम मुख छबि निरुपम
उस मगनयनी की थी सस्मित,
वह मुकुलित तन धाज धूल बन
हुआ कूल दूर्वादल मण्डित ।

[२५]

हृदय जो सदाय, प्रणय आगार,
भक्त, उक्त उर पर कर अधिकार ।
न मंदिर मसजिद के जा द्वार
न जड काने पर तन मन वार ।

अगर ईश्वर को कुछ स्वीकार
हृदय जो सदाय, प्रणय आगार ।
हृदय पर यदि न तुम्हे अधिकार
भक्त, पी अमर प्रणय मधु घार ।

[२६]

चपल पलक से कुटिल झलक से
बिध बंधकर होना हत मूर्छित,

सतत मचलना, वृत्ति बदलना
हृदय, तुम्हारा यदि स्वभाव नित ।

फिर अतिम क्षण तजना प्रिय तन
प्राण, तुम्हारा अगर यही प्रण,
विधि ने क्यों कर तो प्रिय सहचर
मुझे दिये—जीवन, नव यौवन ?

[२७]

भला कैसे कोई नि सार
स्वप्न पर जाये जग के वार ?
हूँस रही जहाँ अश्रुजल माल
विभव सुख के ओसो की डार ।

अथर्व श्रम से सुख सेज सँवार
लेटता जब तू शोक बिसार,
बच्च स्वर में कहता द्रुत काल
धरे उठ गाफिल, चल उस पार ।

[२८]

रम्य मधुवन हो स्वर्ग समान,
सुरा हो, सुरबाला का गान ।
तरुण बुलबुल की विह्वल तान
प्रणय ज्वाला से भर दे प्राण ।

न विधि का भय, न जगत का ज्ञान,
स्वर्ग की स्पृहा, नरक का ध्यान—
मंदिर चितवन पर दू जम वार
चूम अघरो की मदिरा - पार ।

[२९]

वनमाला में जो गुल लाला
सहरा रहा अनल ज्वाला सम,
रुधिर अरुण था किसी तरुण
वह वरुण तुल्य नप सुत का निरुपम ।

नील नयन में फसा रहा मन
फूल बनफशा जो चिर सुंदर,
वह मयक में चारु अक - प
तिल निशक था तरुणी मुल पर ।

[३०]

उमर दो दिन का यह ससार
सबालक भर ले उर भूगार ।
क्षणिक जीवन यौवन का मेल,
सुरा प्याली का फेनिल खेल ।

देख, वन के फूलों की ढाल
सलक खिलती, भरती तत्वाल ।

सुरा घट-सा दे मादक रंग
शिखर तरु सा उन्नत आकार ।

न जाने तुमने क्यों, करतार,
भरी प्राणों में तरुण उमर ।
बुना क्यों स्वप्न मधुर ससार
हृदय सर मे भर मंदिर तरंग ।

रचे जो मुरझाने को फूल,
तडपने को बुलबुल का प्यार,
उमर मदिराघर रस में मूल
न क्यों तब दे सब शोक बिसार ।

[२३]

इस जीवन का भेद
जिसे मिल गया गभीर अपार,
रहा न उसको क्लेश
मरण भी बना स्वर्ग का द्वार ।

कर ले आत्म विकास,
खोज पथ, जब तक दीपक हाथ,
मरने बाद, निराश,
छोड़ देगा प्रकाश भी साथ ।

[२४]

फेन प्रथित जल, हरित शस्य दल,
जिससे सरित पुलिन आलिंगन,
उस पर मत चल, वह चिर कोमल
ललना की रोमावलि पुलकित ।

गुल लाला सम मुख छबि निरुपम
उस मगनयनी की थी सस्मित,
वह मुकुलित तन आज धूल बन
हुआ कूल दूर्वादल मण्डित ।

[२५]

हृदय जो सदय, प्रणय आगार,
भक्त, उर उर पर कर अधिकार ।
न मंदिर मसजिद के जा द्वार
न जड़ काबे पर तन मन वार ।

अगर ईश्वर को कुछ स्वीकार
हृदय जो सदय, प्रणय आगार ।
हृदय पर यदि न तुझे अधिकार
भक्त, पी अमर प्रणय मधु धार ।

[२६]

चपल पलक से कुटिल झलक से
बिध बंधकर होना हत मूर्छित,

सतत मचलना, वृत्ति बदलना
हृदय, तुम्हारा यदि स्वभाव नित ।

फिर अतिम क्षण तजना प्रिय तन
प्राण, तुम्हारा अगर यही प्राण,
विधि ने क्यों कर तो प्रिय सहचर
मुझे दिये—जीवन, नव यौवन ?

[२७]

भला कैसे कोई नि सार
स्वप्न पर जाये जग के वार ?
हूँ रा रही जहाँ धनुजल माल
विभव सुख के घोसों की डार ।

अपव ध्रम से सुख सेज सँवार
सेटता जब तू शोक बिसार,
बय्य स्वर मे कहता द्रुत काल
घरे उठ, गाफिल, चल उस पार ।

[२८]

रम्य मधुवन हो स्वर्ग समान,
सुरा हो, सुरबाला का गान ।
तरुण बुलबुल की विह्वल तान
प्रणय ज्वाला से भर दे प्राण ।

न विधि का भय, न जगत का नान,
स्वर्ग की स्पृहा, नरक का ध्यान,—
मन्दिर चितवन पर दू जम धार
चूम अघरो की मदिरा - धार ।

[२९]

वनमासा मे जो गुल लाला
सहरा रहा अनल ज्वाला सम,
वधिर धरुण था किसी तरुण
वह धरुण तुल्य नप सुत का निरुपम ।

नील नयन मे फसा रहा मन
फूल बनफशा जो चिर सुंदर,
वह मयक मे चारु अक - सा
तिल निशक था तरुणी मुख पर ।

[३०]

उमर दो दिन का यह ससार
सबालब भर ले उर मगार ।
क्षणिक जीवन यौवन का मेल,
सुरा प्याली का फेनिल खेल ।

देख, वन के फूलों की डाल
ललक खिलती, भरती तत्काल ।

व्यथ मत चिन्ता कर, नादान,
पान कर मदिराधर कर पान ।

[३१]

मधुश्रुतु चंचल, सरिता छ्वनि कल,
श्यामल पुलिन ऊर्मि मुख चुम्बित,
नवल वयस बालाएँ हँस - हँस
बिखराती स्मिति पल्लवियाँ सित ।

स्वप्निल पलक सुरा, साकी, चख,
मदिराधर मद से रहे छलक ।
मन्दिर भय, मसजिद का सशय
जा रे भूल, विलोक प्रियाऽलक ।

[३२]

उमर कर सब से मृदु बर्ताव,
न रख तू शत्रु मित्र का भाव ।
प्रेम से ले निज घरि को जीत,
नअ बन, रख सबसे अपनाव ।

मधुर बन, निमय, सरल, विनीत,
बना हाला बाला को मीत ।
छाँह सी भावी, स्वप्न भतीत,
मात्र मदिरामृत स्वग पुनीत ।

[३३]

लज्जाघ्न मुख, वैठी सम्मुख
प्रेयसि कम्पित कर से उत्सुक
भर ज्वाला रस, हाला हँस हँस
उमर पिलाये, हृदय हो भवश ।

हृदय हीन कह लें मलीन,
मैं मधु वारिधि का मुग्ध मीन ।
अपवग व्यथ केवल निसग
सगीत, सुरा, सुदरी,—स्वग ।

[३४]

मधुर साकी, भर दे मधु पात्र,
प्रणय ज्वाला से उर का पात्र ।
सुरा ही जीवन की आघार,
मर्त्य हम, केवल क्षर म मात्र ।

पुष्प के प्याले भर भर आज
लुटाता जीवन मधु श्रुतु राज,
उमर तज भजन, यजन, उपचार,
भजन से ईश्वर को क्या काज ।

गधवह बहता हो जब मद,
गा रहा हो कल सरिता नीर,

अधर मधु पीकर रह स्वच्छन्द,
मजन हित हो मत व्यथ प्रधीर !

[३५]

पचम पिकरव, विकल मनोभव,
योवन उत्सव !
मधुवन गुजित, नीर तरंगित,
तीर बल ध्वनित !
हंसमुख सुन्दर प्रिय मुख सहचर,
प्रिया मनोहर,
पी मदिराधर सखे, निरतर,
जीवन क्षण भर !

[३६]

सुरा पान से, प्रीति गान से
भाज पापशाला है गुजित,
मधु निकुञ्ज सी खग पिक कूजित !
कोटि प्रतिज्ञा तोड़, भवज्ञा
धम कम की मैंने की नित,
पी-पी प्रेयसि का अधरामृत !

उमर कल्पमय, प्रभु करुणामय,
करुणा प्री कल्पम चिर परिचित,
मेरे अध से क्षमा अलङ्कृत !

[३७]

अधर सुख से ही स्पन्दित प्राण,
बहे या बिरह अध्रु जल धार,
फूल बरसे, या कटक, वाण,
मुझे प्रभु की इच्छा स्वीकार !
तुम्हारी रुचि मेरी रुचि नाथ,
गहो या गहो न मेरा हाथ,
छोड़ दो जीण तरी मँकधार
लगाओ या भव सागर पार !

[३८]

प्रगो मे हो भरी उमग,
नयनो मे मदिरालस रग,
तरुण हृदय मे प्रणय तरंग !
रोम - रोम से उमद मध
छूटे, छूटे जग के बध,
रहे न सुख - दुख से सम्बध !
कीमल हरित तणो से सकुम
मेरी निमृत समाधि से भनुल

निकले मदोच्छ्वास मदिराकुल ।
 यदि कोई मदिरा का पागल
 भाये उसके ढिग, विरहानल
 उसे सूष हो जाये शीतल ।

[३६]

बधु चाहता काल
 तोड़ दे हमे, छोड़ ककाल ।
 यही दैव की चाल,
 जगत स्वप्नो का स्वर्णिम जाल ।

जब तक सुरा रसाल
 काल भी मीहित साकी, ढाल,
 ढाल सुरा की ज्वाल,
 मृत्यु भी पी, जी उठे निहाल ।

[४०]

पूछते मुझसे, 'ए खँयाम,
 तुझे क्यों भाया मधु व्यापार ?'
 सुनो, 'मैंने धर्मों को छान
 किया इस मदिर दगी से प्यार ।

स्वर्ग सुख मदिराघर पर वार ।

'न मैं नास्तिक, न नीति मर्याद
 तोड़ता, करता वाद - विवाद,
 रहे मदिरालय चिर भावाद,
 न भाये मुझको अपनी याद ।

खुदा है उमर मृत्यु के बाद ।'

[४१]

कल-कल छल छल सरिता का जल
 बहता छिन छिन ।

मभर सन सन बष समीरण
 से जाते दिन ।

कल का क्या दुख ? भाज से विमुख
 मत हो भ्रतर ।

हृदय द्विधा हर, प्रणय सुधा कर
 पान निरतर ।

[४२]

उमर मत माँग दया का दान,
 जगत छल का मत कर विश्वास ।

चाहता विभव भोग, सम्मान ?

धोस जल से कब बुझती प्यास ।

धीर बन सुख दुख में रह शान्त
 विश्व मरुपल, सुख मृग जल भ्रात ।

पान कर मदिराघर वा पान,
इसी में स्वर्ग, मुक्ति, कल्याण !

[४३]

प्रणय सहरियो में सुख मधुर
बहे हृदय की तरी निरतर,
जीवन सिंधु अपार ।
इसका वही न धोर - छोर दे,
यह अगाध है, तू विभोर दे,
वृषा विमल विचार !
जीवन की ज्योत्स्ना में चंचल
प्रणय ऊर्मियों में बहता चल,
छोट मोह पतवार !
मधु ज्वाला से हृदय पात्र भर
धूम प्रेयसी के द्राक्षाघर,
डूबे या हो पार !

[४४]

पाप न कर ऐयाम,
पाप कर मत कर पश्चात्ताप !
व्ययं ग्लानि सत्ताप
न इससे मिटता उर का ताप !
पापी, दुगुण पाप
ईश से पाते क्षमाऽभिराम,
प्रभु चिर करुणावान,
पाप भय से रे फिर क्या काम ?

[४५]

सरिता से बहते जाते
चंचल जीवन पल,
आदि अन्त अज्ञात,
ज्ञात बस फेनिल बल बल ।
हार गये सब खोज
मिली पर चाह न निस्तल,
डूब गया जो, पाया
उसने भेद, वह सफल !

[४६]

दुख से मथित, व्यथित यदि तू नित
दुःख न हो दे, विधि गति अविदित ।
पर से निज दुख बदल, यही सुख,
व्यय न रो दे, पी मदिरामृत ।
हृदय पात्र भर, प्रणय छात्र बन,
विस्मृति में कर सुख दुख मज्जित,

स्वप्न फेन धण जीवन के क्षण
हंस हंस साकी को बर अर्पित !

[४७]

मदिराघर चुम्बन, प्रसन मन,
मेरा यही भजन श्री' पूजन ।
प्रकृति वधू से पूछा मैंने
प्रेयसि, तुम्हको दू क्या स्त्री धन ?
बोली, प्रिय, तेरा प्रसन मन
मरा यौतुक, मेरा स्त्री धन !

[४८]

स्तुत्य यदि तेरे काम,
न तेरे गुण से वे, सच जान ।
निच यदि तू अघ प्राप्त,
न तेरा दोष, व्यय अभिमान ।
छोड़ सदसद् अविचार,
बधु, ईश्वर सबका करतार ।
उसी के सब व्यापार,
तुम्हें क्यों भय, मिथ्याहवार !

[४९]

अपना घाना किसने जाना ?
जग मे भा फिर क्या पछताना ?
जो धाते वे निश्चय जाते,
तुम्हको मुम्हको भी है जाना !
बाँध बन्धन, धो साकी सुन्दर,
उठ, कम्पित कर मे प्याली घर,
प्रीति सुधा भर, भीति द्विषा हर,
चिर विस्मृति मे डूवे अन्तर !

[५०]

मद से कम्पित मदिराघर स्मित
साकी, पी दिन - रात !
मुला दे जग के अखिल अभाव,
सुरा प्रेयसि से कर न दुराव ।
जीवन सागर, साकी, दुस्तर,
दुख की भ्रमावात
उठे यदि, तू निज डगमग पाँव
बड़ा दे, सुरा नूह की नाव ।

[५१]

कितने ही कल चले गये छल,
रहा दूर नित मृग जल !

हा दुख, हा दुख, कह-कह सब सुख
 हुआ स्वप्नवत झोझल ।
 भव का पल मत खो रे दुबल,
 पान पात्र भर फैनिल,
 तुहिन तरल जीवन न जाय ढल,
 प्रणय ज्वाल पी गाफिन ।

[५२]

प्रिये, गाग्रो बहार के गान
 मिला स्वर में सलज्ज मुसकान,
 वहाँ मैं मदिराघर मधु पान ।
 सराहूँगा मैं उसके भाग
 सुरा से जिसे मम मनुराग,
 हृदय मे जिसके मादक भाग ।
 उमर को नहीं और कुछ काम
 सग हो प्रेयसि मधुर ललाम,
 रग उर में, बर मे हो जाम ।

[५३]

मुझे यदि मिले स्वग का द्वार
 विनय हो मेरी बारम्बार,
 मदिरा घरों वाली सुकुमारि
 पिलाये मुझे प्रणय मधु धार ।
 नहीं मुझमें ऐसा तप त्याग
 मिले मुझको दुलभ अपवग,
 हृदय मे जो सावी की भाग
 सुरा की घूट मुझे हो स्वग ।

[५४]

चंचल शबनम - सा यह जीवन
 गिरा न दे कल काल समीरण ।
 मत धम, निरुपम प्रणय सुरा भर,
 हाला ज्वालामय हो अंतर ।
 क्षण-क्षण यह मन नव तृष्णाकुल,
 जग का मग काटो से सकुल ।
 जीवन के क्षण मत खो, मूरख,
 साधक, मादक मदिराऽमत चख ।

[५५]

वहाँ वह करुणा, करुणागार,
 विषय रस मे रत मेरे प्राण ।
 पीठ पर लदा मोह का भार,
 कहीं वह दया, करे जो प्राण ।
 मुझे यदि मिला स्वग का द्वार,
 उमर जप-तप कर या दे दान,

उपाजन होगा वह, उपहार
न बरणा वा, प्रभु का वरदान ।

[५६]

हे मेरे भ्रमर सुरा वाहक,
निज प्रणय ज्वाल सी सुरा ताल
तुम भरो हृदय घट मे मादक ।
चिर स्नेह हीन मेरा दीपक
दीपित न करोगे तुम जब तक
कैसे पाऊंगा दिव्य भक्त ?

भ्रमरो पर घर निज मदिराघर
तुम जिसे पिलाते हो क्षण भर
वह तुम पर हो चिर योछावर
मधु घट सा उठता छलक छलक ।

हे मेरे मधुर सुरा वाहक,
मैं हूँ मधु भ्रमरो का ग्राहक ।
ढालो निज पावक दुख-दाहक
मद से हो जायें भवसा पलक ।

[५७]

उमर रह, धीर वीर बन रह,
सुरा के हित अधीर बन रह ।
प्रेम का मात्र याद कर रह,
न व्यथ विवाद वाद कर रह ।

प्रणय की पाय धूल बन रह,
सदा हँस, गंध फूल बन रह ।
किसी की मधुर चाह बन रह,
यार के लिए राह बन रह ।

[५८]

राह मे यो मत चल, खंयाम
डरें सब, करें सलाम ।
न मसजिद ही मे तुझे इमाय
बनायें, सुनें बलाम ।

न सब मे धन तू स्वय प्रधान,
डे हो दे सम्मान,
मधुर बन विनयी बन, मतिमान,
सभी को समझ समान ।

[५९]

तक्षण साकी भी हो जो साथ
भ्रमर पर घरे मधुर मुसकान,
सुरा के रंग की भी भ्रविराम
मदिर जो, ब्रष्टि करें भगवान ।

स्वर्ग की हूँ स्वयं उतर
 सुनाएँ भी जो अश्रुत गान,
 नहीं यदि प्रेमोन्मत्त हृदय
 स्वर्ग भी है तब नरक समान ।

[६०]

उमर पी साँस - साँस में चाह,
 सतत कर हास विलास,
 गले में डाल प्रिया की बाह,
 पान कर मुख उच्छ्वास ।
 साँत जीवन, अनंत सुख भोग,
 सब्बे, क्षण - क्षण अनमोल,
 गँवा मत मधुर स्वर्ण सयोग,
 अघर मधु पी जी खोल ।

[६१]

विरह व्यथित मन, साकी, तत्क्षण
 अघरामृत पी होता विस्मृत
 कलुषित अंतर रति से धूल कर
 बनता पूत, सुरा समाधि स्थित ।
 शोक द्रवित होता आनंदित
 मादक मदिराघर कर चुम्बित,
 उसे न सुख दुख, वह नित हंसमुख,
 स्वर्ग फूल सा भू पर लुण्ठित ।

[६२]

ढालता रहता वह अविराम,
 उमर पात्रो में मदिराघर,
 सुनहले स्वप्नो का मधु फेन
 हृदय में उठता बारम्बार ।
 डूबते हमसे तुमसे, प्राण,
 सहस्रो उसमें बिना विचार ।
 भरा रहता साकी का जाम,
 विगडते बनते शत ससार !

[६३]

श्यामल, दूर्वा दल स्मित भूतल,
 रग भरा फूलो का अचल,
 यह क्या कुछ कम ? उसपर शबनम
 कौपती पलडियो पर चचल ।
 चुवा चुवा नव कुसुमो का रग
 साकी हाला से भर अंतर,
 फिर न रहेगी यह बहार
 हम तुम तूण, शबनम, कुसुम, पात्र भर ।

[६४]

सीता की प्रीचा से भर भर
गाती हो मदिरा स्वर्णिम स्वर,
गान निरत उर, वाद्य रव मधुर,
नूपुर ध्वनि हरती हो धतर ।

हाला वे रंग मे तन मन लय,
मुग्धा बाला हो संग सहृदय ।
फिर सुरपुर सम हो जग निरुपम,
विधि स क्षमतावान बने नर ।

[६५]

चंचल जीवन स्रोत
बहुता व्याकुल वेग,
पुलिन - फेन - परिप्रोत
सुख दुख, ह्योद्वेग ।
ले बहु भाव तरंग
मगुर बदनुद गान
मिलता वारिधि सग
एक रूप हो, प्राण ।

[६६]

यह जग मेघो की चल माया,
भावी, स्वप्नो की छल छाया ।
तू बहती सरिता के जल पर
देख रहा अपनी प्रतिछवि नर ।

उठ रे, कल के दुख से व्याकुल,
जीवन सतरंग वाप्यो का पुल ।

कल का दुख केवल पागलपन,
पल पल बहुता स्वप्निल जीवन ।
ले, उर मे हाला ज्वाला भर,
सुरा पान कर, सुधा पान कर ।

[६७]

प्रेम के पाथवास मे आज
मस्त का पहना मैंने ताज ।
आत्म विस्मृति, मदिराघर पान
यही मेरा जप जान ।

विश्वमय का जो विशद निवास
व्याप्त उसमे मेरे चिर प्राण,
उच्च मस्तक मेरा आकाश,
गात्र ब्रह्माण्ड महान ।

[६८]

स्वर्गिक अप्सरि-सी प्रिय सहचरि
हो हंसमुख संग,

मधुर गान हो, सुरा पान हो
 सज्जायण रंग ।
 बल-बल छल छल बहुता हो जल
 तट हो कुमुमित,
 कोमल सादल चूमे पद तल,
 सात्री हो स्मित ।
 इससे प्रतिशय स्वग न सुखमय
 यही सुर सदन,
 छोड़ मोह भय, मदिरा म लय
 हो विमूढ मन ।

[६६]

विरह मणित उर का प्रमोद
 मधुर मदिरामृत पान,
 पूय जीवन का मात्र प्रमोद
 सुरा, सात्री, प्रिय गान ।
 प्रणय रस भरा हृदय का जाम,
 विरह व्याकुल चिर प्राण,
 उमर को रे किससे क्या काम
 सुरा में कर, मन, स्नान ।

[७०]

सुरा में दुरा स्वग का सार,
 भले ही उमर खुमार ।
 सुमन उर में सौरभ उदगार,
 भले तन छेदे खार ।
 प्रेमसी का उर प्रणयागार,
 वश्यता भी स्वीकार ।
 मिलन में मर्मोत्सास धपार,
 विरह का भी यदि मार ।

[७१]

विश्व वीणा का जो बल गान,
 प्रेम वह गान ।
 तरुण पिक की जो मादक तान,
 प्रेम वह तान ।
 वहाँ नारी के कोमल प्राण ?
 प्रेम में प्राण ।
 हृदय भरता नित किसका ध्यान ?
 प्रेम का ध्यान ।
 रूप के मधुवन का जो फूल,
 प्रेम वह फूल ।
 बसकता उर में चिर जो शूल,
 प्रेम वह शूल ।

रहस जीवन लतिवा का मूल ?
 प्रेम वह मूल !
 दुख-सुखमय ससति की मूल ?
 प्रेम वह मूल !

[७२]

प्रणम का हो उर म उभेप
 सुरा पर यदि विश्वास !
 सफल हो जीवन का आवेश
 हृदय मे यदि उल्लास !
 श्वास हो जब तक अन्तिम शेष
 सखे, कर हास विलास !
 मिटा हाला से जग के बलेश,
 प्रिया संग कर सहवास !

[७३]

तुम्हारा रक्तिम मुख अभिराम,
 भरा जामे जमशेद !
 घिरा मदिरा का फेन ललाम,
 वदन पर रति सुख स्वेद !
 निछावर करना तुम पर प्राण
 तोड जीवन के बाध,
 प्रतीक्षा मे रहना प्रति याम—
 यही स्वर्गिक आनन्द !
 तुम्हारे चरणो पर हो माध,
 मात्र उर की अभिलाप !
 तुम्हारे पद रज कण मे, नाथ,
 भरा शत सूर्य प्रकाश !

[७४]

मधुर साकी, उर का मधु पात्र
 प्रीति से भर दे तू प्रति बार,
 जम जमो की मेरी साध
 सुरा हो मेरी प्राणाधार !
 मुझे कर मधु स्वप्नो मे लीन,
 मृत्यु हो मेरी मदिराधीन !
 बनू मैं बन मग हाला बीन,
 यही हो वृद्ध उमर का दीन !

[७५]

यह हंसमुख मधु द्रुवदिल
 है आज बना क्रीडा स्थल !
 इसने मेरे हित फैलाया
 श्यामल पुलकित अचल !

मेरे तन की रज पर बल
 यह द्रव लिलेगी कोमल,
 योई सुन्दर साकी उस पर
 सेलेगा फिर कुछ पल ।

[७६]

उस हरी द्रव के ऊपर
 छाया जो बादल सुन्दर,
 वह बरस पडा भव भर भर,
 यह चला गया हैस रोवर ।

अह, भार हुआ यह जीवन
 ज्यो अश्रु भरा सावन घन,
 साकी के मधु अशरो पर
 भर भर ही जाय निछावर ।

[७७]

मनुज कुछ धन म जिनके प्राण,
 जिहें निज नृप बुलवा अभिमान ।
 उमर कुछ वे, जो विद्यावान
 चाहत यश पूजन सम्मान ।

व्यक्ति ऐसे भी, जिनका ध्यान
 स्वयं पर, करते जप - तप दान,
 हटेगा प्राणो से व्यवधान,
 सभी ये सुरा विमुक्त, अज्ञान ।

[७८]

जिसके प्रति अपनाव
 वही अपना खंयाम ।
 जिसमें है दुर्भाव
 गंर है उसका नाम ।
 विष दे जीवन दान
 सुधा वह बने ललाम,
 मधु अहि दश समान
 न विस्मति दे यदि जाम ।

[७९]

यदि तेरा अचल वाहक
 मैं भी बन सकता, प्रियतम ।
 भर देती उर धावो को
 तेरी वरणा की मरहम ।
 उस निस्तल मधु सागर से
 पीते जिसे जड चेतन
 साकी, मैं भी पा जाता
 तब एक बूद उर मादन ।

[८०]

इस पल - पल की पीडा का
वह, मोल कहाँ है, साकी !
यह स्वग मत्स्य से बढ़कर
अनमोल दवा है, साकी !
भर दे फिर उर का प्याला
छबि की हवाला से सुदर,
जग के देशों से उसका
है एक बूद श्रेयस्कर !

अपनी चिर उमद वितवन
तू फेर इधर को क्षण भर,
तेरे ये निस्तल लीचन
पृथ्वी नभ से भी दुस्तर !
इस धूल - धूल कर मिटने की
चिर गूढ क्या है, साकी !
यह स्वग मत्स्य से बढ़कर
अनमोल व्यथा है, साकी !

[८१]

वह प्याला भर साकी सुदर,
मज्जित हो विस्मृति मे अंतर,
धय उमर वह, तेरे मुख की
शाली पर जो सतत निछावर !
जिस नभ मे तेरा निवास
पद रेणु कणो से वहाँ निरंतर
तेरी छबि की मदिरा पीकर
धूमा करते कोटि दिवाकर !

[८२]

पान करना या करना प्यार
उमर यदि हो अपराध,
साधुवर, क्षमा करो, स्वीकार
न मुझको वाद विवाद !
करो तुम जप पूजन उपचार,
नवागो प्रभु को माध,
सुरा ही मुझे सिद्धि साकार,
मधुर साकी हो साथ !

[८३]

अम्बर फिर फिर क्या करता स्थिर
यह चिर अविदित !
छीन स्वप्न सुख, देता क्यो दुख
वह सबको नित !

बीते युग ढाण बरते चित्तन
 स्थिर न हुआ चित,
 बिया क्या उमर, गेवा दी उमर,
 रहा अनिश्चित ।

[८४]

हुआ इस जग में ऐसा कौन
 विषय रस बिया न जिसने पान ?
 मिला ऐसा निमल न स्वभाव
 रहा भ्रम से जो चिर अनजान ।
 भ्रमर ही वृद्ध उमर में दोष
 न साकी, करना उस पर रोष ।
 पात के प्रति करना आघात
 तुम्हारा रहा न कभी विधान ।

[८५]

भ्रमर साकी, तेरा पागल
 न हो तुममें तमय, तल्लीन,
 उमर वह मृत्यु दण्ड के योग्य
 भले ही वह मसूर नवीन ।
 सुरा पीकर हो वह विस्मृत,
 भजन पूजन में ही कि प्रवीण,
 नहीं वह दया क्षमा के योग्य
 भक्ति श्रद्धा से यदि वह हीन ।

[८६]

स्नेहमय हुआ हृदय का दीप
 प्रिया की रूप शिखा घर मौन ।
 प्रेम के हित दे निज बलिदान
 नहीं जी उठा सखे, वह कौन ?
 दीप का करना यदि गुण गान,
 शलभ से कहो, जिसे अपनाव,
 उमर यह है निगूढ़ कुछ बात,
 जलो पर पड़ता अधिक प्रभाव ।

[८७]

उमर क्यों मया स्वर्ग की तपा ?
 कल्पना मात्र शून्य अपवग,
 घरा पर ही यह जीवन स्वग ।
 स्वग का नूर सुरा, प्रिय हूर,
 सुरा सुदरी यहाँ कब दूर ?
 गान, मधु पान पात्र भरपूर !
 हरित वन तीर, तरंगित नीर,
 सुरा भ्रगूरी, मंदिर समीर,
 सखे, हाला भर, हृदय घधीर ।

[८८]

जब तुम किसी मधुर अवसर पर
मिलो कहीं है वधु परस्पर,
एक - दूसरे पर हो जाओ
तुम अपने को भूल निछावर ।

जब हँसमुख साकी आ सु दर
अधरो पर घर दे मदिराघर,
वृद्ध उमर को भी तब क्षण भर
कर लेना तुम याद दया कर ।

[८९]

बाला सु-दर, हाला घट भर,
उमर हमारे प्रिय सहचर नित ।
उर का सुख दीपक बन हँसमुख
सुहृद् सभा करता आलोकित ।

प्रेम अशन, आनन्द, वसन,
तन पुलक अकुरित, हृदय उल्लसित,
जो कुछ प्रियतर सुखद मनोहर
सखे, हमारे लिए विनिर्मित ।

[९०]

तद्रिल तरुतल, छाया शीतल,
स्वप्निल ममर ।
हो साधारण खाद्य उपकरण,
सुरा पात्र भर ।
याओ जो तुम प्रेयसि निरुपम,
गीत मनोहर,
फिर यह निजन स्वयं सदन सम
हो चिर सुखकर ।

[९१]

मुख छवि विलोक जो अपलक
रह जाय न, वे क्या लोचन ?
विरहानल मे जल - जलकर
गल जाय न जो, वह क्या मन ।
तुम्हको न भले भाता हो
प्रेमी का यह पागलपन,
उर - उर मे दहक रहा पर
तेरे प्रेमानल का कण ।

[९२]

प्रिया तरुणी हो, तटिनी कुल,
अरुण मदिरा, बहार के फूल,
मधुर साकी हो, विधि अनुकुल,
दद दिल जावे अपना भूल ।

खुली हो मदिरालय की राह,
 छलकता हो नभ घट से माह,
 मंदिर नयनी की हो बस चाह,
 उमर जग से हो लापरवाह ।

[६३]

जगत छलना की उहें न चाह,
 धीरे जो नर, धीमान ।
 सुरा का बहता रहे प्रवाह,
 डब जायें तन प्राण ।
 सुराही से हो सुरा प्रपात,
 दद से दिल बेताब ।
 मूख वे, खाते गम दिन रात,
 उमर पीते न शराब ।

[६४]

मेरी मधुप्रिय आत्मा प्रभुवर,
 नित्य तुम्हारे ही इगित पर
 चलती है मधु विस्मृति होकर ।
 मेरा काय कलाप तुम्हारा,
 धर्म वचको से मैं हारा,
 पाप पुण्य में मैं प्रभु अनुचर ।
 निखिल लालसाएँ जब उर मे,
 भरते सतत तुम्ही निज सुर मे,
 तब क्यों हे चिर जीवन सहचर ।
 दोष रोष का हो मुझको भय,
 कुटिल कम क्यों हो न सभी क्षय,
 जब प्रभुवर चिर करुणा सागर ।

[६५]

पान पात्र था प्रेम छात्र ।—
 प्रेयसि के कुचित अलको मे
 उलझा था बंदी पलको मे ।
 प्रीवा पर थी मूठ सुघर
 मृदु बाह, मधुर आलिंगन मुख
 लेती थी प्रेयसि का उत्सुव ।

[६६]

वह हृदय नहीं
 जिसमे प्रियतम की चाह नहीं ।
 वह प्रणय नहीं
 जिसमे विरहानल दाह नहीं ।
 वह दिवस नहीं
 यदि अविरत सुरा प्रवाह नहीं ।
 वह वयस नहीं
 जो बाला के गल बाह नहीं ।

[६७]

अगर हो सकते हमको ज्ञात
नियति के, प्रिये, रहस्य अपार,
जान सकते हम विधि का भेद,
विश्व में क्यों चिर हाहाकार !

धूण कर जग का यह मद पान
उडा देते घनत में धूल,
और फिर हम दोनों मिल, प्राण,
उसे गढते उर के अनुकूल !

[६८]

चाँद ने मार रजत का तीर
निशा का अचल डाला चीर,
जाग रे, कर मदिराधर पान,
भोर के दुख से हो न अघोर !

इंदु की यह अमद मुसकान
रहेगी इसी तरह अम्लान,
हमारी हृदय धूलि पर, प्राण,
एक दिन हँस देगी घनजान !

[६९]

छलक नत नीलम घट स मौन
मुसकुराता प्राती जब प्रात,
स्फटिक प्याली कर मे घर, बंधु
ढाल मदिरा का फेन प्रपात !

लोग कहते, सुनता ख्याम,
सत्य बटु होता, यह प्रख्यात !
सुरा बडवी है सबको ज्ञात,
पान करना ही सच्ची बात !

[१००]

गगन के अचल तुरग को साध
कसी जब विधि ने जीन लगाम,
उदलित तारो की लडियाँ बाँध
गले में डाली रास ललाम !

उसी दिन मानव ने हित, प्राण,
रचा स्रष्टा ने चिर अज्ञान,
अहंनिस कर मदिरापर पान,
उसे मिल सवे मोक्ष, बत्याण !

[१०१]

मधु के दिक्कत, गंधबहू सामस
डोल रहा घन मे भर ममर !
सकड़ण घन फूँको का घानन
धुसा रहा, बरसा जल सीवर !

गाती बुलबुल, भीरु कुसुमकुल,
खोलो मधुपायी मदिराघर !
खिल जाये मन, रग जाये तन,
पी लो, पी लो मदिरा की भर !

[१०२]

सलज गुलाबी गालों वाली
हाला मेरी चिर सहचर,
बिना मादनी का जग जीवन
बिना चाँदनी का भ्रम्वर !
वे कहते हैं विधि वजित है
इस जीवन मे मदिरा पान !
मुझे सुलभ वह यहाँ, स्वर्ग मे
पिये मूढ अपना अनुमान !

[१०३]

कितने कोमल कुसुम नवल
कुम्हलाते नित्य घरा पर भर भर,
यह नभ अब तक सुन प्रिय बालक,
मिटा चुका कितने मुख सुंदर !
मान न कर चंचल जीवन पर
यह मदिरा का बुद्बुद अस्थिर,
सरिता का जल, जीवन के पल
लौट नहीं आते रे, फिर फिर !

[१०४]

नवल हर्षमय नवल वय यह,
कल की चिंता भूलो क्षण - भर,
लाला के रंग की हाला भर
प्याला मदिरा घरो अघरो पर !
फेन बलय मधु बाँह पुलकमय
स्वप्न पाश सी रहे कण्ठ मे,
निष्ठुर यगन हमे जितने क्षण
प्रेयसि, जीवित धरे दया कर !

[१०५]

फूलों के कोमल करतल पर
भ्रोसी के कण लगते सुंदर,
मुग्धा का मदिरालस ध्यान
उमर मुग्ध कर लेता अंतर !
भ्रो रे, कल के मोह से मलिन,
बीत गया अब वह कल का दिन !
उठ, अब हँसवर पान पात्र भर,
चूम प्रेयसी के मदिराघर !

[१०६]

भादक स्वप्निल प्याला फैनिल
 साकी, फिर फिर भर घन्तर वा,
 आलोकित जिनका उर निश्चित
 पीत वे मधु मदिराघर का ।
 जग के तम से, सशय भ्रम से
 मोह मलिन जिनका मन मंदिर,
 उनके भीतर जीवन - भास्वर
 जलता दीप न साकी का फिर ।

[१०७]

मधु के घन से, मन्द पवन से
 गघ उच्छ्वसित अब मधु कानन,
 निज मर्महित मधु उर का क्षत
 विस्मृति से तू भर ले कुछ क्षण ।
 सघन कुज तल छाया शीतल,
 बहती मथर धारा कल - कल,
 फलक ताकता ऊपर अपलक,
 आज घरा यौवन से चंचल ।
 मदिरा पी रे धीरे धीरे
 साकी के अघरो की कीमल,
 उसे याद कर जिसकी रज पर
 आज अकुरित नव दूर्वादल ।

[१०८]

सरित पुलिन पर सोया था मैं
 मधुर स्वप्न सुख मे तल्लीन,
 विधुवदनी बँठी थी समुल
 कर मे मधु घट घरे नवीन ।
 झलक रहा था मंदिर सुरा मे
 प्रेयसि का मुख विम्ब तरल
 रजत सीप मे मुक्ता जैसे
 प्रात सर मे रक्त कमल ।
 उसी समय मेरे कानो में
 गुंज उठी कण्ठध्वनि धीर,
 बीती रात जाग रे गाफिल,
 तज सुल स्वप्न, हुमा अब भोर ।

[१०९]

निभृत विजन से मेरे मन मे
 हुमा एक दिन स्वप्नाभास,—
 मृग्य यौवना गीत गुनगुना
 बँठी है ज्यो मेरे पास ।

मेरा मन खो गया विहग बन
 नयन नीलिमा मे तत्काल,
 वैभव सुख की, सुत के मुख की
 रही न फिर मुझको अभिलाप ।

[११०]

उमर तीप यात्री ज्यो खबर
 वरते क्षण - भर को विश्राम,
 नगर प्रात के पास खोजकर
 ममर तरु छाया अभिराम ।
 नवपरिचित सुहृदो से करते
 बैठ घडी - भर स्नेहालाप,
 उसी तरह हम जीवन - पथ के
 पाथ जुटे जग मे क्षण याम ।

[१११]

तू प्रसन्न रह, महाकाल यह
 है अनन्त, विधि गति अनिवार,
 नक्षत्रो की मणियो से नित
 खचित रहेगा गगन अपार ।
 वे इँटें जो तेरे तन की
 मिट्टी से होगी तैयार,
 किसी शाह के रगमहल की
 सखे, बनेंगी वे दीवार ।

[११२]

मेरे नयनो के आँसू का
 एक बूद यह पारावार,
 क्रीडा की प्रिय सामग्री का
 एक सीप यह व्योम उभार ।
 मेरे शोकानल का केवल
 एक अग्निकण नरक प्रचण्ड,
 उर के सुख के एक दिवस का
 एक मधुर क्षण स्वर्ग अपार ।

[११३]

यदि मदिरा मिलती हो तुझको
 ध्यय न कर, मन पश्चात्ताप,
 सी - सी वचक तुझको घेरे
 करें भले ही आत्त प्रलाप ।
 ऐसे समय सुहाता किसको
 नीरस मनस्ताप, खँयाम,
 फाड रही जब कलिका अचल,
 बुलबुल करती प्रेमालाप ।

[११४]

छोड काज, आग्नो मधु प्रेयसि,
बैठो वृद्ध उमर के सग,
कंकुवाद श्री' कंकुसरू का
छेडो मत प्राचीन प्रसग !

हुआ धराशायी चिर रस्तम
जीत जगत जीवन सग्राम,
रहा न हातमताई का भी
सा घ्य भोज का अब रस - रग !

[११५]

वह मनुष्य जिसके रहने को
हो छोटा आगन, गह द्वार,
खाने को रोटी का टुकडा
पीने को मदिरा की धार !
जो न किसी का सेवक शासक,
हंसमुख हो जिसके सहचर,
बहता उमर सुखी है वह नर,
स्वग उसे है यह ससार !

[११६]

तूस और काऊस देश से
एक बूद मदिरा सुंदर,
कंकुवाद के सिंहासन से
सुधर प्रिया के मदिराघर !
मधुपायी जो नाला करता
उमर नित्य उठ प्रात काल
सो मुल्लाओ के अजान से
वह प्रभु को प्रिय है बढकर !

[११७]

बिन्दु सिंधु से उमर विलग हो
करता सतत रुदन कातर,
हस हंसकर नित कहता सागर
में ही है तेरे भीतर !
निखिल सृष्टि मे व्याप्त एक ही
सत्य, न कुछ उसके बाहर
फिर अलण्ड बन जायेगा तू
अगर पी सने मदिराघर !

[११८]

वीणा वशी के दो स्वर जब
हो जाते आपस मे सय,
प्रिये, हमारा मधुर मिलन भी
हो सकता सुखमय निरचय !

मदिरा की विस्मृति में जब दो
 हृदयों का होता विनिमय,
 उन्हें न बिछुड़ा सक्ता कोई,
 इसमें नहीं तनिक संशय ।

[११९]

सुरापान की, प्रणय गान की
 सखे, समझते जो अपराध,
 जो रुखे सूखे साधु हैं,
 भाता जिनको वाद - विवाद,
 स्वर्गलोक जाकर वे उसको
 कर देंगे नीरस, छविहीन,
 स्वर्ग प्राप्ति से तब क्या फल ? हम
 यही सुरा पी हरे विपाद ।

[१२०]

प्रिये, तुम्हारी मृदु प्रीति पर
 भूल रही जो मुक्तामाल,
 वे सागर के पलने में थे
 कभी सीप के हसमुख बाल ।
 भलक रहे प्रिय श्रगो पर जो
 मणि-माणिक रत्नालंकार,
 वे पर्वत के उर प्रदेश के
 कभी सुलगते थे उद्गार ।
 गूढ रहस्यों की जीवन के
 नित्य खोजते हैं जो लोग
 वही स्वर्ग की रत्न राशि का
 उमर प्रतुल करते उपभोग ।

[१२१]

ह मनुष्य, गोपन रहस्य यह
 स्वर्गलोक से हुआ प्रकाश,
 मात्र तुम्हारे अंतर से ही
 निखिल सृष्टि का हुआ विकास ।
 तुम्ही देवता हो, तुम दानव,
 हिंसक पशु, स्नेही मानव,
 तुम्ही साधु, खल, स्वर्गदूत
 दुष्कृती तुम्ही तुम नित अभिनव ।
 तुम्ही मात्र अपनी तुलना हो,
 तुमसे सब कुछ है सम्भव,
 सखे तुम्हारे ही स्वप्नों से
 हुआ तुम्हारा भी उद्भव ।

[१२२]

बाहर - भीतर ऊपर - नीचे
 जुटा मनत समाज,

मायामय की रगभूमि में
छाया - अभिनय भ्राज !

इन्द्रजाल का खेल हो रहा,
दीप, सूर्य, ग्रह, चाँद,
स्वप्नाविष्ट खेलते सब जन
यहाँ सहृदय विपाद !

[१२३]

तेरा प्रेम हृदय में जिसके
हुआ अकुरित, बना विभोर,
उस मम में छिपा, अश्रु से
सीचेगा वह प्रिय, निशि भोर !

भले परीक्षा भिस या छल से
भटके तू अपना अचल,
वभी न छोड़ेगा यह दामन
फिरे न जब तब करुणा कोर !

[१२४]

लाभो, हे लज्जास्मित प्रेयसि,
मदिर लालिमा का घट सुन्दर,
मधुर प्रणय के मदिरालस में
भ्राज डुबाओ मेरा अन्तर !

जानी, रसिक विमूढो को जो
बाँदी कर निज प्रीतिपाश में
विस्मृत कर देती क्षण भर को,
लाभो वह मनुज्वाल पात्र भर !

[१२५]

मदिर नयन की, फूल वदन की
प्रेमी को ही चिर पहचान,
मधुर गान का, सुरापान का
मीजी ही करता सम्मान !

स्वर्गोत्सुक जो, सुरा विमुख जो
क्षमा करे, उनको भगवान,
प्रयसि का मुख, मदिरा का सुख
प्रणयी के, मद्य के प्राण !

[१२६]

उस गुलवदनी को पाकर भी
पा न सकोगे उसका प्यार,
जब तक क्रूर विरह का कण्टक
सखे, न कर देगा उर पार !

कधी को लो, तार-तार जब तक
न हुआ था उसका गात,

फेर सकी वह नहीं उगलियाँ
प्रेयसि झलकी पर सुकुमार ।

[१२७]

अधकार मे लिखा हुआ जो
कौन पढ सका उसका भेद ?
इस निगूढ जग का रहस्य
चिर अविदित, सखे, करो मत खेद ।

जिसे सुधार सके न पार कर
जानी गुणी, यती, धीमान्
उसी अधवीथी का क्या तुम
आज करोगे । अनुसंधान ।

आधो, वृद्ध उमर के सँग सब
बैठ, करो क्षण मदिरापान,
स्वग प्राप्ति का, स्वग भोग का
तुमने अजर लिया व्रत ठान ।

[१२८]

आतप आकुल मदुल कुसुम कुल
हरने मम तपा निज, प्राण,
ऊपर उठकर हृदय । पात्र भर
करता स्वग सुधा का पान ।

तू भी जगकर अमर सुरा भर
सुज सुमन बन हे अनजान,
उसी फूल - से सभी धूल से
उपजे हम बालक नादान ।

एक प्रात द्रुत हमे वृत्तच्युत
करके निमम नभ तत्काल
दून्य पात्र सा मात्र मात्र यह
फूल, धूल मे देगा डाल ।

[१२९]

उमर न कभी हरित होगा फिर
पलित वयस का गलित लिवास,
भरे मन अनुकूल, फिरेगा
भाग्यचक्र, यह व्यथ प्रयास ।

पान पात्र, भर ले मदिरा से
शोक न कर, मदिरा कर पान,
कभी सुराही टूट, सुग ही
रह जायेगी, कर विश्वास ।

[१३०]

अध मोह के अध तोड़कर
तू स्वच्छन्द सुरा भर पान,

क्षण-भर मधु अघरो का मिलना,
 यह जीवन विधि का वरदान ।
 स्वप्नों के सुख में वह बेमुघ,
 मंदिर गघ से भर ले प्राण,
 उमर कहीं से आये हम,
 जायेंगे कहीं, नहीं कुछ जान ।

[१३१]

जिसके उर का अघकूप
 हो उठा प्रीति जल से परिष्कृत,
 हँसने - रौने में न गंवाता
 वह अमूल्य जीवन क्षण निश्चित ।
 प्रिय चरणों पर उमर निछावर
 चलता स्वतः स्फुरित मंदिरामृत,
 लाला के रँग की हाला भर
 पीता बाला के संग प्रमुदित ।

[१३२]

सानी, ईश्वर है करुणाकर,
 उसकी कृपा अपार क्षमामय,
 दुष्कृत से फिर तू क्यों बचित,
 सबके लिए समान सुरालय ।
 दान-पुष्प फल यदि करुणाचल,
 "याय दया में तम क्या अन्तर ?
 छोड़ कलुष भय, हो निःशय,
 पाप दया सहचर हैं निश्चय ।

[१३३]

हाय, कही होता यदि कोई
 बाधाहीन निमूत सस्थान
 मम व्यथा की क्या मुलाकर
 जहाँ जुड़ा सकता मैं प्राण ।
 वही कहीं छिप उमर अश्चिन
 करता क्षण भर को विग्राम,
 जीवन-पथ की धारित-कलाति हर
 करता इच्छित मंदिरापान ।

[१३४]

प्रिये, तुम्हारे बाह्यपाश के
 सुख में सीया मैं उस बार
 किसी पनीन्द्रिय स्वप्नलोक में
 करते या बेमुघ अभिसार ।
 सहसा आकर प्रात वात ने
 बिखरा ज्यों हिमजल की डार ।

छिन्न कर दिया मेरे स्वर्गिक
स्वप्नों के सुमनों का हार !

[१३५]

शोतल तरहछाया में बँठे
हरते थे निज क्लान्ति पाप जन,
कम्पित कर से पान पात्र भर,
देख सुरा का रक्षितम भ्रान्त !

हँसमुख सहचर मधुर कण्ठ से
गाते थे मदिरालस लोचन,
बोला हँसकर एक पात्र भर
उमर बीत जायेंगे ये क्षण !

[१३६]

मेरी भात्मा जो कि तुम्हारी
प्रीति सुरा की पीठी घर,
भटक रही किस रोप दोष वश
वह इस जग में बारम्बार !

पहले तुमने कभी न ऐसा
नाथ, किया निमम व्यवहार,
भोग रही वह आज दण्ड क्यो,
वहन कर रही जीवन भार !

[१३७]

तेरे करुणाम्बुधि का केवल
एक भाग यह नीलाकाश,
तेरे प्रांगत के कोने में,
सौ सजीव काबो का वास !
यदि मैं तेरे दया द्वार तक
पहुँच सकूँ, जीवन हो धन्य,
थककर मग ही मैं रह जाऊँ
तो न व्यथ हो वह प्रायास !

[१३८]

तेरी कातिल धृति से मेरा
सावी, जो कट जाये सर
नयनों के धन भी बरसायें
रुधिर क्षत्रियों की जो भर !

रोम - रोम मेरे शरीर का
यदि जी उठे पृथक तन धर,
एक-एक कर कर्हूँ न तुझ पर
घगर निछावर, मैं कायर !

[१३९]

इस जग की चल छाया चित्रित
रग यवनिका के भीतर

छिप जायेंगे जब हम प्रेयसि,
 जीवन का छल अभिनय कर ।
 रग घरा पर हास - मधु के
 दृश्य रहेंगे इसी प्रकार
 हम न रहेंगे मायामय का
 पर न खेगा खेल, उमर !

[१४०]

निस्तल यह जीवन रहस्य,
 यदि धाह न मिले, वधा है खेद ।
 सौ मुख से सौ बातें वह लें
 लोग भले, तू रह अक्लेद ।
 सूक्ष्म हृदय इस मुक्ताफल का
 वभी न कोई पाया बेध,
 गोपन सत्य रहा नित गोपन,
 भेद रहा - चिर अविदित भेद ।

[१४१]

सौ - सौ घर्माघो से बड़वर
 पूत एक मदिरा का जाम,
 चीन देश से भी अमूल्य रे,
 मधु का फँसा फेन लताम ।
 निखिल सृष्टि की प्रिया सुरा यह,
 जीवों के प्राणों की सार,
 सौ - सौ गुलवदनो से मादक
 गुलनारी मदिरा, खँयाम !

[१४२]

बुभुता ही जीवन प्रदीप जब
 उसकी मदिरा से मरना,
 मत्स्य स्पश से। मुरभाये
 पलको को मधु से तर करना ।
 द्राक्षा दल का अमराग मल
 ताप विफल तन का हरना,
 स्वप्निल अगूरी छाया मे
 वध्र बना, मुक्को धरना ।

[१४३]

सुनता है रमजान माह का
 उदय हुआ अब पीला चाँद,
 मदिरालय की गलियों मे अब
 फिरान सकूया कर फरियाद ।
 मैं जी - भर शावान महीने
 पी सूगा मदिरा इतनी,

पडा रहै अलमस्त ईद तक
रह न रोजो की भी याद ।

[१४४]

मधुमाला के साथ सुरा पी,
उमर विजन म कर तू वास,
जग से दूर, जहाँ जीवन के
तापो का न मिले आभास ।
दो दिन का साथी यह जीवन
ज्यो वनफूलो का आभास,
गुलबदनो स मधु अघरो से
कर ले कुछ क्षण हास विलास ।

[१४५]

लता द्रुमों, खग पशु कुसुमों मे
सकल चराचर मे अविचार
भरी लबालब जीवन मदिरा
उमर कह रहा सोच विचार ।
पान पात्र हो भले टूटते
मदिरालय म वारम्बार
लहराती ही सदा रहगी
जग म बहती मदिराधार ।

[१४६]

यहा उमर के मदिरालय मे
कोई नही दुखी या दीन,
सबकी इच्छा पूरी करती
सुरा बना सबको स्वाधीन ।
जब तक आशा श्वासा उर मे
सखे, करो मदिराधर पान
क्षण भर को भी रह न मानस
जग की चिन्ता मे तल्लीन ।

[१४७]

आह, समापन हुई प्रणय की
मम कथा, जीवन का पत्र ।
सुख स्वप्ना का नव वसत भी
हुआ शिथिल सा शून्य अक्षर ।
मनोल्लास का स्वर्ण विहग वह
या किशोरपन जिसका नाम
उमर हाय, जाने कब आया
और उड गया कब अक्षर ।

[१४८]

सतत यत्न कर सुख हित कातर
जजर प्राण, जीण अब देश,

श्रीहत तन, निर्वेद युक्त मन,
 कुण्ठित यौवन का घावग ।
 तलछट मात्र रही भ्रम मदिरा
 रिक्तप्राय साकी का जाम,
 पात नहीं पर वृद्ध उमर के
 वष आयु के कितने शेष !
 [१४६]

हाम, चुक गया भ्रम सारा घन,
 रिक्त हो गया जीवन कोप ।
 बुझा चुका यह काल समीरण
 कितन प्राण दीप निर्दोष ।
 लौट नहीं आ पाया कोई
 जाकर फिर जग के उस पार,
 उमर पूछकर हाल यहाँ के
 पथिकों का करता सतोष ।
 [१५०]

धमक्कको को यदि मुझसे
 कभी मित्रता हो स्वीकार
 वे मेरे दुखों के बदले
 इतना मात्र करें उपकार,—
 मेरे मरने बाद देह की
 रज से ईंटे कर तैयार
 चुनवा दें वे मदिरालय के
 खंडहर की टूटी दीवार ।
 [१५१]

दा शब्दों में कह दू तुमसे
 उमर घत में सच्ची बात,
 उसके विरहानल में जलकर
 पायेगी यह राख नजात ।
 और उसी की प्रीति सुरा से
 दीपशिखा सी उठ तत्काल
 पुन जी उठेगी, ज्योतिष कर
 महामृत्यु की काली रात ।

श्री सुमित्रानन्दन पंत

कौसानी, जि० अल्मोडा में जन्म २० मई, १९००। जन्म के छ घण्टे बाद मा की मृत्यु। गोसाइदत्त नामकरण। १९०५ में विद्यारम्भ। १९०७ में स्कूल में काव्यपाठ के लिए पुरस्कार। १९१० में अपना नाम बदलकर सुमित्रानन्दन रखा। १९११ में अल्मोडा के गवर्नमेंट हाईस्कूल में प्रवेश। १९१२ में नेपोलियन के चित्र से प्रभावित होकर केशवधन। १९१५ में स्थायी रूप से साहित्य सृजन। पहले हस्तलिखित पत्रिका 'सुधाकर' में कविताओं का प्रकाशन, और फिर १९१७-२१ के बीच 'जलमाडा अखबार' तथा 'मर्यादा' आदि पत्रों में। जुलाई १९१९ में म्यार सेट्रल कालिज, प्रयाग, में दाखिल हुए, लेकिन १९२१ में असहयोग आन्दोलन से प्रभावित होकर कालिज छोड़ दिया। १९३० में द्विवेदी पदक। १९३१ से '३४ और '३६ से '४० तक की अवधि कालाकाकर में। १९३८ में 'रूपाभ' का सम्पादन, रवीन्द्र नाथ, बाल माक्स और महात्मा गांधी के विचारों का अवगाहन। १९४० में उदयशंकर सस्कृति के द्र में ड्रामा कलासेज श्रिये। १९४३ में उदयशंकर सस्कृति केन्द्र के वैतनिक सदस्य बने और 'कल्पना फिटम के सिनरियो की रूपरेखा तैयार की कुछ गीत भी लिखे। १९४४ में पाण्डिचेरी की यात्रा, अरवि द की विचार साधना से विशेष प्रभावित। १९४७ में सांस्कृतिक जागरण के लिए समर्पित संस्था 'लाकायन' की स्थापना। १९४८ में द्र पुरस्कार, १९४९ में डालमिया पुरस्कार। १९५०-५७ में जाकाशवाणी के परामशदाता। १९६० में कला और बूढ़ा चाद पर साहित्य अकादमी पुरस्कार। १९६१ में पद्मभूषण की उपाधि। १९६१ में रूस तथा यूरोप की यात्रा। १९६५ में उत्तर प्रदेश शासन की ओर से १०,००००० का विशेष पुरस्कार। १९६५ में ही सावित्रीलण्ड नहरू पुरस्कार लोकायतन पर। १९६७ में विक्रम, १९८१ में गोरखपुर, और १९७६ में कानपुर तथा कल्कत्ता वि वि द्वारा डी लिट् की मानद उपाधिया। दिसम्बर १९६७ में भाषा विधेयक के विरोध में पद्मभूषण की उपाधि का परित्याग। १९६९ में साहित्य अकादमी की 'महत्तर सदस्यता'। १९६९ में ही चिदम्बरा पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। २८ दिसम्बर १९७७ का देहावसान।